

आज-कल



स म ण

—:०:—

श्री श्रद्धेय अमर शहीद स्वर्गीय कुल पिता

की पुण्य स्मृति में यह दोरा सा

“संग्रह”

सादर समर्पित है।

# भाज कल

सम्पादक - ब० योगेन्द्र

उपसम्पादक - ब० धर्मराज

“ भारत माता के लिए कुलपुत्रों को धन और तन की ही नहीं, मन के अर्पण करने की भी आवश्यकता है। उस के लिए ब्रह्मचर्यरूपी पूर्ण तप की आवश्यकता है। क्या तुमने उस तप का अनुष्ठान किया है ? ”

यदि नहीं तो आज ही शुद्ध दृश्य पूर्वक  
आरम्भ कर दो। तुम्हारे पुराने आचार्य  
को माता की सेवा में बलि देने के  
लिए नृपस्वी पुत्रों की जरूरत है। क्या  
कोई आगे बढ़ेगा ? जगत्पिता तुम  
सब पर तेज की वर्षा करें। यह मेरा  
हार्दिक आशीर्वाद है। ”

(सम्बत १९७८ का फाल्गुन कृष्ण १०)

की पत्निका से ।



A decorative border with a repeating floral pattern surrounds the text. A horizontal dotted line is positioned above the text.

सम्पादकीय.



किसी देश या जाति का इतिहास उसमें उत्पन्न हुए २ महान व्यक्तियों के देश और जाति के लिए किये गये कार्यों के विवरण के अतिरिक्त कुछ नहीं होता। जब किसी जाति के सौभाग्य से उस में कोई <sup>माया</sup> जन्म लेता है तो वह जाति के जीवन में एक उभार की आग्लि को पैदा कर देता है। यह आग्लि सर्वथा नवीन नहीं होती परन्तु बहुत कुछ जाति की तत्कालीन परिस्थिति का आवश्यक परिणाम होता है। महापुरुष जाति को इस आग्लि के लिए विचारों द्वारा जन्म देने हैं और किया द्वारा उस आग्लि महत् में स्वयं प्रथमादुत्तरे इतने हैं। और इस उभार अपने अनुयायियों का मार्ग सुदर्शन करते हैं। किसी कार्य के लिए विचारों द्वारा क्षेत्र को तैयार करते और उस कार्य को सफल करने-

के लिए विशेष प्रकार की योग्यता की आवश्यकता होती है। स्वामी दयानन्द इस प्रकार की योग्यता से सम्पन्न थे। हिन्दू जातिके सद्विगुस्त ग्रेजीवि बहू में जीवन संचार करने के लिए कश्चि दयानन्द ने आर्यसमाज और संस्थापन किया। इसके द्वारा प्राचीन अन्ध-परम्परा और अन्ध-विश्वास की जड़ें गिर गईं। लोगों को परम्परागत कृपाओं के अद् अनुभव थे, परन्तु फेर भी उन के विशेष में कीर्ति कुछ करने और साहस न कर सकता था। हर एक वेदशास्त्र और स्मृतियों के आधार पर उन के दोषण और टी पत्र करता था। स्वामी-दयानन्द ने अन्धविश्वास की उस कच्ची और खिखली हो धार को खेचारे और इतना जबरदस्त धक्का दिया कि ससे इसकी हालत अब गिरी या सब गिरी की होगी। प्राचीन आर्यजन्मि इसने अपो गौरव के दिनों में सारे संसार को आदर्श जीवन और मार्ग दिया था, समय के फेर से इस प्रकार की हीन दीन दशा की प्राप्ति होगी थी कि उसका जीवन खतरे में पड़ गया था, विदेशी उन्को

इन्होंने भी गुरुओं में बैठे थे। ऋषि दयानन्द ने पश्चिम ऋषि-  
 यों के सन्देश से उसमें जीवन का आरंभ और उसे आणविक का  
 साधन बनाने के लिए काटेबटु किया। ऋषि ने विचारों  
 के क्षेत्र में एक अद्भुत क्रांति को उत्पन्न किया और क-  
 ल्याता की कठिनाई उभारी जाते-जाते बाल-विवाह और  
 अस्पृश्यता आदि नाना शिष्टाचारों को अपने हाथों दूर-  
 पिला कर अपने घर में पाल पोस कर बड़ा किया है  
 और उससे हमारे जातीय जीवन को कठिनाई उभारी शान्त  
 रही है। इस प्रकार ऋषि ने क्रांति का बीजारोपण किया,  
 परन्तु जो इसको पतनसा हुआ न देख सके। ऋषि के  
 जीवन और सन्देश ने हजारों व्याक्तियों के हृदयों को  
 प्रभावित किया परन्तु ऋषि के बाद, ऋषि के आदर्शों  
 और विचारों को एकमात्र प्रतिफल देने का प्रयत्न स्वामी  
 ब्रह्मानन्द ने ही किया। स्वामी जी एक कर्तव्य पराधर्मा-  
 चीर और लगन वाले व्यक्ति थे, ऋषि दयानन्द ने  
 जिन कार्यों की ओर निर्देश किया उनको आरम्भ  
 कर स्वामी ब्रह्मानन्द ने उनको चरम सीमा तक पहुँचा दिया।

देश में जो सामाजिक क्रान्ति कराबिदधानन्द ने प्राप्त की थी स्वामी जो उनके बाद उसके एकमात्र प्राण थे। स्वामी ने अपने जीवन में इतने काम किये उन सब की सफलता का कारण उन की निर्भीकता, गम्भीरता, कष्टनिष्ठता तथा ईश्वर में अद्भुत विश्वास ही था। सामान्य सांसारिक मनुष्य स्वामी जी के जीवन के इस काथकल्य से एक बहुत बड़ा पाठ सीख सकते हैं। स्वामी जी ने प्राथमिक जीवन में सब प्रकार की इच्छाओं को परित्यक्त महापुरुष के संसर्ग ने उन में एक ऐसी अलौकिक शक्ति का संचार किया जिससे भटका और भूला हुआ सीधे रास्ते पर आ गया। आदर्शों का अपने पूर्ण समर्थ से अनुकरण करना, उलझी साधना के मार्ग में आये हुए कष्टों को सहस्र फिलना आदि गुणधर्मों के कारण स्वामी जी अपने मोक्ष और धारणीत जीवन से निकल कर एकदम फकीर और अंधा जीवन बिताने के योग्य बन सके, यहाँ अपने को सच्चे अर्थों में कल्याण मार्ग के पथिक गिने जा सकते हैं। —

जब से स्वामी जी ने सामाजिक जीवन में प्रवेश किया तब से उन्होंने अपने पद के योग्य कर्तव्यों को समझकर उनका पूर्णतया पालन किया। समाज के कार्य को अपने वैयक्तिक कार्य की अपेक्षा हमेशा ऊँचा स्थान दिया। और बहुत बड़े सामाजिक कार्य के लिए अपने वैयक्तिक कार्य का त्याग तक भी कर दिया। इस लिए उन्होंने उनका ही अपने प्रति प्रेम, विश्वास, और सम्माननाओं को प्राप्त किया। स्वामी जी के सहयोगियों को उन के कार्य के प्रकार में बाँटे उन से अनेक प्रकार के मतभेद रहे हों। इस कारण उन के स्वामी जी के साथ सम्बन्ध कुछ बढ़ भी होगये हों, परन्तु अभी भी किसी को स्वामी जी की सत्यता और सम्मानना पर संदेह नहीं हुआ। यह स्वामी जी के जीवन की विशेषताओं को खिन्ने कारण परिस्थितियों ने, जिस क्षेत्र में भी वे गये, हमेशा आगे लाकर खड़ा कर दिया, और जनता ने भी हमेशा उनके अग्रता अगुआ और नेता कहने में गौरव अनुभव किया।

किसी जाति और देश की सामाजिक अथवा

राजनीतिक स्थिति का पता लगाना हो अथवा यह जानना हो कि  
 कौन जानें अथवा देश सामाजिक और राजनीतिक दृष्टि से कितने  
 गहरे पानों में है तो हमेशा दो बातों की जगह का प्रयत्न करना  
 चाहिए। पहली बात यह कि वह जानें और देश किस प्रकार के  
 आदर्शों से प्रेम करता है। दूसरी बात, जो पहले की अपेक्षा अधिक  
 का आवश्यक है, यह यह है कि वह देश और जानें किस  
 प्रकार के जीवन नीति नीतियों को अपना महापुरुष समझ कर  
 पूजती है। महापुरुष ही जानें की तकलीफ अस्थिति को देख कर उस  
 की अभ्युत्थान के लिए आदर्शों का निर्धारण करते हैं, और जानें को  
 उन आदर्शों से प्रेम करना सिखाते हैं। और न्यून कि महापुरुष  
 अपना सारा समय और कीर्तिमान जानें की सेवा में लगाते हैं। उस  
 लिए जानें भी उनका मान करती है और उनकी आज्ञा को हमेशा  
 शांति से-आखों पर रखती है। स्वामी ब्रह्मानन्द इस युग के युनि  
 तुड बुद्ध नीतियों में से एक हैं। उन के जीवनकाल में सारा  
 देश और विशेषतया आर्यजानें उन को अपना नेता मानती थीं  
 और उनके आदेशों को अब भी बहुत ही श्रद्धा से अनुसरण करती हैं।  
 आज भी देश के उत्थिक होने में इनके ही ही नरनारी मिल

जायेंगे जो स्वामी भद्रानन्द के नाम पर बलिदान के तैयार रहने हैं। स्वामी जो ने अपने जीवन काल में जब कभी किसी कार्य के लिए जनता से जन-धन की सहायता चाही तो जनता ने तन मन धन से उनकी सहायता की और कभी उन को अपनी ओर से निराश नहीं होने दिया। यह सब उस बात का सूचक है कि जनता को स्वामी जी पर कितना असाधारण प्रेम, और विश्वास था। और इससे यह भी पता लगता है कि जाति की इस समय की उथाल आवश्यकता क्या है, जिसको सिद्ध करने में लगे होने के कारण स्वामी जी जनता के इतने आर्थिक-प्रेमवात्र और विश्वासवान बन गये थे। दस सालों के बाद आज महात्मा जी ने भी उस कार्य के महत्व को समझा है और अनेकों बार उस के लिए अपने प्रयोगों की नज़ीर बन लगाने दी है। और अब इसके लिए शोर देश में दौल-लगाने रहे हैं। यह मताने की आवश्यकता नहीं कि वह महत्वपूर्ण कार्य अधूरी हुई है; स्वामी जी की यह बड़ी अभिलाषा थी कि सीधीन दलित महत्वाही जाने गल्लो जातियों को सबको हिन्दुओं के ब्रह्म-अहमकारों से-

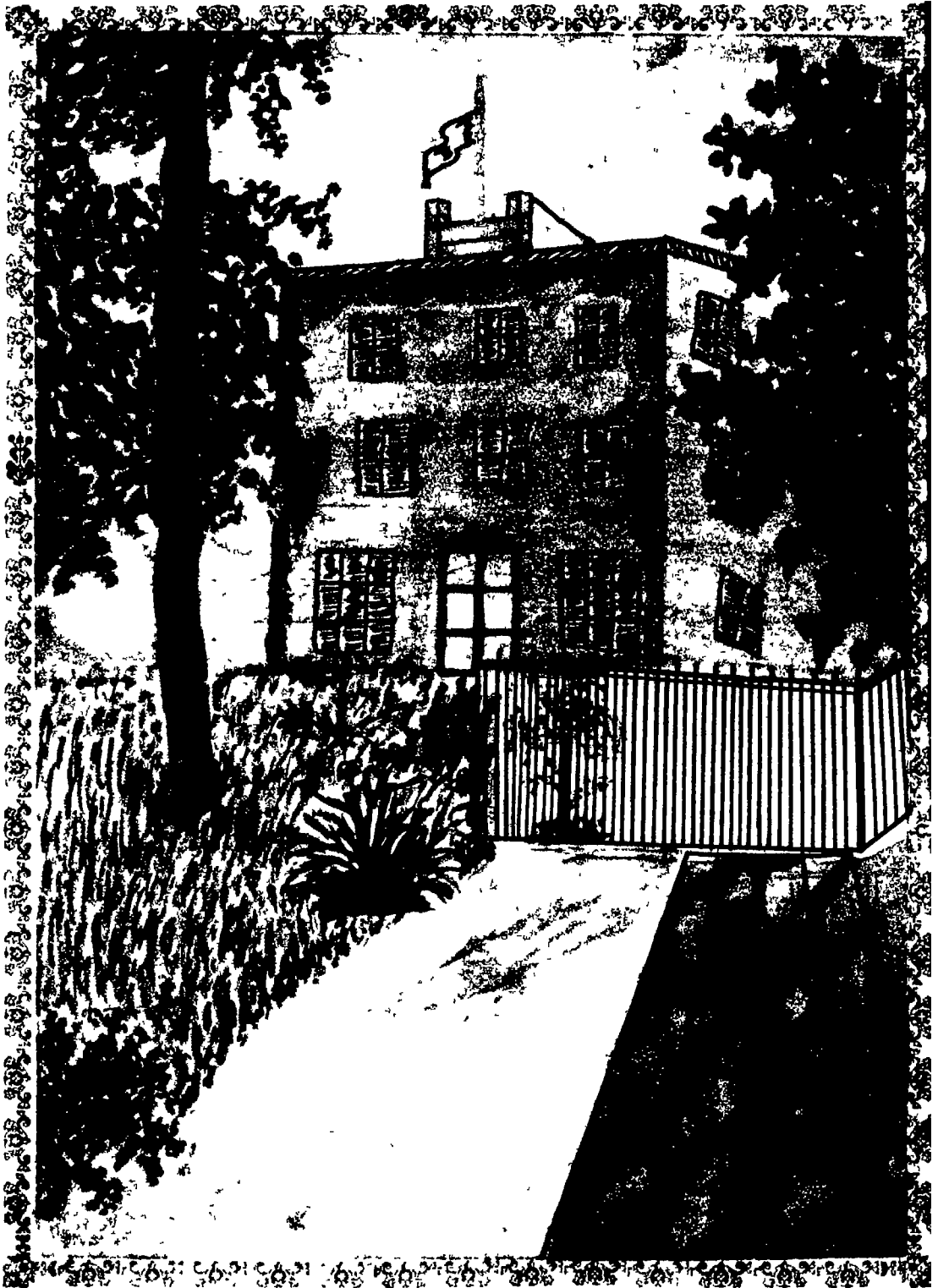


दुर्भाग्यवश मनुष्योचित आधिकार के स्वतन्त्र जीवन-पद और सुखद गणु-  
 मंडल में हमेशा के लिए विचरने का आधिकार उदान करवाया जाने  
 स्वामी जो ने ही कांग्रेस के प्रेडक्चर्स पर सबसे पहले अधूलेदार के  
 प्रस्ताव को रखा, परन्तु पहले वर्ष उसकी उपेक्षा की गई, +  
 दूसरे वर्ष उसको प्रस्तावों में जगह दी गई । महत्मा गांधी ने  
 अपने सत्याग्रह के श्रेष्ठान्त में सत्य, अहिंसा के साथ अधूले  
 डार को भी स्वामी जी के प्रयत्न से स्थात किया । इतना होने  
 पर भी कांग्रेस ने फिर भी इसकी ओर पर्याप्त ध्यान न दिया।  
 महत्मा गांधी ने नारदौली को सत्याग्रह के लिए तैयार किया  
 था, वहां जाकर स्वामी जी को यह देख कर बहुत दुख हुआ कि  
 चर्खे और खादी कोले पर्याप्त उचार है, परन्तु अधूले की  
 समस्या अब तक भी वैसी ही है । इसकी ओर जरा भी ध्यान  
 नहीं दिया गया । इसके बाद भी स्वामी जी ने कांग्रेस को  
 अधूलेदार के काम में लगाने के लिए अपना प्रयत्न जारी  
 रखा । इन के प्रयत्नों के परिणामस्वरूप कांग्रेस ने स्व  
 चार सदस्यों की उपसमिति अधूलेदार के कार्य के लिए  
 बनाई जिसका प्रधान स्वामी जी को बनाया गया था।

उसके लिए एक पयोष्य चरवासी नियोजित कर दो गई। स्वामी  
 जीने कार्य प्रारम्भ करने के अवसर पर कांग्रेस से कुछ धन-  
 राशी नकद मांगी, जो उनकी सेवा-श्रीत हुआ कि कांग्रेस  
 के अधिकारियों की इस दिशा में धन व्यय करने की -  
 इच्छा नहीं है। इस प्रकार अधूले डर के प्रति कांग्रेस  
 का यह सब देख कर स्वामी जी ने हिन्दू जाति को संगठित  
 करने के लिए, स्वतंत्र रूप से अधूले डर के लिए प्रयत्न  
 करना शुरू किया। स्वामी जी को हिन्दू जाति के संगठन  
 का उद्देश्य अधिकतर राष्ट्रीय ही था जातीय नहीं। वह हिन्दू  
 जाति को इस लिए नहीं संगठित करना चाहते थे कि  
 हिन्दू प्रबल होकर अन्यसंख्यक जातियों को दृश्य कर  
 भारत में एकमात्र हिन्दूराज्य के लिए प्रयत्न करें। अधि-  
 कु संगठित होकर भारत में विदेशी राज्य का तख्ता  
 उलटने में आर्थिक समर्थ हो सकें। परन्तु उनके समय  
 के लोगों ने उन को उस समय हीन नहीं समझा, जिस  
 को परिणाम एक धर्मोन्मत्त मुखलमान के हाथ से इन  
 की हत्या है। स्वामी जी की इस प्रकार की मृत्यु ने +

उनके राष्ट्रीय स्वभाव पर एक आला पकी उल दिया है और  
 उनको एक संकुचित धार्मिक व्यापक का संघ दे दिया है। स्वा-  
 मी जी हिन्दू जाति के संग वे और आर्यजाति के हृदय-  
 सगुह थे। चरन्तु उनके राष्ट्रीय विचारों पर जातीयता का दाग  
 न था। उनका हृदय उदार था वे भारत माता को परल्लता-  
 पाशों से जकड़ा हुआ न देख सकते थे। इस लिए जहां कहीं  
 भी आर्यविचारों की रक्षा का ध्येय उपास्येय हुआ स्वामी जी  
 ने अपनी धृती तान दी, और आर्यसौ भाषाओं की सम्भावना  
 से जरा भी विचलित नहीं हुए। गुप्त के काग में जब आर्य-  
 विचारों की रक्षा के लिए जब सिखों का सत्याग्रह प्रारम्भ हुआ  
 तब स्वामी जीने उनका साथ दिया और इस कारण उन्हें  
 एकबार जेल की तीर्थ यात्रा भी केली पड़ी। मद्यमा जीने  
 जब असहयोग का आन्दोलन प्रारम्भ किया तब देहली में इस  
 आन्दोलन के एक मात्र उराल स्वामी जी ही थे। वहां ही स्वामी  
 जीने नंगी संगीनों के सामने अपनी धृती को खोल कर अपनी  
 निष्कलता और सहस का एक अद्वितीय और भारत के  
 स्वातन्त्र्य संग्राम में स्वर्गाहोम में लिखे जाने योग्य कार्य का

दिखाया। इन्हीं दिनों में जब हिन्दू और मुसलमान परस्पर दूष-  
 में पति भी तरह एक दुष्ट २ ये इस दिव्य पुत्र ने देहलो की  
 जामा-मस्जिद में वेद-मंत्र की व्याख्या के साथ २ हिन्दू मुसलमानों  
 को राष्ट्रीय स्वातंत्र्य संग्राम में साफल्य लाभ करने के लिए एक  
 का पाठ सिखाया था। क्या यह संभव है कि वह व्यक्ति जिस  
 को किसी दिन एकता का संदेशा-द्वर समझ कर मुसलमान  
 मौलानियों ने अयत्नी मस्जिद में निर्मात्रित किया हो, छः साल  
 साल के बाद उनका पुत्रता विरोधी बन गया हो कि उन  
 मुसलमानों को उसका इस संसार में अधिक जीवित रहना  
 अपने धर्म के लिए खतरनाक घटीत होने लगता हो ? नहीं,  
 कभी नहीं। यह सब कुछ इन्ने गीने लोगों की गुलतफहमी है  
 और उस महात्मा की भावना को न समझने का ही कुल-  
 मय परिणाम है। जो हुआ, सो हुआ ही, आखिरकार  
 वह स्वामी अपने देशवासियों के लिए किया और देश-  
 वासियों के लिए ही मरता। उसकी विजयों और राष्ट्रीय  
 आत्मा भारतीय आत्मा को हमेशा कर्तव्य मार्ग का उद्देश्य  
 दिया करेगी।



त्रैपोलियन जन्म गृह



## आर्थ समाज और गुरुकुल.

गुरुकुल स्वामी जी की एक अपार कृति है। स्वामी जी ने जीवन का महिम गागा का अर्थ खोजा के कोर्को में लाया है। पहला भाग- गुरुकुल के संस्थापन को उल्टा छुड़वा नीक पर, स्वयं-बाने के प्रयास में ही अतीत हुआ है। गुरुकुल उनके प्रयत्नों का एक उत्कृष्ट परिणाम है। अपने जीवन के महिम लक्ष्यों में यथापि इन का गुरुकुल में कोई ~~कमी~~ कमीकारी ने सच से लक्ष्य पर न था प्रलय दिखी- उन्हें गुरुकुल से प्रक था- वहाँ नि- गुरुकुल उनका था- गुरुकुल इनका ही लागा था दुक को पा था- गुरुकुल के लिये स्वामी जी ने जो कुछ भी अपना वेह जानें योग्य का सब दे- दिया। अपनी धन सम्पत्ति, अपने कर्म के दुकड़े- को- प्रक को अपना साह जीवन- उद्योगों के गुरुकुल मता की सेवा में लाया दिया। इस लिये वे सब कर्मों में उलटिना के भाग्य पर सब कुल प्रक उस कुल फिता की सृति में यद्वी (तम)

मना रहे हैं। उक्त गुण बनाना पर एक कुल दिना के सी-जनों के  
 कथनी सुझा जर्मनी सादर लक्षित- बरतें हैं।

उक्त बनाना पर एक कुल-कारियों का कर्त्तव्य है कि एक भाव-  
 निरीक्षण बर कि एक ही यह संस्था अपने जन जीवन में निर-  
 प्रभावी रही है। को मन इसकी गति किन दिशा की को हो कि न-  
 उद्देश्यों को कार्यों का प्रतिकार देने के लिए इसकी संस्थापना  
 की गई थी। उक्त उद्देश्यों को कार्यों की को प्रसन्न किया बरत  
 बकाया है। को कि एक संस्था में उक्त कार्यों के प्र-कारों के का-  
 सफलता का अर्थफल ही है। उक्त उद्देश्यों निरीक्षण का एक जहाँ  
 यह होता है कि संस्था में ही में उ-प्रकारों को रही कार्यों की  
 को एक ही दिशा में जाता है। को उक्त उद्देश्यों में एक विचार  
 प्रयत्न प्रीति होता है। वहाँ साफ ही ता-प्र संस्था का क्या महत्त्व  
 को उपेक्षा करता है यह भी स्पष्ट हो जाता है।

यह स्पष्ट है कि उक्त कुल-कारियों की संस्था है, राष्ट्रीय-  
 महत्त्व की संस्था नहीं। प्रत्यक्ष इसका यह अर्थप्रधान ही है  
 कि उक्त कुल-कारियों राष्ट्रीय कार्यों की बनने लाना की जाती है-  
 या उक्तो-मिली-मन्त्र राष्ट्रीय संस्था की बनने का यह महत्त्वपूर्ण

समझा जाता है। उद्योगों के अभाव में अनेक लोग अनेक-अनेक वर्षों तक  
 ही गवर्नमेण्ट से बिना किसी प्रकार की सहायता लिए रहवाये रह  
 गये थे। जो अब तक अभी भी उद्योगों की स्थापना करने में  
 गवर्नमेण्ट से सहायता लेने में विचार तक भी नहीं किया,  
 इसी कारण ही गवर्नमेण्ट को पहले पहले उद्योगों से बहुत  
 भय था। उद्योगों की प्राथमिकता उद्योगों के अभाव में  
 शिक्षा प्रणाली को जो नुकसान के लिए मिले २ वर्षों में उद्योगों  
 को तोता सा नेंवा रहता था। गवर्नमेण्ट की एक गलत  
 नीति है कि इन भय की दृष्टि से जो नुकसान मिली है कि - "सरकार  
 के सम्मुख सब से अधिक विचारणीय प्रश्न यह है कि इन समय -  
 को शिक्षा के उद्योगों में शिक्षा प्रणाली प्राप्त करने वाले उद्योगों  
 को शिक्षा समाप्त करने के बाद सरकार के प्रति क्या करेगा?"  
 को शिक्षा समाप्त करने के तीस साल पहले गवर्नमेण्ट के साथ उद्योगों के  
 रूप में अद्योगों के प्रारम्भ किया था। आज इसका कारण -  
 खोजना होता है को शिक्षा समाप्त करके उद्योगों से न्याय का प्रश्न  
 रहता था जो अब भी रहता है - इसका जो नुकसान भी अनुभव होता है



कार्य समाजियों ने प्रामाणिक कि भा कि ज्ञानी दमनद जिन आधरों  
 को सिद्धान्तों का समाज में प्रचार करना चाहते थे उनका प्रचार-  
 गमने मेठ के स्कूलों को बालकों के होना असम्भव है, गमने मेठ  
 की शिक्षा गृहनिर्देशिक आधरों को सच्ची भारतीयता के प्रतिबल  
 है। स्कूलों को बालकों में शिक्षा प्राप्त किया भी प्राचीन भारतीय  
 संस्कृति को बहुत ही ह्य को ( उपहास्यास्पद समझने लगते हैं।  
 उनमें अपनी प्राचीन संस्कृति को सम्भला के प्रति प्रेम नहीं होता,  
 पाश्चात्य सम्भला की भारतीय चमक दमक उनकी भावों को -  
 चका चो धा कर देती है। उनमें एक मानसिक को बौद्धिक कात्ता  
 परा कर जाती है को साध ही मौलिकता सर्वथा विनष्ट हो जाती  
 है। जिससे वे सम्भला को विचारों के प्रेम में पाश्चात्य लोगों को  
 अनुपातगुण करने लग जाते हैं को। इसी में ही अलग गोरु सम्भल  
 है। उक्तुल का उद्देश्य वैदिक सम्भला को वैदिक धर्म का पुनर-  
 जीवन है को। सिद्धार्थियों को सच्चा धर्म बनाना है। उक्तुल की-  
 नियमाली में उक्तुल का लक्षण इस प्रकार किया गया है :-  
 " उक्तुल वह वैदिक शिक्षणानुध का नाम है जिसमें बालक को  
 बालिकों में प्रकृतित ने दारण संस्कार के पाश्चात्य उक्तुधर्म पूर्वक -

शिक्षा के बिना प्राप्त करें। उनके प्रतिरूप के प्रसिद्धि जिन नवोदय-  
 सभाओं को एक आदर्श सामाजिक व्यवस्था समझते हैं। उनके कामका  
 करने की भी गुरुकुल से ही आशा की जाती थी। स्वामीजी ने गुरुकुल की  
 संस्थापना से पूर्व "गुरुकुल की क्या आवश्यकता है" का प्रश्न  
 दुरुप भवने के लिये 'सहस्रं पुत्रक' में लिखा था कि आशुतोषवर्मा  
 के बिना नवोदयवर्मा कामका नहीं हो सकती क्योंकि आशुतोषवर्मा  
 निर्भर हैं; जहाँ गुरुकुल नहीं है तो आशुतोषवर्मा का उद्वेग  
 कैसे हो। इस उद्वेग से घटती स्पष्ट है कि गुरुकुल के जीवन का  
 सार बलचर्म है। गुरुकुल का उद्वेग केवल उच्च उमर की शिक्षा  
 का प्रचार नहीं है। पाल, स्वामी, तपस्वी के। आचार्य स्वामी बलचर्मा  
 के धारणा हैं जिन उच्च जीवन का एक नव्य लोकाधी शिक्षा प्राप्त  
 कर सकें।

गुरुकुल अब भवने परीक्षा के समय को पार हो चुके हैं,  
 अब यह संसार के सामने एक स्थिर संस्था के रूप में है। हमने यहाँ  
 शिक्षा के लिये कि गुरुकुल ने भवने तीस साल के अंतर में कार्य-  
 समाजियों की कमिलापना के नवोदय पूरा किया है। इसका -

उत्तराष्ट्र में स्वयंसेवक न निर्धारित काल लेना चाहिए, यानु उत्तराष्ट्रियों -  
 से - जिनके रूढ़िवादी भावों का परिणाम गुरुकुल है, जो गुरुकुल  
 के संस्थापकों के मान से ही तद्विपरीत मतों से उत्पन्न हुए।  
 रहे हैं - प्रथम यह कि जिस गुरुकुल को आपने अपने कविमान  
 प्रयत्न से जन्म दिया है, अब उसमें शिक्षा प्राप्त पर्याप्त स्नातक  
 आप के सम्मुख आ चुके हैं। क्या इन को पाकर आप अपने को  
 धन्य मानते हैं, कि समझते हैं कि आपका अपने परिश्रम का  
 उचित फल मिल गया है? कि या अब आप उसी उत्साह से  
 गुरुकुल की सहायता करने को तैयार हैं। अर्थात् जनता के इन-  
 प्रश्नों के उत्तरों पर ही हम गुरुकुल की सच्ची सहायता का  
 भ्रमकलता को समझते हैं। जो उपाध्यायवर का अन्धव्यक्ति -  
 गुरुकुल के लिये पनसंग्रह के लिये लोगों के दास जाते हैं।  
 उनको मालूम है कि गुरुकुल के बारे में लोगों की क्या सम्मति  
 बनती जा रही है।

बड़े गुरुकुल ने साहसिकी को माध्यम बनाकर लक्ष-  
 क्रियणालय को शहर के इच्छित नागरिकों से दूर रख कर भारत के  
 शिक्षा क्षेत्र में बहुत क्रांति पैदा कर दी है, परन्तु इनके गुरुकुल

भी सच्ची सहूलता सिद्ध नहीं होती। उद्योग की शिकायतों में इस प्रकार की नीतिगत बातें हुए भी कार्मिक समाजियों के हृदयों को लज्जित कर सकता तो अपने कार्यों की दृष्टि से सहूलता कहा जा सकता था। परन्तु जब एक पक्ष में जाते हैं तो वहीं कार्मिक समाजियों के उद्योग के प्रति निराशासक्त विचार खूबक। ऐसे यह काचित होकर कहना पड़ता है कि उद्योग के कार्मिक समाजियों को अशांति को किसी भी-अंश में पूरा नहीं किया। उद्योग के अधिकांश जातक जिस किसी-अंश में भी गये, वे उसी में ही फंस गये हैं; उसमें रहते हुए उद्योग के समाज के प्रति अपने कर्तव्य को जरा भी-अंश तक नहीं किया और वे हमेशा कार्मिक समाजियों के कार्यों से दूर ही रहने का प्रयत्न करते रहते हैं, बच्चों की-सम्प्रति है कि - उद्योग के जातकों के जीवन में कोई कार्य नहीं है जो नहीं उनका जिस समाज में वे रहते हैं कोई प्रतिष्ठित पद है। कार्मिक समाजियों को इस बात का भी बहुत दुःख है कि उद्योग के प्रायः सब जातक कार्मिक समाज के प्रमुख सिद्धांतों-

में के (इस तक में भी विचार नहीं रखत।

इस सब का यह कारण है कि- गुरुकुल की शिक्षा-  
 प्रणाली- इस आदर्श की दृष्टि से कथम सुतरा, कथका गुरुकुल के  
 स्नातकों को आर्थिकताज के नैतिकता-कार्यक्रम में जीवन न प्रतीत हो-  
 तां हो के। यह सर्वथा असाध्यिक प्रतीत होता है, पुरु आ-  
 आर्थिकताज का नैतिकता-कार्यक्रम जीवन रहत के। आसाध्यिक हो-  
 तो स्नातकों का यह कर्तव्य नहीं है। ये- उल्लेख करने का उदाहरण हो  
 जा में अधिगु उनका कर्तव्य है। ये उल्लेख कृपा (अ) जीवन का सच्चा  
 में जिससे आर्थिकताज स्वामी दयानंद के दक्षिण मार्ग पर -  
 चलता हुआ संसार का अधिगत अधिगत उपकरण है। पुरु  
 दुःख तो यह है कि- एको सद्य में आर्थिकताज के स्वामी  
 दयानंद ने सच्चा प्रेम नहीं है। एको में प्रायः सब आर्थि-  
 समाजी मातापिताओं के लड़के हैं, इन जानते हैं एको माता-  
 पिता के की आर्थिकताज के सिद्धान्तों में कितनी सुहाए। एको  
 में उल्लेख एक शतों पर भी नहीं है। एको बहुत से स्नातक कई  
 आर्थिकताज के सिद्धान्तों के विरुद्ध अपने मार्गों को प्रकट करने

में आत्म गौरव अनुभव करते हैं। इतने कार्य समाजियों के दृष्टिको  
 को कितनी कोट पहुंचती होगी यह बताने की आवश्यकता नहीं।  
 यदि ग्रहकुल ने इस को पर्याप्त ध्यान न दिया तो कुछ सालों में ही  
 ग्रहकुल आर्थिक सामाजिक जातु की अपने प्रति लड़ाकूति को सर्वथा  
 रोक बैठेगा- जो तब इसका कथिबिदेह तक जीवित रहना कालमन  
 हो जायगा। आर्थिक सामाजिक जातु ने अपनी शक्ति का बहुत बड़ा  
 भाग ग्रहकुल पर खर्च किया है, जो इसी कारण से ही- अन्य  
 कार्य की ओर पर्याप्त ध्यान नहीं दे सका। पालु ग्रहकुल -  
 उसके लिये जैसे कसबल सिंह हो रहे हैं जैसे S. A. Y. collegues  
 कसबल सिंह हो चुके हैं। इसलिये ग्रहकुल के कथिबिदेहों को  
 रक्षा निवेदन है कि इस विषय को उपेक्षा योग्य न समझते  
 इस के कारणों पर गम्भीरता से विचार करें जिससे ग्रहकुल  
 अविषय में संभ्रम में पड़ने से बच जाय।

ग्रहकुल की यह तकालीनता अपने आर्थिक समाज ने दृष्टि-  
 'निदु-से ही की है, राष्ट्रीय को देशहित की दृष्टि से तथा  
 आदर्श शिक्षा प्रणाली की दृष्टिसे ग्रहकुल कसबल रहा है का

नहीं। इस विषय में स्कान तथा समझ के अभाव से कलम उठाना नहीं चाहत।

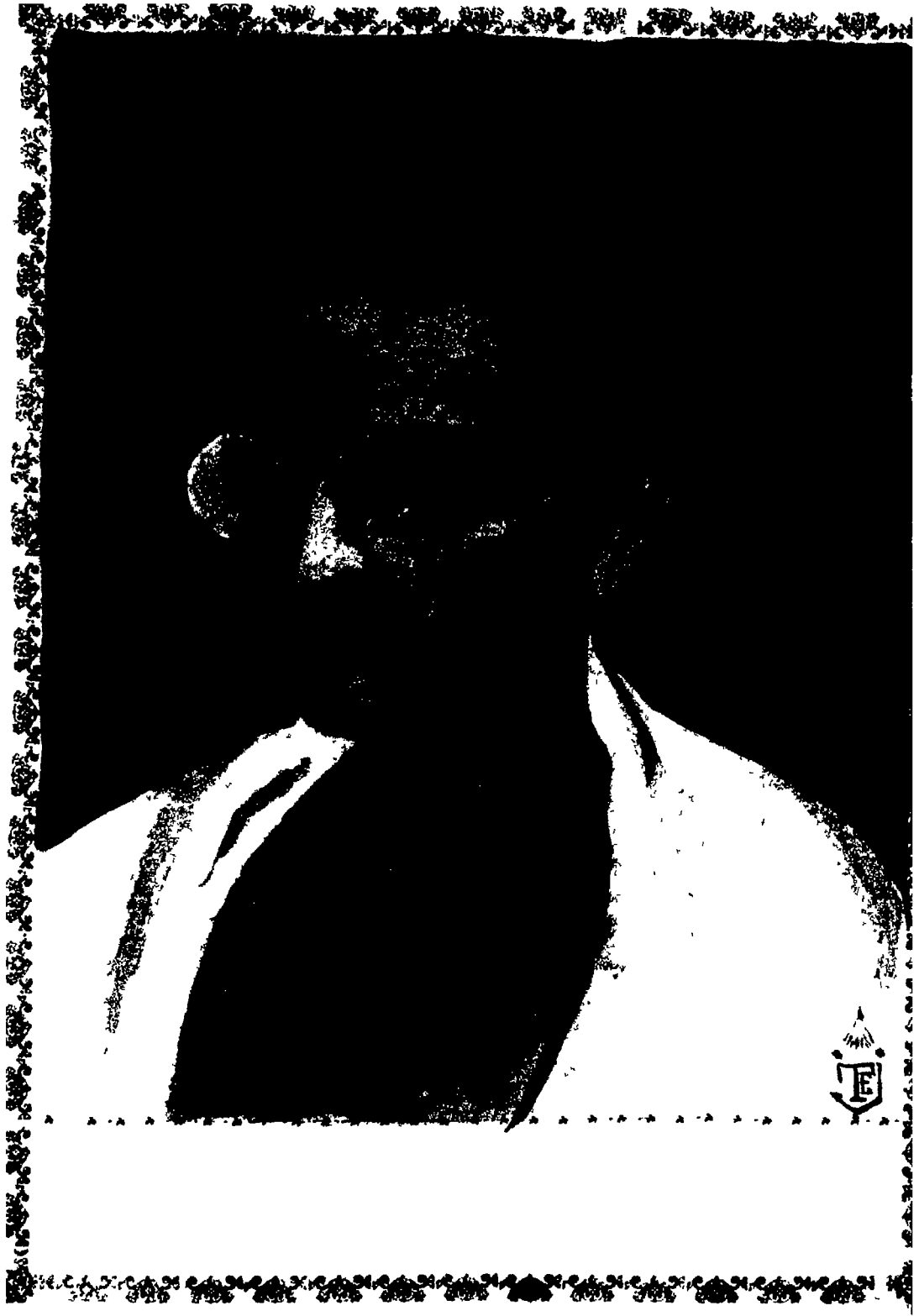
इस समालोचना में एके वकल गुरुकुल के दोषही दोष बताये हैं। इसका यह मतलब नहीं कि गुरुकुल में कोई गुण नहीं है। गुणों का वर्णन अकल्पित नहीं किया गया कि इनको सब जानना ही है। और उनके लिखने में कोई विशेष उपयोगिता भी नहीं है।

इसके विचारों से बहुत ही भाई अस्तुष्टु टांगे पानु जब यह ध्यान में रखेंगे कि एके जो कुछ भी लिखा है सब आर्थ समाज के दृष्टि बिन्दु से लिखा है, तो उन्हें इसकी सम्मति बहुत अत्यन्त ही प्रतीत होगी।

आज कल

सन्देश.





महात्मा ज्ञानपी.पी.

श्रद्धानन्द-सप्ताह में हम सब श्रद्धानन्द जी  
महाराज के हरिजन प्रति के प्रेम का  
शुद्ध अनुकरण करें ।

## श्री ५ जवाहर लाल जी नेहरू

आप को मैं का सन्देश भेजूं? श्रद्धानन्द जी का नाम याद कर के बहादुरी, हिम्मत और त्याग की तस्वीर सामने आ जाती है और इस तस्वीर का देख कर इस भयानक भी हिम्मत बढ़ जाती है। अरुकुल के विद्यार्थी तो उनके ही बच्चे हैं और उनके सामने तो हमेशा यह तस्वीर रहती होगी तो उनको और का सन्देश दिया जावे हमारे देश में आज बल स्वतन्त्रता का युद्ध जारी है और हर एक भारत वासी को वीरता की आवश्यकता है। मैं आशा करता हूँ कि अरुकुल के सब विद्यार्थी स्वामी श्रद्धानन्द जी की भावना के वीर सिपाही बनें और देश की आजादी की लड़ाई में भाग लेंगे।



श्री पं. मदन मोहन जी मालवीय.

दूध पीओ निया पढो और जपो हरि नाम.

सदाचार पालन करो पूरेंगे सब काम ॥

सत्त्वेन ब्रह्मचर्येण व्याधामेनाथ विद्यया.

देशभक्त्वात्प्रत्यागेन सम्मानार्हे भवेन्नरु ॥

श्री आचार्य रामदेव जी.

स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज बहुत सी बातों पर बल देते थे पर वे जिस एक बात पर सबसे अधिक बल देते थे वह ब्रह्मचर्य की बात थी। मैंने जितने गुरु-दुल के जन्मोत्सवों पर स्वामी जी के भाषण सुने हैं वे सब ब्रह्मचर्य पर बल देते थे। ब्रह्मचर्य को अंगुल का मूलधार बतलाते थे। इसलिये दुलपिता श्रद्धानन्द जी के पृथ्वी स्थिति के दिन जो बात मैं दुलपुत्रों को कहना चाहता हूँ वह यही है वे आज आत्म-निरीक्षण करें, देखें और सम्भलें हमने इस दिशा में कितनी उन्नति की है; निश्चय करें, हृ. संकल्प्य कौं कि हमने ऊंचे ब्रह्मचारी, सदाचारी, संयमी और पुण्यात्मा बनना है। यही दुलपिता श्रद्धानन्द का सर्वोत्तम स्मरण कला है।

## श्रीआचार्य विद्येश्वर जी महाचार्य

स्वामी श्रद्धानन्द सत्य के सच्चे पुजारी थे। सत्य ही के लिये वे जिये, सत्य ही के लिये मरे। सत्य उनके जीवन का मूल मन्त्र था।

स्वामी श्रद्धानन्द सच्चे सन्निय थे। मशीनगनों के सामने खोली खोल का खड़े हो जाना उन्हीं का काम था। मुक्ति और संगठन उनके जीवन का लक्ष्य हो गया था।

इस महाव्रत के पालन के लिये उन्होंने अपना बदन और कर्जर शरीर अत्याचारी की गोलियों को भेंट का दिया। बेशक

स्वामी श्रद्धानन्द सच्चे तपस्वी थे। उनकी तपस्या का मूर्तरूप गुरुकुल अपूर्व है।

स्वामी श्रद्धानन्द सच्चे आर्य थे, सच्चे हिन्दू थे, सच्चे मनुष्य थे। उनकी आर्यसामाजिकता, हिन्दुत्व और मनुष्यत्व में कोई विरोध नहीं था। वे जो बुद्ध थे सच्चे थे।

हिन्दू जाति को स्वामी श्रद्धानन्द पर अभिमान है।

श्री सुन्दर लाल जी.

इतने भर जांच कि  
 उनमें कोय, दुम अथवा घण के लिये कोई स्थान  
 ही न रहे। यदि यह सम्भव है तो अकेले गुरुकुल के  
 विद्यार्थी ही भारत की साम्प्रदायिक समस्या को हल  
 कर अलने के लिये काफी हैं मुझे पूर्ण विश्वास है  
 कि हमारे पूज्य कुलपिता की दिवंगत आत्मा शं ताह के  
 पतिभ्र प्रयत्न में हमारी सहायक होगी ।



## श्री नारायण स्वामी जी

मनुष्य को गिरावट से उठकर ऊँचा बनाने का प्रारम्भिक और श्रेष्ठ साधन आत्म निरीक्षण ( Self-Inspection ) है इसी से उसे अपनी कमियाँ और दुर्बलताएँ का ज्ञान होता है जिससे आत्म ग्लानि उत्पन्न होती है और यह ग्लानि उन अवगुणों के दुड़ाने का कारण बनती है इसलिए सभी ब्रह्मचारियों को इस सुन्दर नियम को आचरण में लाकर इसके लाभ उठाना चाहिये।

## श्री गंगाप्रसाद जी चीफ जज टिहरी

उरुदुल का स्थापन तथा शुद्धि और अकूतोद्धार  
 आदि उनका स्वामी श्रद्धातन्त्र जी के ऐसे कार्य हैं जो आर्य-  
 समाज के इतिहास में स्वर्णसिरी में लिखे जायेंगे।  
 इनके अतिरिक्त उनका अपूर्व त्याग, अदम्य उत्साह  
 और साहस, असाधारण निभीकता आदि ऐसे अनेक गुण हैं  
 जिनसे उनका चरित्र सब के लिये सदा अनुकरणीय रहेगा।  
 यद्यपि पिता परमेश्वर ऐसा आशीर्वाद देवे कि आप और  
 आपके निकटवर्ती उनका अनुकरण करत हुए भारतमाता  
 और वैदिक धर्म की सेवा के योग्य बनें।

## श्री स्वामी स्वतन्त्रतानन्द जी

स्वामी श्रुतानन्द जी के अत समय के दो कार्य हैं, श्रुति और अद्वैत निरूपण । आप उनके श्रुतानन्द अत. तन मन से इन दोनों में पूर्ण सहयोग दें और अपने जीवन में वैदिक संस्कृति के प्रसार में यत्नवान रहें।

## श्री पं. ठाकुरदा जी 'अमृतधार'

श्री स्वामी श्रद्धाबान जी कृष्ण मूर्ति में उठ कर नित्य कर्म से नियत कर स्वयंदिन से पहले काम के बाँधे तय्यार हो जाया करते थे। उनका हृदय बड़ा सरल था। एक बालक भी उनसे बात करते लग जाय तो बड़े प्रेम से उसके सामने हृदय खोल कर रख देते थे।

वह सच्चे कर्मवीर थे। कार्य से चम्कते न थे। कतलिय पावन के बाँधे हर कुतिली को तय्यार हो जाते थे। खान पान में कुरा साव थे। द्वाद अवश्य विधा करते थे। लाल मिर्च का कदाचि सर्वत नहीं खाते थे। व्यायाम अवश्य करते थे।

वह श्रद्धावान थे, प्रभु के भक्त थे। उनके चरण चिन्हों पर चलाते का यत्न कला ही उनकी सच्ची स्मृति है।

## श्री पाद दामोदर सातवलेकर जी

श्री स्वामी शरीर श्रुतानन्द जी का बलिदान दिवस एक पुण्य दिवस है। श्री स्वामी श्रुतानन्द जी का जीवन आदर्श जीवन था।

कुलवासियों को ही उनका जीवन मार्गदर्शक था ऐसा नहीं अपितु नागरिक जनों के लिये भी वह मार्गदर्शक हो सकता है।

ऐसे पुण्यात्मा का बलिदान दिवस निरन्तर अन्य मनुष्यों में आत्म समर्पण का भाव उत्पन्न कर सकता है। शुरुकुल का वापुसगल

पक्षों से ही पवित्र और पद्म रूप है। श्री स्वामी श्रुतानन्द जी के पुण्य स्मरण से अन्नी पवित्रता अधिक हो सकती है।

आशा है कि कुल के सब ब्रह्मचारी स्वामी श्रुतानन्द जी का आदर्श जीवन अपने सम्मुख रख कर उनका त्याग भाव अपने जीवन में डालने का प्रयत्न करेंगे और कृतार्थ होंगे।

यस्मै श्रुत स्वामी श्रुतानन्द जी के गुरुकुल सम्बन्धी मनोरथों को पूर्ण करें और सब ब्रह्मचारी गण आदर्श ब्रह्मचारी बन कर उनकी आत्मा को सफल मनोरथ बनावें।

## श्री म. वृष्ण जी B. A

श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी उन महापुरुषों में से थे जिनके जीवन का एक २ षण संसार के उपकार में व्यतीत हुआ। स्वामी जी के नवविगत दिनस भी पृथक् स्मृति में मैं गुरुकुल के विद्यार्थियों को इससे अधिक क्या सन्देश दे सकता हूँ कि अगर आप कुलमाता के सच्चे सपूत और श्रद्धानन्द के सच्चे शिष्य बनना चाहते हैं तो वैदिक धर्म, वैदिक सम्प्रदाय और वैदिक शिक्षा को किसी अवस्था में भी अपनी दृष्टि से ओझल न होने दें। और जिस किसी अवस्था में भी रहें उस बात को सदा सामने रखें कि आप उस वीर के शिष्य हैं जिनने धर्म की रक्षा के लिये अपने प्राणों को न्योछावर किया।

## श्री प्रो. इन्दु जी विद्यावाचस्पति

“मेरे जन्म और शिक्षा के गुरु ने अपने जीवन में अनेक सांस्कृतिक कार्यों में भाग लिया, और अनेक संस्थाएँ स्थापित कीं, परन्तु जिस संस्था को उनके आदर्शों और उनकी उमंगों का पूर्ण प्रतिनिधि कह सकते हैं, वह बस गुरुकुल है। प्रबन्ध से कोई सम्बन्ध न रहते उस भी और इतने वर्ष व्यतीत हो जाने पर भी मेरे हृदय में हर समय यदि कोई अभिलाषा अर्द्धजागृत अवस्था में नही रहती है, तो वह गुरुकुल में निश्चिन्तता से विचरने की है और उसे ‘अपना’ कह कर पुकारते की है। अर्थात् वी बात तो मैं कह नहीं सकता, परन्तु गुरुकुल के स्नातक के हृदय व वी बात में जानता हूँ कि वह गुरुकुल भूमि, गुरुकुल विश्वविद्यालय, और गुरुकुल नाम के एक एक अंश में प्रद्वय कुलपति को आपृष्ट कर देखता है। कुलपति ने अपने शिष्यों को सदाचार, स्वाधीनता और सज्जनता के जो पूँट

बिलाये थे, गुरुकुल उनका प्रतिनिधि है। प्रत्येक कुलपुत्र के दो बतबि हैं। वह उन-धूँटों की लाज रखे। अपने जीवन में उन आदर्शों को ओत प्रोत कर दे, जिनकी जागृति के लिए कुलपति ने कुल की स्थापना की और उन आदर्शों के पुञ्ज गुरुकुल की हित कामना और हित साधना के लिये सदा यत्नवान रह रहे। संसार के धन्यों और सार्वजनिक उलझनों-में अत्यन्त उलझे रहने पर भी मैं प्रायः यह स्वप्न देखा करता हूँ कि मैं फिर गुरुकुल में पहुँच गया हूँ। बलचारिणों के साथ क्रीडाक्षेत्र का आनन्द ले रहा हूँ, और गुरुकुल माता की किसी तुच्छ सेवा से अपने जीवन को सार्पक बना रहा हूँ।"



## श्री पं. चन्द्रमणि जी विद्यालंकारः

कुल पिता के सम्पूर्ण जीवन का संर गुरुकुल था।  
 यदि सब कुलबन्धु विशेषतया वे जो इसके अध्यापक  
 ब्रह्मचारी व अन्य निवासी हैं अपना २ कर्तव्य समझते  
 हुए इसका तदनुरूप सञ्चालन करें तो निश्चय ही  
 उस कुल पिता की जीर्ण जागती दिव्य शक्ति विद्यमान  
 रहेगी जिससे अनेकों भूलों भटके घागी अन्ध कल्याण  
 बर-सकेंगे। त्याग, तप, संयम, सत्कार, प्रेम और  
 पारस्परिक समता व विश्वास ही उस महात्मा के  
 मूल मन्त्र हैं।

श्री आचार्य देवराज जी 'श्रुति' विद्यावाचस्पत्याते

विचार, उच्चार, आचार और प्रचार में वीरता  
 का निरक्षर हमारे कुलपिता का जीवन हमारी  
 श्रुति में सर्वथा बने रहें और हम अपने जीवन-  
 पथ में सर्वथा वीरों के समान विजय प्राप्त  
 करते रहें।

श्री स्ना. धर्मदेव जी विद्यावाचस्पति 'बंगलौर'

श्री स्वामी जी का वैयक्तिक जीवन अत्यन्त पवित्र, निर्मल और नियमित था। उनके विशुद्ध प्रेम, दया और सह-जुझति की कोई सीमा न थी। मंगलमय जगदीश्वर और वैदिक धर्म में उनकी अगाध श्रद्धा थी। हम सब तुल्य बन्धु अपने जीवनों को श्रद्धामय, सत्यमय और कर्तव्य पराधण बनावे।

## श्री स्ना. वृष्णास्त जी आधुनिकताका र फँजावाद.

स्वामी जी का जीवन अलोक्यता, बिरला था और जो कुछ भी कहा जाय चाँदा है। उस पवित्र अवसर पर यह ध्यान रखना भी आवश्यक है कि जिस मिशन के लिये वे लिये और मरे तथा उसके लिये तहस के कर्षों को जित्दगी में सहा उस मिशन को उमा बना देने की जिम्मेवारी हमी लोगों पर है।



G.Y. CHINTAMANI, (ALLAHABAD)

Swami Shradhdhananda was a great soul who did very much for the elevation of the Hindu community, and his memory is justly held in high esteem by everyone who knew him or of him and his great work. I join you all in paying our tribute of respect to his honoured memory.

FROM SHANTINIKETAN.

Dear Sir,

I am desired by Rabindranath Tagore to thank you for your invitation to the death anniversary celebrations of Swami Shradhanandaji on the 6th December next. Unfortunately it will not be possible for him to do so, as on that day, he has an engagement to deliver a lecture at the Andhra university, Waltair.

The poet is down with influenza and cannot write himself. As we all know he has great admiration for the burning patriotism and selfless

devotion of the great Swami. He is confident that the martyrdom of one like him would never go in vain.

Yours faithfully,

Sd/- Anil K. Chanda.

Secretary to

Habindranath Tagore.



PROFESSOR HENRY KUMAR SARKAR, CALCUTTA.

Shraddhananda Ji was a great remaker of mankind. The Punjab can reasonably be proud of his services to Northern India as a worker in the lines of the remarkable master Dayananda. It is in and through the activities of energists like Shraddhananda that Young Bengal has learnt to respect the ideals and methods of the Arya Samaj. Shraddhananda will remain a permanent figure of modern India in the consciousness of the Bengali people.

S. SATYAMURTI, MADRAS.

He was a great Hindu. but he profoundly believed that slaves can have no religion. That is why he worked strenuously for the freedom of Bharatavarsha. We, Hindus, therefore can best follow in his feet steps if, remaining loyal Hindus, contribute our share in the Motherland's struggle for her freedom. We have a great responsibility to fulfil. We are the majority community in the country. But the minorities are today the favourites of the British Government. Anger must not cloud our vision. While insisting on our legitimate rights, we must show by example to the minorities that because we are Hindus, no minority had anything to fear from us. By thus earning their love and their affection, we shall have won swaraj for India and created a more

honoured place for Hinduism in a free India.

May the Swami's memory long inspire us!

श्रद्धाञ्जलिः



मांभी रोक यही परतरणी, तू भी करदो कुछ विजाम .  
 जब तक मैं देखें विभोर बन, फिर अतीतके स्वप्न ललाम .  
 गाऊँ मतकला होकर मैं, फिर से कुत्त गायन अभिराम  
 शीश चद्राई पदरज लेकर, कर कुलपति को कोटि प्रखाम . —  
 अयि खट्टर! शुचि बोधिसत्त्व से, कुलपति के पूजा के स्थान,  
 अहाँ बैठकर विश्व प्रेम का, उसने साधा मन्म महान  
 जिसके मधुमय अमर गीत से, अब तक गुञ्जित है पवमान .  
 वही आज पहुँचाता घर घर, प्रेम ज्योति रवि-रश्मि समान . —  
 अद्भुतरु! द्युति हीन शोक में, अरोखडे क्यों मूर्च्छित प्रारा.  
 राशि राशि पुष्पों के भूषण, गिरा अवनि पर हो म्रियमारा,  
 कन्दन करते हो रह रह कर, पवन सुनाता यह वुस्व-गान .  
 "प्रेम दीपवह बुझा दिया है, अरे! किसी ने बन अनजान ."  
 हे कुटीर! तुम मूक खडे हो, उसी समय से चिन्ता मग्न  
 प्रेम दीपवह अरे! जिसी क्षण, चिर अनन्त में हुआ निमग्न  
 मैंने तो मुखरित ही देखा, तुमको गायन में सलग्न .  
 आया है निचुर यह करने, तेरे मौन भाव को भग्न . —  
 अझा-सदन तुझारे सन्मुख, गये जे हमने कुल गीत .  
 फेरों आ अति प्रेम-मग्न हो, यहीं पित्ताने हाथ पुनीत .  
 किये खेलते इस प्रांगण में, हमने कितने वर्ष व्यतीत .  
 धूलि धूसरित नष्ट भूष्ट है, हा! वह तेरी भूति अतीत . —  
 यहीं मुक्क कर शीश चरण में, लेते हम जिसकी पद धूल .  
 प्रेम पूर्ण शब्दों में गद्गद, जिसने कहा जेय, अनुकूल .  
 जिसकी प्रेममयी वाक्या में, हमने करीं अनेको भूल .  
 आज चढ़ाने हम आट्ट हैं, उसकी स्मृति में श्रद्धा-भूल . —

## कुलपिता

वत्सलता की सौम्यमूर्ति वह  
सदा सामु सम्मुख साकार—  
खड़ी, करेगी कुलपुत्रों के  
जीवन में साहस संचार।  
पितातुहारी करुण आँख से—  
दुलका दुरव का आँसू एक,  
कर जावेगा बन्दी में का  
दिव्य अलौकिक शुभ-अभिषेक।

श्री वेदव्रत द्वितीय'

देहली की कीचियों ने  
सीसगन्ध की छतों ने

देरवी दिव्य दर्शकों ने  
ज्ञान भद्रानन्द की।

भाकी घोर घातकों ने  
ताकी शोच सैनिकों ने

जाँकी वीरमानकों ने  
ज्ञान भद्रानन्द की।

बसी खड़ी के वनों में,

गुंजती रही गंधों में

बैठती सदा दिलों में

तान भद्रानन्द की।

दीन दुखियों का त्राण

दलितदलों का प्राण

वीर वैदिकों की जान

ज्ञान भद्रानन्द की। —

व्योमसा विशाल भाल,

घाती ज्यो घोरलादी ढाल,

और मिलना मुहाल—

वीर भद्रानन्द बा।

वेद की अट्ट टेर

काम सोहनी सुमेर

रहा विधि आप हेर

हेर हेर मूक बा।



मनुज हुआ महान  
 गुणी गरिमानिधान  
 नर देवता समान  
 सोही स्वर्ग सी चरा।  
 दानवी से ब्रूम रहा,  
 देव पद पूज रहा,  
 जिशासुको सुभ रहा  
 पथ पुण्यकर्म का ॥ —  
 बसा कहीं ? कागडी मे  
 एक फूस नी कुटी मे  
 बालाको की बुल बुली मे  
 ग्राम अद्भुतानन्द का।  
 सजग सजीव स्तूप  
 अमिट हुआ अनूप  
 धी अमरता सरूप  
 कामन्दानन्द का।  
 शिष्यो की मनोगुहामे  
 भक्तो की भरी संगामे  
 गुरुगणो की गिरामे  
 ध्यान अद्भुतानन्द का।  
 ओहो मे चढ हुआ हे  
 पिलो मे बसा हुआ हे  
 सीनो मे सना हुआ हे  
 नाम अद्भुतानन्द का ॥ — ३

(१)

श्रीब्रह्मानन्द-कृषी का दल, यह शुभ संदेश सुनाता है।  
जो जांतपात के दलदल से- निकले वह आर्य कहाता है।

(२)

कृषिदयानन्दका शुभजीवन, निर्भयता बलसे परिपूरण।  
क्यों उसका अनुयायी होकर- भयनिर्बलता दिखलाता है।

(३)

उठ जागो निर्बलता ब्रोड़ो, भय मक्कारी से मुख मोड़ो।  
निर्मल, निर्भय, सज्जन केवल- वैदिकधर्मी कहलाता है।

(४)

नित वेदों का स्वाध्याय करो, ऋद्धासे सन्ध्याहवन करो।  
जग में दृढ वैदिकवीर कभी- नहिं विघ्नों से घबराता है।

(५)

जीवन मे निर्भयता भरकर, देशी नस्लों को धारण कर।  
ईश्वर का विश्वासी बनकर- जो कर्म करे सुख पाता है।

बतादो भगवन् ! तुलसी' हमें अब,  
कि कैसे स्वागत करें तुलारा ।  
वे शब्ध लीवें कहां से चुन चुन.,  
कि जिन्हसे स्वागत करें तुलारा ।

हृदय है गद्गद प्रसन्नता से,  
बचन न आते हैं शीघ्रता से ।  
ये दीन जिह्वा न जानती है  
कि कैसे स्वागत करें तुलारा ।

हे कुलपिता ! यह है चर तुलारा,  
बसे मृदुल्य से सदा यहीं हों ।  
अबोधबालक न जानते हम,  
कि कैसे स्वागत करें तुलारा ।

हृदय कुसुम की है रूंधीमाख,  
बो दे चुके भक्ति-भाव-मीनी ।  
येहार कृत्रिम न चाहते हो,  
तो कैसे स्वागत करें तुलारा ।

ये शुभदिवस जब दिये थे दर्शन,  
संगीष्पी आशा हुई बह पूरी ।  
हैं चाहते पर न जानते हम,  
कि कैसे स्वागत करें तुलारा ।

तुमारे भिन हे बसन्त ! सुनी  
न सोहती थी ये फुलवारी ।  
हैं आज कहती ये लहलहाकर  
कि कैसे स्वागत करें तुलारा ?

हे हंस ! मानस मलिन पड़ा है,  
ये कुञ्ज या कान्तिहीन, कोकिल !  
प्रसन्न अब ये हुट बतानो,  
कि कैसे स्वागत करें तुलारा ।

अनन्त स्वर्गीय गीति से मिस -

के प्रेम - नीला भनक उगी है ।

हुए हैं इक तान तार सारे

कि आजो स्वागत करें तुलारा ।

सूनी बियोग से तेरे, है बाटिका शहीद!

सूखे सुमन से है भरी, ये बाटिका शहीद ॥ १ ॥

माता हमारी थावही और वह पिता भी आ।

नाता तुझके आज कहाँ, चल दिया शहीद ॥ २ ॥

इस बाटिका का एक जो जीवन-प्रकाश था

वोही बुझा के जोत कहाँ, चल दिया शहीद ॥ ३ ॥

ये है चमन वही तेरा, पंखी भी हैं वही।

गमगीन इनको गमने तेरें कर दिया शहीद ॥ ४ ॥

जो खन्न छाया सिर पै हमारे तुझारी थी।

तू सन्न बतादे लेके कहाँ, चल दिया शहीद ॥ ५ ॥

'विद्या' की है ये कामना और याचना यही।

सब गावे तराने कि वो फिर मिल गया शहीद ॥ ६ ॥

दिलो के राजा दिलो के स्वामी /  
फले व फूले तुलारी आशा ।

इक आंख आंस् दुलक रहे है  
इक आंख जय २ पुकारती है।  
इधर धडकती है धीमी छाती,  
उधर उभरती छबीली आशा।

इधर चरण मे यह जाति आती  
उधर ये खेती है लहलहाती।  
ये भिल तुलारे ही गीत गाती  
फले व फूले तुलारी आशा।

जले हो हंस के दरिखाने जौहर,  
ये केसरी अब पहन के बना।  
रत्न चले हो, बिहे यहां पर—  
भला लगाने ये किस पे आशा?

न कल्पना भी जहां थी जाती,  
वहाँ तो आसन बना चुके हो।  
वह कौनसी अब कन्न जगह है  
जहां लगाई है आज आशा।

रंग था बना वह खूँ से तुमने,  
जो पीके बिबका करालप्यला।  
वह आज छाती पे ठीक उतरा  
फली वा फूली तुलारी आशा।

खुशीका दिन क्यो न हम मनावे  
मुकुट तुलारे जो सिर से उतरा।  
उतर जो पैरो पे सिरसे आया,  
नई बढी है हमारी आशा।

दिले के राजा / दिलो के स्वामी /  
फले व फूले तुलारी आशा ।

दयारे हिन्द के अहंरार है सपूत तेरे  
 महब्बतो के अलमदार है सपूत तेरे  
 चरागे महफिले ईसैर है सपूत तेरे  
 मिसाले शम्स जियाँबार है सपूत तेरे।  
 भरी है गोद तेरी देश की दुआओं ने।  
 सपूत पुत्र दिए तुझको देवताओं ने।

जियाए इस्ल के चम्मे बहार है तुने  
 अलमे-कुदस के गोहर लुकार है तुने  
 बरोग माबदे दिल मे जलाए है तुने  
 महब्बतो के बहुत गीत गाये है तुने।  
 तुझी से दिल मे कुछ उम्मीद का उजासा है।  
 कि तुने गोद मे इन्सानियत को पाला है।

मगर तेरी तपिशो-दिल है नातमाम अभी  
 हुआ नहीं है मुकम्मिल तेरा निर्जाम अभी।  
 भरा नहीं मये-इरफे-रुदा से अभी  
 सुना नुहीं तेरे दिलने मेरा पयाम अभी।  
 इस इस्लतिलाफे-मजाहिब को तोड़कर रखदे।  
 बतन के दूटे हुए दिल को जोड़कर रखदे।

१ स्थापना के प्रकार २ अण्डा के अन्तर्गत ३ लक्षण व वास्तुत्व ४ अणु ५ अणु के अणु  
 ६ अणु के अणु ७ अणु के अणु ८ अणु के अणु ९ अणु के अणु १० अणु के अणु  
 अणु (Organization) ११ आर्गनिसमिनिअता

दिल में होता है बड़ा अफसोस मरने के लिये।  
पर ये मरना अस्सल में है फिर से जीने के लिये।  
जागते थे जो अभी जो एकदम में सो गये।  
पर ये सोचे हैं सुकह होते ही उठने के लिये।  
मह हवा कैसी बली कि पत्ता पत्ता गिर गया।  
पर ये जाते हैं नये होकर के अने के लिये।  
स्क लहमे में हमारा खेल सारा मिट गया।  
पर ये परदा ही गिरा है फिर से उठने के लिये।  
घर को सुना छोड़कर हा। ये कि धर को बल दिये।  
क्या अजब जाते उधर ही तरफ पाने के लिये॥  
निससे सारा घर जा रोशन, वीही दीपक बुझ गया।  
पर बुझा कुछ बरबत को है फिर से जलने के लिये।

हा। रिनौ ने आके सारा बाग वीरों कर दिया।  
पर ये तो आई इत्ते फिर से बसाने के लिये।  
माँ रुलाती है न सुत को कष्ट देने के लिये।  
को बुडाती दूध इसको अन्न देने के लिये।

तुम बौड कहीं चलदिये ओ बागवाँ शहीद ।  
 वीरान चमन कर गये ओ बागवाँ शहीद । —  
 फूलो ने रूप रग ओ खुशबू जो भीतेरे  
 तुम साथही ले चलदिये ओ बागवाँ शहीद । —  
 जीवनचिराग बुलबुले का क्यो बुझा गये  
 तुम बे रहम क्यो बन गये, ओ बागवाँ शहीद । —  
 क्यो मातृभूमि बिलबिलाती आज इस तरह  
 स्तनी न करते गोद जो ओ बागवाँ शहीद । —  
 यो सुस्क्ता चमन न कभी बागे हिन्द का  
 रहता जो तुमसा पासवाँ, ओ बागवाँ शहीद । —  
 क्यो फूटता नसीबा जो करती न गोलियाँ  
 छतनी बदल तुहारा मे, बागवाँ शहीद । —  
 मुर्झा रही हैं क्यारियाँ, हा आर्य-जाति की,  
 तू बन के मेहरबान आ, ओ बागवाँ, शहीद । —  
 बिगड़ी बनाने आओ जो 'प्रेमी' हो कीमते,  
 सिर से कफन उतार दो, ओ बागवाँ शहीद । — ८



# गुरुकुल का मूल स्रोत

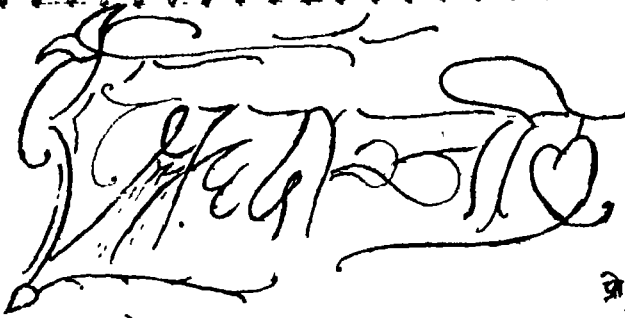
आचार्य

श्री आचार्य देवशर्मा जी

वद्यपि भारत के एक महापुरुष भद्रानन्द जी में उदारता की मूर्ति के रूप में पूजता हूँ तो भी गुरुकुल के मूल में विद्यमान जो भद्रानन्द (महात्मा मुन्शीराम) की उदारता का रूप है। उसे मैं जिस शीक नाम से पुकार सकता हूँ वह उन की (महात्मा मुन्शीराम की) आदर्शवत्ता - (idealism) है। गुरुकुल चारा जो आज 30, 35 वर्ष तक बड़े शक्ति है उसका मूलस्रोत इस महापुरुष का - आदर्शवत्तापूर्णे हृदय था। आदर्शवत्ता जिसका स्वरूप को नहीं देखती, व्यवहार कुशल लोगों की इच्छा की बजाह नहीं करती जैसी जालिदान को अधिक न समझती हुई आगे आगे बढ़ती जाती है। यह हमारा कुल उसी आदर्शवत्ता की उद्यत है। इसी लिए गुरुकुलजगत् इतनी स्विचरित, डालिकूल अवस्थाओं में रहता हुआ जो -

अनन्तक फलपूत रह है । आदर्शवता न आदर्शवाद शब्द  
 हम ने अंग्रेज़ों की भाषा के Idealism शब्द के अनुकरण  
 में बना लिया है । स्वतंत्र रूप में मैं कहूँ तो यह आदर्श-  
 शक्ति कहाने वालो वस्तु ओर कुछ नहीं है, यह उठना  
 चाहते हुए आत्मप्रकाश करना चाहते हुए आत्मा का  
 जेग है, जीवगति है । दुनियाँवादी शक्तियों के मुकाबिले में  
 प्रवल आत्मप्रदर्शन है । एवं इस कुल के रूप में मुष्ठी-  
 राम की महान आत्मा का आत्मप्रदर्शन हुआ है । इस  
 कुल का प्रारण बीज उसकी आदर्शवता है । यदि हम  
 कुलपुत्रों ने कुलापेता से इस आदर्शवता को नहीं ग्रह-  
 ण किया तो हमारा इस कुल में जन्म निरर्थक गया ।  
 यदि 'गुरुकुल' के गुरुओं में यह आदर्शवता त्रितय  
 तन्वील्लास के साथ नहीं संचारित हो रही तो हम इस  
 कुल के संचालक गुरु नहीं कहे जा सकते । अतः जरूरत  
 है कि इस कुल के सब के सब छोटे बड़े बुजुर्गानी उस  
 आदर्शवता से भरपूर रहें, सदा इस गीर्वाण नशि में धूर  
 रहें । एकमत अर्थात् उस आदर्श-पर एकटकी -

लगाये प्रस्त चाल से बढ़ते चले । नहीं ले, केवल ब्रह्मा-  
नन्द की आदर्शवत्ता के आधार पर हम कब तक ज्ञात  
रह सकेंगे, मूलस्रोत के बुरे हीजात्रे पर यह मुसकल  
पुत्राट्ट क्यों न अन्य हीजात्रा - सुख जायगा ?



श्री लालचन्दजी ११११.

श्रद्धानन्द में मुझे सबसे बड़े दर कोई विशेषता मादूम होती है तो वह उसका क्षान्तेज। शरीर की देखभाल, कितना लम्बा-चौड़ा, सुगन्धित सुगन्धित था। जब दण्ड हाथ में लेकर चढ़ते थे तो कितना रोब रचकत था। आज वह बड़े मर्दत भारतवासियों की तरह गर्दन आगे, की भुजा बर नहीं चढ़ते थे। सीधा शरीर रहता था। मादूम होता था, कोई राजदूत चला आ रहा है। शरीर उनको मातापिता से अच्छा मिठा हुआ था। मगर त्रित्य अति नियमपूर्वक आरवीर आयु तक काम करके उन्होंने अपना दम कायम रक्खा था और अपनी हस्ती बनाये रक्खी थी। जहाँ वे व्यायाम की एक धार्मिक कर्तव्य समझ कर करते थे, वहाँ भोजन भी उनका बहुत सीमित और बहुत सात्विक होला था। सीमित तथा सात्विक भोजन के बिना बीर्यरथा असम्भव है। बीर्यरथा के बिना बलवान्, तेजस्वी और ओजस्वी होना भी असम्भव है। व्यायाम करना और सात्विक व सीमित भोजन करना उनके सक्रिय के उभाव का रहस्य तो थे ही, पर एक और

बात थी, जो इनसे पीछे थी, जो इन दोनों को सरल कर देती है और जो इन दोनों की प्रेरक थी - वह थी, यह दयानन्द और उसके स्वप्न की शक्ति के लिये जीवन का समर्पण। धन्य है वह, जिसका जीवन किसी उच्च उद्देश्य के लिये समर्पित है। ऐसे धर्मयोगी का मार्ग अपने आप खुला चला जाता है। वह मम नियम को बड़े शौक से पालन करता है। उसके तप में प्रज्ञा आता है। जो बातें उसके मार्ग में सहायक हों, चाहे वे दितनी ही कठिन हों, उनका वह हृदय से स्वागत करता है। जो बाधक हों, वे कितनी भी शक्तिशाली न हों, उनको वह हृदय से रद कर देता है।

शरीर का तो संक्षिप्त वर्णन हो गया। अब ज़रा इस नीर के हृदय की ओर ध्यान दीजिये। वैसा निर्भीक, वैसा विशाल, वैसा कर्णामय दिव्य था इस दिहावर था। जो प्रभु का प्यारा हो उसे किससे उर ? वह तो उरने वाली की टाटस बंधाने वाला था। वह तो धर्मिय था, दीनों की रक्षा करने, दलितों को उभारने, दुःखियों के दुःख हटाने, फलन करने वाली के आँसू पीछने वाला था। मार्शाल लों के दिनों जब नौकरशाही के घोर अत्याचार का दौरा चल रहा था, वही चर चर जाबर मज़दूरों की मदद करने और उनको दिहावर सा देने वाला था। वह सीधा चलने वाला यदि मुक़्त था तो ज़ाहिर

की सलाम करने के लिये नहीं', परन्तु मजदूर की ज़मीन से उठाकर  
झाली से लगाने के लिये ।

गुरुद्वारा के ब्रह्मचारियों की शैली से और डाकुओं से वह मिल होस  
है, आत्म विश्वास और निर्भयता के साथ रक्षा करता था य सबको  
विरहित ही है ।

स्वामिन् ! तेरे गुण बहुत हैं। सबको गिनने की बजाए यदि  
हम, जिन्हें गिन चुक हैं उन्हें अपने अन्दर धारण करें तो तुम्हें ज्यादा  
तह कर सकते हैं। इसलिये प्रभु से यही प्रार्थना है कि हममें ध्यान  
हेज हो, हमारे शरीर में बल हो, पराक्रम हो, नीरव हो, हम ब्रह्म-  
चारी बनें। व्यायाम बिना भोजन न करने का व्रत है, भोज-  
न सादा और सीमित करें, हमारा ~~जीवन~~ जीवन विसी उच्च उद्दे-  
श्य के लिये समर्पित हो, जिससे कि हमारे लिये सब धर्मों का  
पालन करना सुगम होजाय। हम प्रभु-भक्त हों, निर्भीक हों, आ-  
त्म-सम्मान से जीने वाले हों, विशाल दिह वाले हों, देश और  
धर्म की सेवा के लिये सदा तत्पर हों और अपने प्यारे अहेय  
कुटुम्ब के पर-चिह्नों पर चढ़ कर उसका आत्मा प्रसन्न करें।



प. वि. का. प. जी

स्वर्गीय स्वामी श्रद्धानन्द के स्मारकों में उसका सबसे बड़ा स्मारक गुरुकुल शिक्षा पद्धति है। गुरुकुल शिक्षा पद्धति के पुनरुज्जीवन के यशकाभागी एक मात्र स्वामी श्रद्धानन्द है। स्वामी श्रद्धानन्द ने अपने क्रियात्मक जीवन में सराचाह की महिमा को अच्छे प्रकार समझा था। संसार की बाह्य परिस्थितियों सराचाह, प्रसन्नता तथा आत्मिकोन्नति के लिये क्रिस्तमी-विघातक है - इसका सर्व स्वामी श्रद्धानन्द से छिप चुका न था। गुरुकुल शिक्षा पद्धति का पुनरुद्धार स्वामी श्रद्धानन्द की बहुत अनुभूतियों का भी एक स्वाभाविक परिणाम था। स्वामी श्रद्धानन्द ने गुरुकुल स्थापित किया। अपने जीवनका उत्तम तथा महत्त्वपूर्ण भाग उसने इस गुरुकुल की स्थापना, और इस की उन्नति करने में लगाया। स्वामी श्रद्धानन्द जब कभी भी, परिस्थितियों से जबाबदाकार गुरुकुल छोड़ जाने में बाधित होते थे तो गुरुकुल से दृष्ट रहते हुए भी उन की आशाओं का एक मात्र केन्द्र गुरुकुल बना रहता था। गुरुकुल से अलग छुटी जाने पर भी स्वामी श्रद्धानन्द के १४ वर्षों से गुरुकुल की वास्तविकता ही नहीं हुई। अपने गुरुकुल के जीवन में स्वामी श्रद्धानन्द का महात्मा मुंशीराम ने अपना आचार्यपर वैसा निभाया इसका थोड़े शब्दों में बड़ा दिग्दर्शन किया जा सकता। आचार्य श्रद्धानन्द गुरुकुलकेन्द्र का एक परिश्रमी माली था। अपने प्रसन्नचारियों को गुरुकुल में भेजने के लिये प्रसन्नचारियों के माता-पिताओं को वह अपनी अपूर्व शक्ति से प्रेरित किया करता था। भर्ती के लिये जब बामक अपने संरक्षकों को गुरुकुल आते थे तो उन के मुक्त की कमेटी में आचार्य श्रद्धानन्द स्वयं बैठ कर बड़े परिश्रम से प्रसन्नचारियों को चुना करता था। और अपने चुने हुए प्रत्येक प्रसन्नचारी पर न जाने आचार्य की कितनी आशाएं बनी रहती थीं। आचार्य श्रद्धानन्द को यह गुरुकुलकेन्द्र का बड़ा ही प्रिय था। इसका कीर्ती न चाहता था कि वह इस गुरुकुल से बहुत दूर के लिये बाहिर रहे।

कार्यका बाहिर जाना भी हुओं के बाहरीपुट्टी अपने विषय गुरुकुल में लौटने का मत किया करता था। वर्ष में एक दिन भी वह गुरुकुल से बाहिर रहना न चाहता था। गुरुकुल से बाहिर वह जितने दिन भी रहता था उन दिनों में भी हर रोज वह कर्मों द्वारा गुरुकुल में परामर्श भेजा करता था। और गुरुकुल से खबरे संग्रहण रहता था ताकि गुरुकुल के दैनिक-समाचारों का उसे सदा ज्ञान रहे। आचार्यश्रदानन्द विचार होताते इस के लिये "वेनिटोरियस" सरा गुरुकुल ही बना रहता। आचार्यश्रदानन्द को गुरुकुल की धुन थी, सच्ची लगन थी। वह गुरुकुल को आर्चसम्राज की तथा संसार की अन्य-शक्तियों में एक महान् आश्रयशक्तता समझा करता था। इसी लिये उसने अपने जीवन का अग्रतम समय इस के अर्पित कर दिया। उस की बहुत महत्त्व कि वह इस गुरुकुल को चान के एक १ नौचे का स्वयं निरीक्षण करे, इस के बच्चे तथा बूढ़ों-फसले में उस का कृपा-सम हाथ सदैव बना रहा।

आचार्यश्रदानन्द ब्रह्मचारियों को अपने सामने आसन करता था और उनकी ब्रह्म-चारियों में दे तब स्वयं भी आसन करता रहा। ब्रह्मचारियों के शतवारा, सप्ताहभोजन तथा दानिभोजन में वह शीघ्र उपस्थित रहा करता था। और स्वयं निरीक्षण किया करता था कि भोजन कैसा बना है और कौन १ ब्रह्मचारि कधि से भोजन करते हैं और कौन २ नहीं। बहुत समय तक तो आचार्यश्रदानन्द लगातार ब्रह्मचारियों में ही बैठ कर स्वयं भोजन करता रहा और इसमें वह बहुत आनन्द अनुभव करता था।

आचार्यश्रदानन्द स्वयं गुरुकुल के दो मास के अवकाश में ब्रह्मचारियों समेत भिन्न १ स्थानों पर मक्का में जमा करता था। वह ब्रह्मचारियों की इन यात्राओं को स्वयं की दृष्टि से बहुत उपयोगी मानता था। इसी लिये आचार्यश्रदानन्द से इन यात्राओं का नाम "सत्सनी-यात्रा" रखा था। वह इन यात्राओं पर ब्रह्मचारियों से विद्वन्महिमाता था और उत्तम लेखक को पालोकि दिया करता था। आचार्यश्रदानन्द को ये सत्सनी-यात्राएं इतनी प्रिय थीं कि किसी भी स्थान पर ब्रह्मचारियों को अपने साथ यात्रा में ले जाने से पूर्ण वह स्वयं उस २ स्थान के वृत्तान्तों को पढ़ा करता था और मक्का के समय ब्रह्मचारियों को उन २ स्थानों के महत्त्व समझाया करता था। वह अज्ञानधर्म की अवस्था में ही इन यात्राओं का अध्याय किसी अन्य को विपन्न किया करता था। आचार्यश्रदानन्द एक-दिन इस उद्योग के बहुतसे नौचों की रक्षा के लिये गुरुकुल में सरा-नक्का लगाता रीखा करता था। सत्सनी-दिती उस की अन्य धूर्ति तथा उसके



भीतर बहला हुआ प्रेम का अगाध स्रोत ब्रह्मचारियों को अपनी ओर आकृष्ट करने में जादू का ता कास किया करता था। आचार्य श्रद्धामन्द ब्रह्मचारियों के स्रोतों के परिकर होना करता और ब्रह्मचारियों के प्रातःकाल उठने से पूर्व ही जाग जाया करता था। वह ब्रह्मचारियों और गुरुकुल की रक्षा के निमित्त हर रात एक कठोर जाग निद्रादेवी की गुराँवगनी जोर-कागिराव कर सोते हुए ब्रह्मचारियों का तथा श्रेष्ठ-गुरुकुल का निरीक्षण किया करता था। सर्दियों-गर्मियों में आचार्य की यह प्रथा सदा दृष्टिगोचर होती थी। तत्कालीन ब्रह्मचारियों पर कपड़ा ओढ़ना और उन की नैतिक-दृष्टि से भी रखा जाता उस आचार्य-पिता का विशेष काम था।

आचार्य श्रद्धामन्द को ब्रह्मचारी इतने प्रिय थे कि वह अथवा १२ भी किसी को गुरुकुल से दृष्टान्त देता ही न चाहता था। वह सदा यथा-तथा उन्हें समझाने की कोशिश करता। यदि बाधित होकर किसी को दृष्टान्त देना पड़ता तो आचार्य श्रद्धामन्द समझाता कि उस के देना एक प्रिय अंग अलग हो रहा है। इस प्रिय अंग को दृष्टान्त देना नही दिल ही दिल में रोना देना। ऐसे ब्रह्मचारी को दृष्टान्त देकर किसी आचार्य की समता-बुद्धि से ब्रह्मचारी से दृष्टान्त न होती थी। समय २१ पत्र व्यवहार से या कभी उसके तगा में अज्ञानता जा उपस्थित होने पर उस पर अपनी वैयक्तिक कृपा के उद्देश्य से दृष्टान्त न देता था।

पहले आचार्य श्रद्धामन्द के आचार्यसम का उद्देश्य हुआ उस समय का, जब कि वह आचार्यसम में गुरुकुल में बसता था। गुरुकुल के आन्तरिक जीवन से दृष्टान्त होने की अवस्था में भी श्रद्धामन्द को अपना गुराँव आचार्यसम की भूलाने देना था। अति को लक्ष्मीदा जिस २ ब्रह्मचारी के साथ आचार्य श्रद्धामन्द ने अपने आचार्यसम में "हृदयों को एक बनाने की" प्रेरणा की थी, उस प्रेरणा को आचार्य श्रद्धामन्द ने अपने जीवन भर में कभी न भूलना था। ब्रह्मचारी अपने आचार्य के प्रति कर्तव्यता के बंध से दृष्टान्त देते हुए पण्डित महत्त्व आचार्य अपने आचार्यसम के बंध से कभी दृष्टान्त नहीं देता। इसे अपने ब्रह्मचारियों के देशों के सुनने में सदा उपस्थित रहनी। ब्रह्मचारियों को रोनी गुराँव नाला व्यक्ति यह आचार्य की दृष्टि में अज्ञान जंघला था। यह ब्रह्मचारियों का यथा देते देता था जैसे कि कोई अपने प्रिय तथा बुरे सम्बन्धी का करे।

ब्रह्मचारी कैला भी हो उस की मदर जोर सहायता दे लिये मर आकार्य सदा उद्यत रहता था।

हे लक्ष्मी आकार्य (मेरा आचार्यत्व भय्य हुआ, मुकल हुआ) लक्ष्मी आकार्य (मेरी लक्ष्मी  
शुद्ध जजमि को अपनी हजगीय दिव्य भूर्ति मे नू स्वीकार कर ।



डा. एच्.कृष्ण जी. M. B. S.

प्रथम दर्शन : —

कोई २१ वर्ष की बात है। अभी एफ़-एस सी. में पढ़ता था कि पता चला कि आर्य समाज (लाहौर) के उत्सव पर गुरुकुल के गुरुभाषिणाता महात्मा मुन्शीराम जी का व्याख्यान होगा। जिस दिन रात्री के ८ बजे लैब्रर था, ठीक ५ बजे ही वेडाल में मित्रों सहित पहुंचे, परन्तु स्थान आधे से अधिक घिर चुका था। ३ घंटे पहिले आने पर भी दूर ही बैठना पड़ा। उतना समय कैसे बीतता। उधर उधर प्रहरी आरम्भ किया कि महात्मा जी कैसे हैं। बन्द गले का कोट पहिने, सिर पर बंडी सी पगड़ी बांधे, एक कट्टर समाजी बोल उठा 'पता लगता है, अभी तक महात्मा जीके कभी दर्शन नहीं किये। क्या आर्य समाजी हो?'

चोरे तो सरल थी और फिर विद्यापीठ का। परन्तु पढ़ते थे गवर्नमेन्ट कॉलिज में, इस लिये दुकानि के लिये कहा — 'जी। अब समाज में प्रविष्ट होने का विचार है। पिता जी के मना करने पर भी महात्मा जी का व्याख्यान सुनने आया हूं।' सुनते ही कट्टर समाजी मौन हो गये और प्रेम से महात्मा जी का परिचय देना आरम्भ कर दिया — 'बड़े सुडौल, लम्बे चौड़े जबान, लम्बी बु-जुर्गाना दाढ़ी, ऊंचा माथा, चौड़ी छाती, चेहरे पर सदा प्रसन्नता और खेब। देखते ही भस्त्रक भुब जाता है।'

किसी प्रकार ३ घंटे बीते और भजन आरम्भ हुए। भजन आधा ही हुआ था कि दरवाजे पर शोर मचा — 'महात्मा जी आ गये।' फिर क्या था सब लोग दर्शनों के लिये खड़े हो गये और जब जय के नारे लगे। उधर से मंच पर से आजाये मिलने लगी — 'बैठो। बैठो।' इस उठने बैठने में हम मंच के पास जा पहुंचे।

महात्मा जी के खड़े होते ही सन्नाटा छा गया। सुई तिरती भी सुनाई दे सकती थी। दर्शन खुले हुए और सचमुच ही सिर भुब गया।

उत्तीत होता था मानो हिमालय की कन्दरा में से कोई तेजस्वी तपस्या कर के लौटा है।

व्याख्यान आरम्भ हुआ। पटियाला में समाज-मन्दिर का भंडा सरदार ने उतरवा दिया था। बात मारुली सी थी परन्तु बर्णन के सा रोमांचकी श्रोता धाड़ें मार मार कर रो रहे थे। समाज के लिये सब के दिल में जोश भर गया। बहूता की अशूर्ब शक्ति का उसी दिन परिचय मिला।

चरणों में:—

इसे दस वर्ष तक, महात्मा की मंच पर खड़ी शकल को दिल में कई बार देखा। उस के गुरुकुल की स्तुति सुनी। महात्मा और उस के गुरुकुल के दर्शनों की इच्छा प्रबल हो उठी। मित्रों से गुरुकुल उत्सव पर चलने की राह वट्टरी। इसी बीच में गुरुकुल से लौटे एक सरसक ने कहा—‘गुरुकुल के चिद्धित्सक डा. सुखदेव जी चले गये। उन का स्थान खाली है। तुम चले जाओ।’ सुनते ही पत्र भेजा। उतर मिला, चले आओ। सोचा, नौकरी करने के लिये अपरिचित स्थान पर चलने से शर्ब ह्यानबीन करनी उचित है। एक मित्र ने कहा—‘अरे! गुरुकुल से आचार्य रामदेव रुष्ट होकर भागे हैं। उन से गुरुकुल के सब दोष पता चल जावेंगे। उन से मिलने के पीछे विचार बनाना। बात ठीक जंची। उस उम्र में इतना न सोचा कि एक अपरिचित नवपुत्रक को रामदेव जी पहिलीवार ही मिलने पर सब कुछ कैसे बता देंगे? फिर भी चतुर गुप्तचरों की न्याई आचार्य जी के पास पहुँचे। सुनते ही कि मुझे गुरुकुल से बुलाया आया है, आचार्य जी बोले—‘तुम्हारे अहो भाग! ऐसे पबित्र स्थान की सेवा पुण्यकर्मों का फल है। शीघ्र जाओ।’ विस्मय से प्रवृद्ध—‘जी! भाग स्वामीजी से लड़कर क्यों आये।’ उतर मिला—‘पुत्र का पिता से रुष्ट नहीं होता! यह सुन कर क्या कहा जाता। सोचा गुरुकुल में परस्पर इतना प्रेम! भगवद्देव के पीछे भी इतना अपनत्व।’

दूसरे ही दिन जाने पर विचार किया। किसी ने कहा ‘भार्य महाराज कृष्ण से भी मिल लें।’

महाराज कृष्ण आचार्य जी से भी अधिक चतुर। बोले—‘घनी के

पुत्र हो। सेवा-सदन में आ-जाओ।' जैसे शब्द 'जी।' इतने लम्बे व्रत करने पर यह बीच ही में आकर पड़ती। उत्तर मिला - 'कीई बँदखाना नहीं। जब चाहे आ-जाना।' पास ही कीई बूढ़ा बैठा था, बोला - 'बेटा! इस कृष्ण में भी समाज की सेवा की, तुम भी कृष्ण हो। इस का पुत्र प्रकाश पत्रिका है, तुम्हारा पुत्र प्रकाश। बस, तुम भी समाज की ही सेवा करो।' कार तो घुल गये। आने का निश्चय पक्का हो गया। तीसरे दिन पं० बिम्बम्बरनाथ जी तथा देवराज जी लेडी के साथ गुरुकुल पहुँच गये।

स्वामी जी के गुरुकुल में पहुँचे परन्तु स्वामी जी न थे। घूमने पर पता-चला स्वामी जी तो द्रोड़ गये। बड़ी उदासी आ गयी। फिर खुँडते ही ओले। कमर टूट गई। अब आजो गये थे; वापिस क्या जानो।

तीन महीने बाद आचार्य रामदेव जी भी आ गये। वृज्य भाई बिम्ब-नाथ जी, गुरुकुल में भेरे पहिले मिन, बुझा जाते पता-नही आचार्य जी को क्या कर गये कि उन्होंने सेवा-सदन में लेकर ही द्रोड़। उसी वर्ष उत्सव पर स्वामी जी गुरुकुल पधारें। *Wanna* के सम्बन्ध में कुछ शब्दों के लिपि उल्टर को पाँद दिना। मैं भाग भाग गया। दुबारा दर्शनो का सौभाग प्राप्त हुआ और इतने समीप से। चरणों में गिर पड़ा। स्वामी जी ने कहा - 'आप ही सेवा-सदन में आए हैं।' फिर झुका कर मेने कहा - 'आशीर्वाद दे दे कि प्रण प्रणों से निभे।' वे बोले - 'मेरा तो रोम रोम आशीर्वाद देता है।' फिर तो चरणों में झुका ही था, हृदय और मन भी झुक गये।  
पदाः -

मुझे सेवा-सदन में प्रवेश करने का काम आचार्य रामदेव जी का था। कारण वे ही जानें। उन दिनों स्वामी जी और आचार्य जी में मन-मुटाव हो रहा था। मुझे इस का पता न था। मुझे तो आचार्य जी के ये शब्द स्मरण थे कि - 'क्या पुत्र कभी पिता से कष्ट नहीं होता।' परिणाम यह हुआ कि आचार्य जी और स्वामी जी में कनिष्ठता सम्बन्ध कर स्वामी जी के सामने आचार्य जी की प्रशंसा कर उठी। स्वभावतः स्वामी जी ने यही सम्बन्धना था कि मैं उनका आदमी नहीं। स्वामी जी की मुझ पर पितावत् कृपा और मेरी भक्ति में परदा आना आरम्भ हो गया। मैंने सम्बन्ध लिया कि इन्चि यो की लड़ाई में चीटिये पिसा ही

करती हैं। जिस नेता के समीप रहो वह बोक सा प्रतीत होने लगता है और जिस के दूर रहो, वह बेगाना समझता है। सच है बड़े वृक्षों की परदाई मात्र से ही छोटे वृक्ष सुरक्षित होते हैं।

एक मात्र सम्बन्ध :—

वैयक्तिक सम्बन्ध तो समाप्त हो गया परन्तु फिर भी स्वामीजी की कृपा बनी रही। ही रही कारण मैं गुरुकुल में काम करता था। यही एक मात्र सम्बन्ध पर्वति था। स्वामीजी उसी सम्बन्ध के हेतु गुरुकुल के कार्यकर्ताओं को प्रेम से मिलते। गुरुकुल में भी आते तो गुरुकुल के शत और भविष्य पर विचार करते। कहीं भी नुटि देखते तो उनके हृदय पर वज्र सा गिरता प्रतीत होता। कह देते— 'आया भाई, यह मेरा पौधा अब तुम्हारे हाथों में, जैसे मज़ी रखो।'

गुरुकुल में बाढ़ आई। स्वामीजी इसकी दशा देखने की भांगे आए। घूम घूम कर देखा। अपने बंगले पर पहुंचते ही रो पड़े। मौन हो गये। अन्त में मरि कहा— 'कुम्हार, तेरी उच्छा।'

गुरुकुल को वहां से लाने का प्रयत्न था। स्वामीजी तब उठे मानो किसी मार्मिक वृण पर नमक छिड़क दिया हो। जो जरा भी पुरानी छद्मि की प्रशंसा करता उस से कुछ घुल कर बाते बरते और अपना दुःख प्रकट करते। जिस से जरा भी बिरहू कहा, उसे पहिले तो समझाने। यदि वह रोब से भी हां न करता तो कह देते— 'तुम क्या जानो पीर पराई। क्या मैं अपने जीवन में ही अपने इस पौधे को उखाड़ते देखूं ? मुन्नी (मुनी अमनसिंह) जी का शृण क्या भूल गये।' सचमुच स्वामीजी ने अपने जीवन में गुरुकुल उधर आते नहीं देखा।

मैंने पूछा— 'स्वामीजी! यदि फिर बाढ़ आए तो गुरुकुल कैसे बचे।' बोले— 'बन्दा बना लो। हिम्मत नहीं क्या! मैंने तो छोटे छोटे बालकों को साथ लेकर स्वयं पत्थर टोए और बन्दा बनाया। क्या तुम लोग नहीं कर सकते।'।

थोड़ी देर पीछे मैंने कहा— 'महाराज! यहां मल्लिरिया अधिक है।' गुरन्त उतर मिला— 'उधर भी कम नहीं है। यहां की धर्ती तो रेतीली है, पानी शीघ्र जज्ज हो जाता है। उधर गड़हों में सानी

वह्रा करेगा और मलेरिया अधिक होगा।'

मैंने कहा - 'उधर हम दुनियां से असल थलण पड़े हैं।'

मानों बिधेले सांप पर बँर पड़ गया हो। क्रोध में बोली - 'इसी पाप-मयी दुनियां से बंधाने के लिये तो मैं गुरुकुल यहाँ लाया था। तुम तो इस्लामी जड़ूल ही उरबाइते हो। भाई। यदि बिजली चारते हो, अपनीलगा लो। अपने नलके लग लो। परन्तु परमात्मा के नास्ते गुरुकुल को बस्ती में ले जाकर मेरे ब्रह्मचारियों को आजकल के व्यभिचार तथा कैशन की हवा न लगाने दो।' पर गुरुकुल तो उधर आकर ही रहा।

देहली में:—

देहली में कई बार गया। स्वामी जी को अवरप मिलता। जिस प्रेम से बिठाने, भोजन को प्रश्नते। गुरुकुल के एक एक आदमी का नाम ले कर प्रश्नते; अब भी जब याद आता है तो दिल भर जाता है। सचमुच उनके दिल में गुरुकुल के लिये प्रेम था। प्रतीत यही होता था कि गुरुकुल में यद्यपि नहीं हैं; फिर भी उनका दिल गुरुकुल की एक एक ईंट में; एक एक व्यक्ति में बसता था। नौकर चाकर तक के नाम उनको याद थे। कस्त-भेद होने हुए भी गुरुकुल से जो प्रेम करता था, वह उनका अपना था। वास्तव में वही थे गुरुकुल के कुल-पिता।

6८

आजकल





श्री. य. सत्यदेव जी

दिवंगत आचार्य स्वामी भृहान्द्र जी की जीवनी लिखने के लिए उन के पुराने कागज़ों और समानारपत्रों की फाइलों को टटोलते हुए 'भृह' के 24 नवंबर के (संवत् १९७८) एक लेख की अतिम पंक्तियों पर सरसा दृष्टि पड़ी और उन से पता चली कि आचार्य को हम से - गुरुकुल के स्नातकों से क्या आशा थी? लेख का विषय बही था, जिस पर इस समय भी आर्यसमाज में विरोध नहीं है। जो लोग आर्यसमाज को धर्मसिमा बनाकर सरकार की नज़रों से छुट कर लेना चाहते हैं, उन को सरकार का कृपापात्र भी बना देना चाहते हैं, उन की हूल को आचार्य ने उस लेख में दिखाना था और उस का खण्डन भी किया था। उस लेख का शीर्षक था - "क्या धर्मसिमा सिद्ध कर के बन जाओगे?" उस निश्चत लेख की अतिम पंक्तियों में थी - "आर्यसमाज ब्रिटिश गवर्नमेंट के लिए एक बड़ी भयानक शक्ति है। यह ब्रिटिश गवर्नमेंट का १९०६ में ही निश्चय था। निश्चय तो अब भी वही है, परन्तु भय उत्पन्न नहीं रहा क्योंकि न तो आर्यसमाजियों ने ही अपने सिद्धान्तों को क्रिया में लाने का यह प्रमाण दिया और न गुरुकुल के स्नातकों, ४ व ५ को शेरु कर उस कर्तव्य का पालन

किंदा, जिस की उम्र से आशा थी। मैं चाहता हूँ कि मेरे इस लेख को आर्यसाम्राज्य के समासद् साधारणतया तथा गुरुकुल के स्नातक और ब्रह्मचारी निःशेषतः अढ़ मन से पढ़ें और अपने कर्तव्य को पहचानें।”

उस लेख की नकल फुल्लसकेप के १४ पृष्ठों में छपी हुई है। इस लिये उस को इस लेख के साथ दे सकना संभव नहीं और वह के कुछ अंशों को यहाँ उद्धृत करने से भी मतलब पूरा नहीं होता। फिर भी उस लेख का आशय समझना कुछ कठिन नहीं है। 'सत्याप्रतिपाद' के दूरे समुल्लासके राजनीति का इतना विस्तृत विवेचन होने पर, जहाँ तहाँ उस ग्रन्थ में भारत के लिये सप्ताज्य, चक्रवर्ती राज्य तथा सार्वभौम चक्रवर्ती राज्य का स्पष्ट उल्लेख करते हुए, 'आर्यभिनियम' सरीखे राष्ट्रीयता-प्रधान प्राथमिक कर्तव्य के होने हुए और सबेरे शास्य प्रतिदिन सन्ध्या में सौ वर्ष की आयु में जीवनपर्यन्त कभी भी पराधीन न होने की प्रार्थना करते हुए भी आर्यसाम्राज्य के राजनीति से सम्बन्ध होने न होने के सम्बन्ध में चर्चा होना ही अत्यन्त लज्जास्पद है और गुरत कुछ घृणास्पद भी है। स्वयम्भूत देश का और देश से भी अधिक आर्यसाम्राज्य का पर महान् दुर्भाग्य है कि आर्यसाम्राज्य सरीरनी प्रगतिशील, संगठित, शिक्षित एवं उन्नत संस्था को इस चर्चा ने प्राणहीन शरीर और प्रकाशहीन दीपक के समान निस्तेज, निर्जीव और प्रभावशून्य बना दिया है। देश की अज्ञादी के जीत जाती हुई जो सत्ता मैदान में आई थी, उस के इस प्रकार सन्देहावस्था में पड़ने से अधिक शोचनीय अवस्था और क्या हो सकती है ?

आर्यसाम्राज्य के इस शोचनीय अवस्था में पड़ने का

कुछ शक्तिवान है और कुछ कारण भी है। १९०१ से लगभग १९१० तक और बाद में भी सरकारी दमन का एक मात्र लक्ष्य नर अधिसिमाज की बढ़ती हुई शक्ति को दबाना और कुचलना था। नर राजभक्ति का युग था। राजद्रोह के अप्रति लोकमान्य तिलक ने भी १९०६ में सरकारी अदालत में घट ही सिद्ध करने का यत्न किया था कि मैं राजद्रोही नहीं हूँ। पञ्चन केसरी लाला लाजपतराय जी को भी देशनिकाले पर निर्दोषि साबित करने का ही आदेश लाने देश में उठा था। उस समय अधिसिमाज ने भी सामूहिक रूप में अपने को राजभक्त बनाने की भरपूर कोशिश की थी। स्वामी भद्रानन्द जी - उस समय के महात्मा मुंशीराम जी - अहोरात्र घट सिद्ध करने में लगे रहते थे कि अधिसिमाज राजद्रोही संस्था नहीं है। उन्होंने इस बात को सिद्ध करने में कोई भी बात उठा नहीं रखी थी। पर, अधिसिमाजियों को उन का एक ही आदेश था कि 'निरा हो कर धर्मपथ पर चलो, किसी भी सांसारिक शक्ति के भय से अपने धर्म को मत्त होड़ो।' 'यदि तुम से घट कहा जाये कि अन्ते परमात्मा और उस की यन्त्रिणी मापी नेर से निमुख हो कर ही प्रजाधर्म का पालन हो सकता है तो तुम स्पष्ट उत्तर दो कि जिस आत्मा पर संसार के चक्रवर्ती राजा का भी अधिकार नहीं हो सकता, उस को सांसारिक ऐश्वर्य पर - मौद्वावर करने के लिए तुम उद्यत नहीं हो।' ————— जहाँ नेर और 'इण्डियन पीपल कोउ' का विरोध हो, वहाँ श्रुति को धर्म का मानना तथा जहाँ परमात्मा की आज्ञा का सांसारिक राजा की आज्ञा से विरोध हो वहाँ परमात्मा की शरण लेना। यदि अन्तीष्ट न हो तो फिर अधिसिमाज में घट कर भी क्या लाभ होगा?" सारांश यह है कि अधिसिमाज

सम्राज को राजभक्त अथवा अ-राजद्रोही सिद्ध करने में अहोरात्र लगे रहने पर भी स्वामी जी (उस समय के महीला जी) ने आर्यसम्राज को सरकार की अथवा सरकारी कर्मचारियों की सुशामदा, चायलूसी आदि से सर्वथा अलिप्त रह कर अपने निश्चित मार्ग का ही हृदय के साथ अवलम्बन करने का सदा उपदेश अथवा आदेश दिया था।

देश की परिस्थिति ने कुछ ऐसा पलट खाया कि राजभक्ति का स्थान राजद्रोह ने ले लिया। परम राजभक्त और सहयोग के प्रश्न पर लोकमान्य तिलक तथा देशबन्धु दास आदि से अमृतसर कांग्रेस पर तीव्र मतभेद रहने वाले महात्मा गान्धी ने ही राजद्रोह, सत्याग्रह और असहयोग का ऐसा तीव्र आन्दोलन देश में रचड़ा कर दिया कि देश के राजनेतिक शब्द-कोष में शब्दों तथा परिभाषाओं का अर्थ ही बदल दिया। देश के राजनेतिक दृष्टि कोण में भी जैसा ही परिवर्तन हो गया। स्वामी भूदानन्द उस समय कहां थे? देहली के सत्याग्रह के मैदान में, प्रणव पर मेरी चोरी-चोरियों की नंगी संगीतों के सामने हाती तान कर खड़े होना और यह कहना कि मैं खड़ा हूं, गोली चलाओ' - और दूसरी ओर ४०-५० हजार की भीड़ पर अजुली के इशारे से नियन्त्रण रखना, देहली की शाही जामा मस्जिद के मिनार पर से प्राषण देना और हिन्दुओं से भी अधिक मुसलमानों के दवाओं पर अधिकार करना, मौजी शासन से आरत पञ्जाब की सरकारपट्टी के लिए सब से पहले लाहौर पहुँचना, जलियाँवाला बाग के शौरव हत्याकाण्ड के बाद उस अमृतसर शहर में जिस का अंग प्रत्यंग हिदा हुआ था कांग्रेस के असम्भव जंचने वाले अधिवेशन को उतनी लफलता के साथ सम्पन्न करना, उस अधिवेशन के स्वागतार्थ हो कर राष्ट्रभाषा हिन्दी में ही अपना प्राषण करना, उस प्राषण में देशवासियों से दलि

तोहार के लिए अपील करना और १-१-२२ में सिन्धु के मुकाम बाण के लिए जेल जाना - कुछ ऐसी असाधारण घटनायें हैं जिन से स्वामी जी देशभक्त भक्त से राजद्रोही होने का स्पष्ट परिचय मिलता है। जैसे तो सन् १८८१ में ही आप के देशभक्ति पूर्ण जीवन का सूत्रपात हो चुका था, जबकि आप कलती झलती हुई नकालत को लात मार कर, संसार में ऐश्वर्य-सम्पन्न होने की अवस्था में गले में थोली उल गुरुकुल सरीखी, होलकर आना खरी राष्ट्रीय संस्था की स्थापना का निन्वार पक्का कर घर से निकल पड़े थे। गुरुकुल निश्चलविद्यालय स्वामी जी की राष्ट्रीयता, देशभक्ति, ईश्वरि, स्वामिमान, खानलम्बन एवं आदर्शवाद आदि सद्गुणों की जीती जागती निशानी है। कोई कूपसयूक इस को माने का न माने किन्तु आर्यसमाज को गुरुकुल की ओर इसी लिये स्वामी अहमन्द जी की नदौलत जो प्रतिष्ठा, गौरव एवं श्रमिता प्राप्त हुई है, उस का शतांश भी नाकी सब कार्य द्वारा प्राप्त नहीं हुआ है। अतः, अत्रिप्राय इतना ही है कि स्वामी जी राजभक्त होते हुए भी हाकिमपरस्त, चापल्य अपना कुशमही नहीं थे और आर्यसमाज को भी भयानक दमन के दिनों में आप को ही ऐसे जोर पत्तन से बनाया था। उध के बाद देश की राजनीति के साथ स्वामी अहमन्द जी तो बरत गये किन्तु आर्यसमाज 'राजद्रोहीन होने की', 'धर्मो राजनीति से अलग रहने की' और 'केवल धर्मोपदेशक बनने की' ही माला धरता रहा। आर्यसमाज का बह भी एक बड़ा दुर्मिष्ठ ही था कि आर्यसमाज में हाकिमपरस्तों की संख्या बढ़ती चली गई और ऐसे लोग आर्यसमाज में अधिकारी भी प्राप्त करते चले गए। नीतिकुशल सरकारी अधिकारियों ने भी जब बर देखा कि दमन की बड़नी गोली का काम निष्पत्ती की मीठी गोली से निकल

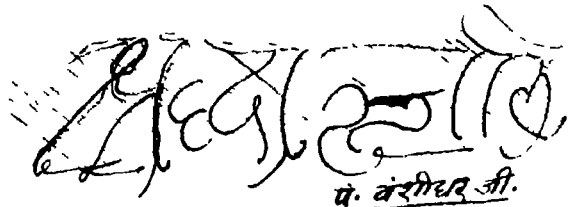
सकता है, तब उन्होंने ने भी दण्ड की नीति का प्रयोग छोड़ कर साम्र तथा राज की नीति को ले काम लेना शुरू कर दिया। जो लोग केवल आर्थसिमाजी दृष्टि से जंची तथा जिम्मेदारियों जिम्मेवारी की नौकरियों के अन्तर्गत आ सकते थे उन को जंची से जंची नौकरियों तथा नदी से बड़ी जिम्मेवारी दे पद दिये जाने लगे। शयसहब और शयनहादुर आदि के रिश्ताबों की वृत्त भी दोनों हाथों से आर्थसिमाजियों को बंधी जाने लगी। इन सब का स्वाभाविक परिणाम यह हुआ कि व्यक्तियों तथा अधिकारियों के साथ २ आर्थसिमाज का भी सांघटिक रूप में कुछ ऐक्य नैतिक-वृत्त शुरू हो गया कि स्वामी भद्रमजी सर्रीखे आगी और तपस्वी नेतृ के प्रत्यक्ष आन्तरण का, ऋषि दामोदर के स्पष्ट आदेश तथा उपदेश का और नित्य प्रति सन्ध्याओं की जाने वाली 'अदीनाः स्वाम शरदः शतम्' की प्रार्थना का भी आर्थसिमाज के लिए कुछ अर्थ न रहा। अप्रतिगामी शक्तिों का आर्थसिमाज में जोर हो गया। सरकार के आश्रित रहने वाले नौकरियोंपेश लोग आर्थसिमाज में अधिक थे। जिन की प्रवृत्ति राजनीति की ओर हुई, उन्होंने ऐसे आर्थसिमाजियों के साथ मजदूरी करने की अपेक्षा कांटेस तथा कांटेस से सम्बन्धित संस्थाओं के साथ मिल कर काम करना अधिक अच्छा समझा। गगनचुम्बी जंगों और आकाशों से भरे हुए हरप बले युवकों को सन्ध्याएवन के दामरे में बांध रखना असम्भव था। वे सब आर्थसिमाज से दूर होते चले गये। आर्थसिमाज ने 'सत्यार्थप्रकाश' के दृष्टि समुल्लास को कुछ मुला-ही-सा दिया और युवकों ने आर्थसिमाज को मुलाना शुरू कर दिया। युवकों की प्रेरक शक्ति के बिना जब कोई भी संस्था आगे नहीं बढ़ सकती तब आर्थसिमाज की गड़दी की गति भी हब ही गड़ी। व्यक्तियों के समग्र संस्थाओं का नैतिक वृत्त भी उन को प्रभावित

बना देता है। आर्यसाम्राज्य की इस समय कुछ ऐसी ही अवस्था है। इस का प्रभाव मिट-सा गया है और सरकार भी इस से उतनी प्रभावी नहीं रही जितनी पहले थी। सरकार की साम्र और दान की नीति पूरा काम कर गई।

आर्यसाम्राज्य के नैतिक पतन अथवा धर्म को राजनीति से अलग रखने के लम्बे इतिहास को यह संक्षेप है। स्वामी श्रद्धानन्द जी ने उस लेख में इस प्रकार पैदा हुई अवस्था की ओर गुरुकुल के स्नातकों और ब्रह्मचारियों का ध्यान विशेषरूप में आकर्षित करते हुए यह आशा और विश्वास भी प्रकट किया था कि वे इस अवस्था को बदलने का कुछ न कुछ यत्न अवश्य करेंगे। इस में सन्देह नहीं कि सन् १९३० और १९३२ के सत्याग्रह आन्दोलनों में गुरुकुल काजरी के ब्रह्मचारियों ने अपनी पदार्थ की ओर स्नातकों ने अपने कार-बार, घर-गृहस्थी तथा सुखसम्पत्ति की कुछ भी परवाह न कर जो त्याग तथा कष्ट-सहन किया है उस का इतिहास अत्यन्त उज्ज्वल है और उस से गुरुकुल तथा आर्यसाम्राज्य का मुस भी निश्चय ही उज्ज्वल हुआ है किन्तु राजनीति के सम्बन्ध में आर्यसाम्राज्य की सामूहिक स्थिति आज भी वैसी ही है जैसी कि तब थी, जब स्वामी श्रद्धानन्द जी ने ऊपर का लेख लिखा था। १९३०-३२ के आन्दोलनों में विशेषतः ब्रह्मचारियों तथा स्नातकों के कार्य से आर्यसाम्राज्य की उस अवस्था में इसीलिए कुछ परिवर्तन नहीं हो सका कि नए सब कार्य तथा कष्ट-सहन आर्यसाम्राज्य के साक्षित न हो कर कांग्रेस तथा अन्य संस्थाओं के साक्षित हुआ था और नए सामूहिक रूप में न कर के बहुत कुछ व्यक्तिगत रूप में ही किया गया था।

दिवंगत आचार्य की उस आशा अथवा आकांक्षा की ओर ही गुरुकुल ने स्नातकों तथा ब्रह्मचारियों का ध्यान विशेषरूप से आकर्षित करने के लिए यह लेख लिखा गया है। अजमेर की श्रीमद्-दयानन्द-निकीर्ण-अर्द्ध-शताब्दी पर यह स्पष्ट हो गया है कि आर्यसमाज के नवोदय नेता उस को "साम्प्रदायिकता" कहते हुए भी कुछ ऐसी आत्म-बन्धना में उलझ रहे हैं कि एक ओर तो वे उस को साम्प्रदायिकता की दलदल में धकेल रहे हैं और दूसरी ओर उस को हाकिमपरस्ती की गंदगी में धंसा रहे हैं। इसलिए दिवंगत आचार्य की उस आशा को पूरा करने का यह और भी अधिक संगीत अवसर है। हिस्सापरस्ती (साम्प्रदायिकता) और हाकिमपरस्ती दोनों से आर्यसमाज को बचाये बिना आचार्य की यह आशा पूरी नहीं की जा सकती। स्वामी अहमन्द जी के नेतृत्व, त्याग एवं तपस्या को आर्यसमाज के लिए पुनीत मानने वाले आर्यसभासदों और उनके आचार्यों, मानने वाले गुरुकुल के स्नातकों तथा ब्रह्मचारियों को उनके प्रति श्रद्धाञ्जलि अर्पित करते हुए आज के दिन यह सौम्य-गार्हस्थ्य दिवस आचार्य की उस आशा को किस प्रकार पूरा कर सकते हैं और कैसे आर्यसमाज को हाकिमपरस्ती से अलिप्त रख कर राजनीति एवं धर्म के बारे में सन्दिग्ध अवस्था से उस को उबार सकते हैं? इस संशयात्मकता से आर्यसमाज को बचाने के लिए अपने कर्तव्य-कर्म के निर्णय करने और उस में तन्मग हो कर लग जाने का आज ही दिन है।





पं. वंशीधर जी.

स्वामी श्रद्धानन्द भारत के उन महापुरुषों में से थे जो भरत को अपने प्राचीन-युग के सब से उन्नत काल से भी अधिक उन्नत, महान् और गौरवपूर्ण बनाने के महत्वाकांक्षी थे। उनके उदार हृदय का आकाश भरत-वर्ष की उन्नति के महिमामय स्वप्नों की रङ्गीन द्वापा से आभासित था, जिन को एक जीवित और जागृत प्रतिमा बना देने के लिये उन्होंने अपने जीवन की समस्त शक्ति को लगा दिया। उनमें इस उद्देश्य की पूर्ति के मार्ग में जो बिजल बाधाएँ आईं, उन्हें उन्होंने अपने अनुसन्धीय साहस और प्रतिभा-पूर्ण कार्य-कुशलता से अपनी विजय का स्मारक चिन्ह बना कर छोड़ दिया। उनमें घुटने से भी नीचे पहुंचने वाले लम्बे हाथ इस बात के साक्षी थे कि वे किसी ऐसे महान् कार्य को करेंगे जो उन ही के विराल शरीर के समान अपनी दाती खोल कर और अपना गौरवपूर्ण स्त्रि उठा कर बड़ी शान के साथ किसी प्रातिशील दिशा की ओर अग्रसर होगा। जिन्होंने कभी अस्मात् ध्यान पूर्वक उन के भुर्रियां पठे हूँ, सुब की उन ही प्रकाशमान बूढ़ी आंखों का अध्ययन किया है, जिन में आत्म-विश्वास, निर्भीकता और अटल भ्रुवा के हीपक की निष्कम्भ शिरवा की किरणें उमकृत हो रही थीं; वे इस बात को अचरितरह जानते हैं कि उन में नवयुवकों की वह उमकृत

हुई तद्रूपता थी, जिससे अविश्वसनीय सुगमता के साथ किसी बुढ़ापे का बुढ़ापा भी पूर्व-जमान हो सकता था।

और मृत्यु तो स्वयं उन का एक नया जीवन था। उन की इस तरह जीवन-मयी मृत्यु हुई- इस में तो कोई आश्चर्य की बात ही नहीं है। आश्चर्य तो तब होता, जब कि उन की मृत्यु इस तरह जीवन-पूर्ण न हो कर मृत्यु-मयी होती। जीवन का अन्त जीवन ही हो सकता है; मृत्यु मरी। जिन लोगों का जीवन केवल सांस लेती हुई मृत्यु है, वे भला उस मृत्यु के श्लेष को क्या समझेंगे, जो कि स्वयं एक सांस-लेता उभा प्राण-मय जीवन है। स्वामी श्रदानन्द की मृत्यु ने उन के जीवन पर जीवन की मुहर लगा दी। यह वह मरण था, जो कि जीवन का महान् उत्सव होता है।

आज उसी महान् आत्मा के जीवन के उत्सव का जय-दिवस है। हम लोग आपस के विचारों के मतभेदों का बड़ा श्लेष करते हैं। जिन लोगों के विचार हमसे नहीं मिलते, हम उन्हें इस योग्य ही नहीं समझते कि वे किसी प्रकार हमारी विचार-धुनी में भी प्रवेश कर सकें। परन्तु उन विचार-भेदों से ऊपर एक शक्ति है और वह है उन विचारों को द्वि-समक रूप में परिणत करने के लिये सब प्रकार के दृष्टियों को सहन करने की वह सराहनीय अलौकिक बड़ा-समता, जो कि असम्भव की सम्भव कर के दिखला सकती है। यह बड़ी समता है, जिसे आग उगड नहीं कर सकती, हवा सुरबा नहीं सकती और संसार की कोई अदम्य शक्ति भी

दबा नहीं सकती। ऐसी ही क्षमता, ऐसी ही असाधारण शक्ति विचारमयी दायियों को ऐसी नास्तबिकता में परिवर्तन कर देती है, जिस से कि यह संसार की एक प्रतिदिन की अत्यन्त साधारण वस्तु बन जाती है। इसी शक्ति के द्वारा विचार शक्ति धारण करते हैं और जितनी ही यह क्षमता महान होती है, उतनी ही उन विचारों में प्रबलता और महत्ता उत्पन्न हो जाती है। उन किसी के विचारों की प्रशंसा करें या न करें परन्तु क्या इस बल-शक्तियों को आदरणीय एवं सुलभ समझने में किसी की दो सम्मतियां हो सकती हैं?

स्वामी भृगुचन्द्र ने इस प्रकार की असाधारण क्षमता थी। उन्होंने अपने जीवन में ऐसे कार्यो को करके दिखाया, जिन से केवल लोगो का मतभेद ही नहीं था परन्तु जिन्हें लोग सर्वथा असम्भवनीय समझते थे। आज के कार्य प्रतिदिन की उन वस्तुओं में सम्मिलित हो चुके हैं कि जैसे वे कभी असम्भव थे, यही लोगो को विश्वास नहीं होता। उन्होंने अपनी इस विराट, अनभिभवनीय और अनन्त ज्वाला-सुरभी शक्ति से जिन विचारों में जीवन संचारित कर दिया वे विचार आज उस सीमा तक पहुँच चुके हैं जहाँ कि कोई अत्यन्त साधारण व्यक्ति भी पहुँच सकता है।

आज इस महान् पुरुष के जीवन-महोत्सव के दिन

उस की इस महान् शक्ति को अपने नम्र प्रणामों की भृगुज्जलि में करते हैं।

६०

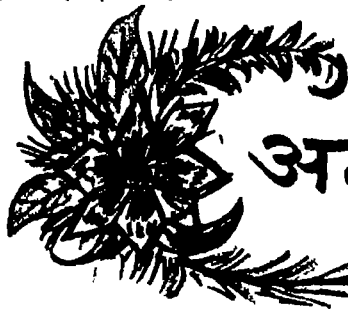
आजकल

शुद्धता - २०३ - १११ - २०२४

३.

२

०



# अमर आत्मा.

प. चन्द्रकान्त जी.

आज से लगभग एक सदी पहिले टंकारे में पणव  
 धनुष की टंकार हुई थी जिसे सुन कर ईरानी, कुरानी,  
 पुराणी, जैनी सब के सब कांप उठे; चीन, जापान और  
 अमेरिका के अमर परिवार जाग गये; मिश्र के भव्य मीनार  
 गूँज उठे। उस टंकार ने महात्मा मुन्शीराम की श्रद्धा का मन्त्र  
 सुनाया और वे श्रद्धानन्द बन गये।

कुलपति के जीवन का दीक्षामन्त्र तो आप श्रद्धा —

“उद्धरेदात्ममात्मानं नात्मानमवसादयेत् । आत्मैव ह्यात्मनो बन्धु-

रात्मैव रिपुरात्मनः” — गुरु दत्तात्रेय ने कहा कि ईश्वर पर

विश्वास जीवन का मूलमन्त्र है । बाल समूह में न आर्य, भटका-

लुम्बिमाने की गली गली में — अलारम जगाता, ओली चसारी —

‘भिक्षा देहि मातः’, पुण तो पूरा करना ही होगा — “पुण जाहि पर

बन्धन न जाहि” पर पुण कौन पूरा करेगा! विश्वास हुआ कि

पुणनाथ — चट चट के वासी जगन्नाथ है । — “सानुकूले जग-

न्नाथे सानुकूलं जगत्त्रमम्”, संसार की विपत्तियां नाममात्र हैं,

संपत्तियां — काफूर जैसी हैं — “विपद्यो नैव विपदः संपदो

नैन सपद । विपद्विश्रमरणं विष्णोः संपन्नाराधयणस्मृतिः" —

यह है गुरु प्रधानन्द जी की आत्मप्रसा । जंगल को मंगल बनाया,

रेगिस्तां को गुलिस्तां बनाया, प्राचीन आदर्शों का शिलारोपण किया।

प्रधानन्द ज्ञानमत्त का उद्गा था । पतितपावनी भागीरथी

के तट पर पुरखाद्यों ने घन धा धूम उभाया, अग्निपां जलाई

थीं । इस ने इस बीसवीं सदी में ब्राह्मतेज को फैलाया । काशी-

विद्यामन्दिर फिर हरिद्वार विद्यामन्दिर क्यों न ही ? बालक यहां

से आवेंगे ? भट अपने दिल के टुकड़े आगे धर दिये — "इन्द्र

और हरिश्चन्द्र" । मत्त किया - और पूर्ण किया । शिक्षा क्षेत्र में

महाशान्ति मन्त्र।

एक मन्थन बना था - कुल का मन्थन। काट

दिया - सन्नास लिया। अब सब का ओर न किसी को। "सन्न्यसेत्

सर्वकर्मणि वेदमेकं न स्मृत्यसेत्"। प्रका उठी - जामा मसजिद ,

अकाली तरबत सब को पवित्र कर गई। गंगाजी पर ब्रह्मतेज करनेरा

और यमुना मैया पर सात्रतेज। यमुना मैया ने तो राज्यों के उत्कर्ष

और अघकर्म देखने परन्तु राजर्षि तो यह पहिला था। संगीनों को सीना

सहे, पिस्तौलों को सीना सहे। गुरु ने बदन बलनी बनाया, शिष्य

ने भी यह कर दिखनाया। क्यासे को पानी नहीं - अपने हृदय का





# गुरु शिष्य.

'अद्भुतानन्द' पुस्तक से

ब्रह्मचारी जब गुरुकुल में प्रवेश  
 होता है, उस समय गुरु-चार्य उसे विश्वगत दिव्य-  
 वाता है कि " गुरुकुल तुम्हारी जगत् है और मैं तु-  
 म्हारा पिता स्थानिय हूँ", सुनते तबो में पिता की  
 जिनेकारी भावना, तथा उस का पूर्व करना, भय  
 काग नहीं। स्वामी जी एक तालोरेवन्द दिव्य उक्त  
 ये, जो कि इस जिनेकारी को शक्तिवा पिता समे।  
 यह बात उस के गुरुकुलीय जीवन से स्पष्ट है।

गुरुवा-पिछला के लेने प्रत्येक  
 प्रणी में दिन रात जैवीस वर्षों में लिए एक अभिचार  
 रहता है, जो कि थोड़ा बहुत पार्श्व का भाग भी बनता  
 रहता है। यह अभिचार, गुरु-चार्य का ऐसा शक्ति-  
 निधि होता है कि प्रत्येक ब्रह्मचारी अपने को  
 गुरु-चार्य के नीचे ही समझे। सात आठ वर्ष की  
 आयु में गुरु-पिता को छोड़ कर शहरों से दूर उस

जंगल में जा कर रहना, जो चार दिन में ही आता था।  
 खादि सब को गूल जाया और उन के कानों को भी  
 खरब में ही बुजुर्गों न करना उस पिर प्रेम का ही  
 पोरवात साजना नाहेर, जो कि गुरुकुल में सा-  
 चार्थ के प्रीतिनाथि आधिछाताओं से मिलता  
 है। आधिछाताओं की खेह, प्रभार, और अवन-  
 वन गुरुकुल शिक्षा प्रणाली की सानरता है।  
 महाराज सुंशी शर्म जी तो उस प्रेम, प्रभार, और  
 अथेनपत्र की साक्षात प्रीतमा थे। छोटे, छोटे  
 वालकों के साथ वे बालकों की तरह मिलते थे।  
 उन से जा कर अथेन को भी गूल जाते थे। वे  
 ब्रह्म-गोरियों के साथ ही नहीं छोटे के साथ ही  
 जेद, बबड़ी, कोरला कयाकी आदि खेलना  
 साथ को अथेन बड्यन के प्रीति हुल नहीं समझते थे।  
 गुरुकुल के उत्सव पर प्रायः सभी ब्रह्म-गोरियों के  
 संरक्षक - सम्बन्धी इन से मिलने के लिए गुरु-  
 कुल आते हैं। सातवीं कक्षा का ब्रह्म-गरी ब्रह्म-  
 दत्त अथेन दिवसी भी संरक्षक के न जाने  
 पर एक बार बडा उदास हो गया। महाराज जी

ने यह सभा-गार गायुत्र होते ही उस को अपने पास  
 नंगले कर मिलने के लिए बुलवाया। प्रथम-वर्षी  
 बहुत हंसाता हुआ लौट कर आया और कमर  
 अपने शीर्षकी से बोला - " हम भी अपने पिता  
 जी से मिल आये " इसी वक्त बरगद रुं प्रायः  
 चटती रहती थी। इस पितर खंड का ही यह  
 परिणाम हुआ कि समाज दुर्ब न बाद भी ब्रह्म-  
 गामी आये जो " पिता जी " के गर्त से ही  
 वन मिलते थे और अपने को " आत्म-प्रभु "।  
 फिरके तथा कहते मैं विशेष जब सगुणव बने  
 थे। हवन-स-ध्या, गीजन, शान, खेच आदि  
 इतनेक व्यवहार को न स्वयं ही विरीक्षण किया  
 करते थे। विशेष अवसरों पर होने वाले खेलों  
 को विरीक्षण तथा संभालने की स्वयं विचार  
 करते थे। विचयदृष्ट की पर होने वाले तीव्र, मर  
 दिव के सब खेलों में अथ स्वयं उपस्थित रहते थे  
 गाँवर से किसी टीम के उरुदुल आने पर अथवा  
 उरुदुल के टीम के कड़ी गाँवर जाने पर आभ का  
 क्रय ब्रह्म-गीतों की जीत सुनेन के लिए सदा  
 उकलता रहता था। अपने विचारादियों की हि-

मन्त्र का अर्थ को मंडे सन्ना गव था किने नई  
इत नहीं सकता।

आधी शत के उठ कर ही सब आश्रम का  
इस यज्ञ आन श्वर्य लगाया करते थे। ब्र-  
ह्म-चारियों को अपने हाथ से भोजन कराने और  
भोजन के समय उपस्थित रहने में विशेष मह-  
त्त्व अनुमान करते थे। उरु-शिक्षण का सम्बन्ध  
यिहा युत से ही अधिक विभवेवारी कर है। महान्त  
जी इस विभवेवारी को है। जिस न परता के साथ  
निभाते थे, उस का मंडे परेणन होरा था कि अधिक  
छताओं तथा अध्यायनों को ही उसने निभाते में  
सदा न पर रहना कर था। एक बहुत पुराने अधि-  
छाता कर्तव्य विच्छ होते हुए भी केवल इस लिए  
उरुकुल से आलाग विद्ये जेय कि वे ब्रह्म-चारियों  
को सेवा कीते थे और बार-बार कहते कर ही  
उन्होंने अपने इस स्वभाव को नहीं बदला। एक  
इसके अधिछाता को ब्रह्म-चारियों के भोजन का  
अभाव श्वक शीतनन्ध लगा करे कोर ध्वनर  
कोर के कारण श्वक विभा गया था।

प्रीतिरतिथि - सुभा ने उन के पथक को का प्रश्न उपस्थित होने पर महाराज जी ने उन कारणों को समझाते न संकोच नहीं किया।

दिसी ब्रह्मचारी को कभी कोई कड़ी सजा देने का अवसर नहीं आता था। कभी एक आध - नार रोसा कोई अवसर आया भी तो उसको उस के लिए अतिमित्र बंदना होती थी। ब्रह्मचारी को सजा द्या देने के साथ में अयेते को भी सजा दे लेते थे। सब से बड़ी सजा यह होती थी कि ब्रह्मचारी अनुगमन के लिए उसने अपराध किया है और मादित्य में वैसा अपराध न करने का यह संकल्प करें।

दिसी ब्रह्मचारी के नीकर पड़ेने पर महाराज जी के लिए रात को सोना भी दुगर हो जाता था। उस के बीछे रात दिन रुक कर देते थे। संवत् १८६५ में गुरुकुल में एडु फाउंड्री की नी-आरी छली ब्रह्मचारी रानी दुन्द का उली नीकर के पहाने हो गया। अन्य कई ब्रह्मचारी को भी

कनस्था भी पिताजनक हो गई थी। ४ माइयद  
 सन् १९६५ के "म-बारक" गुरुकुल सभा-कार के  
 शीर्षक में ब्रह्म-चरियों की कनस्था को बताने हुए  
 गवीन की मज्जुकर जो सुरमूर्ति सभा-कार दिल्ली  
 गया था, उस की कुछ वरीयों से बात चलता है  
 कि नी गरी के दिनों में महर्षिजी कितने पि-  
 तित रहते थे। वे स्वयं लिखते हैं "— १३ उगा  
 रत के दिन को उसे, ब्रह्म-चरी भीषण से, दस्त लगे।  
 मैं बहिली रात को जण हुआ उगी के बंध ही लो-  
 काया कि देवर बुलाया गया। रात भर फिर  
 जागते हुए बतौर हुए। इक और ब्रह्म-चरी ने  
 दस्त से और रूँ बनी उचार बनी उचार।

इस प्रकार बलिद बचना है, जिन  
 में महर्षिजी का हार्दिक वात्सल्य स्पष्ट है,  
 यह है माइयद गुरु-शाला का सम्बन्ध है।  
 इसी प्रकार का है बलिद ही उचार मा-चर्य है  
 और उचार गिला है।

## “सिंह की तरह जियें और मरे”

पं. प्राणो पुराणजी

जब हम स्वर्गीय श्री स्वामी भुद्धानन्दजी जैसे त्यागवीरों के जीवन पर टाईपात करते हैं तो हम अपने हृदयों में एक गहरी वेदना और एक गम्भीर उल्लास अनुभव करते हैं। वेदना इस लिये कि - मानव समाज भी निवित्र है जो सरा नुने हुए श्रेष्ठ जनों को विपत्ति में डालता है और र्ब इस लिये कि ऐसी ब्रह्म परमेश्वर ने हमें प्रदान की हैं कि जो जब तक रत्ती रत्ती नहीं छिड़ जाती, हम पर आंच नहीं आने देती।

स्वामी जी जन्म-घोड़ा थे। वे सच्ची मौत मरने के योग्य थे और सच्ची मौत उन्हें प्राप्त हुई भी। वह मौत, जो बीरों को प्राप्त होती है - वह मौत, जो कि अधम शरीर से अविनाशी आत्मा को मुक्त करके स्वर्ग पहुंचा देती है। यह स्वर्ग क्या है? इस सम्बन्ध में हमें एक लुईया की कहानी याद आती है। नर बुदिका इस बात के लिये प्रसिद्ध थी कि जो कोई मुरा उधार ले होकर निकलता था - वह उस के पीछे जाती और लौट कर यह बत देती थी कि, वह स्वर्ग को गया या नरक को! बहुत दिन तक लोगो की सम्भ में उस का रहस्य न आया - तब एक दिन उस ने बताया कि ' मैं प्रत्येक मुरे के जुलूस के साथ थोड़ी दूर तक जाती और देखती हूं कि लोग उस की निन्दा करते हैं या प्रशंसा। यदि निन्दा करते हैं तो वह नरक को गया और प्रशंसा करते हैं तो स्वर्ग को गया'। इस सुन्दर कहानी पर यदि श्री स्वामी जी को रखा जाय तो स्वामी जी स्वर्ग को गये।

परन्तु स्वर्ग हमारे जन्माल में स्वामी जी के लिये ऐसी नसु न थी - जिस का उन्हें सालच होता। जो पुरुष त्याग और दान में आनन्दित और उत्सारी

रहता है - स्वर्ग उसके लिये प्राप्त करते योग्य नस्तु नहीं - वह तो मनुष्य-जन्मको, मनुष्य-शरीरको और मनुष्य-जीवनको धन्य कर चुका, वही बहुत है।

शरीर अधम, अभिनश्वर और साधारण नस्तु है। जैसे मात्री एक दिन टिकने को नहीं उस खड़ा कर लेता है, उसी प्रकार मानों जीवात्मा कात्र करने के लिये इस हाड़-मांस के शरीर का आश्रय लेता है। इस लिये इस शरीरके नाश होने के प्रश्नको लेकर दुःखी होना बुद्धिमान् का काम नहीं। स्वामी जी का शरीर तो नष्ट होता ही। अब न सही और कुछ दिन बाद होता। परन्तु हमें विचारा यह है कि क्या स्वामी जी ने उस शरीर से कोई ऐसा कर्म किया कि जिससे वह कलंकित होता? क्या स्वामी जी ने मनुष्यत्व का पालन नहीं किया? इस देश में जन्म लेकर - करोड़ों मनुष्य जहां स्वार्थ नर करते हैं वहां ने सरा परार्थ के लिये जो, करोड़ों मनुष्य जहां संग्रह करते हैं वहां उन्होंने त्याग किया। वे सरा दुःखी बने रहे, और दुःखियों के मित्र रहे। निरन्तर उन के हृदय ने सात्विक रुदन किया - सात्विक क्रोध किया।

देश के नातामण में स्वामी जी की जो गन्ध भर् गई है वह अभी कई शताब्दियों तक तो बहुत है - अभी शताब्दिक तक तो नवीनयुग कुछ और ही समय साएगा और स्वामी जी जो बीज बो गए हैं वह फल नुबेना। कृपीटी जिसे आज स्वामी जी घुटनों डोलती छोड़ गये हैं स्वामी जी की स्मृति में दिवाली मनायेगी।

हमें रुलाई आती है, क्योंकि हमें स्वामी जी प्यार करते थे - पर फल मात्र भी तो सब है कि प्यार करने का असली समय तो अब बायेगा। प्यार हृदय का बल है, नेत्रों का सुखा है - रोम रोम में बिजली की शक्ति है। प्यार जीवन है, प्यार अमृत है - तभी तो देश इस छिरे से उस छिरे तक जी उठा है, मन्ने स्वामी जी की वीरता उन के शरीर से निकल कर आत्मनरुण में रम गई है और वर अब सांस के साथ हमारे हृदयों में प्रवेश करके हमें चौर बना रही है।

स्वामी जी अपना कार्य कर गये। जिस लिये उन्होंने शरीरको दुःख पा - वह कार्य कर चुके। जैसे बहुत बच्चे माता बाज ले कर सुनने बालों को मन्त्र-मुग्ध कर देता है और फिर बाजा हाथ से रख देता है - उसी प्रकार स्वामी

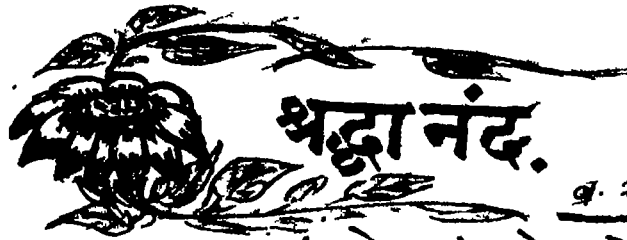


जी अपनी कला हमें दिखा कर उस शरीर गन्ध को यहीं छोड़ चले गये। अब तो हम सभी को स्वामी जी की तरह तप, सन, त्याग, वीरता और चोत्रबल का अभ्यास करना चाहिये। स्वामी जी जब उत्पन्न हुए थे - तब भारत का कालावर्ण गुरुत अन्धकारमय था - स्वामी जी हिम्मत करके बड़े-ठोकरें खाकर महोत्तम भाये - और हमारे लिये प्रकाशमय स्याम दिया। आज जब हम जन्मे हैं तो हमारे सामने के कठिनारुमों नहीं हैं, अब तो हम रोए की सी छलोग जाएं देश के महान् क्षेत्र में मानव जाति के सच्चे जीवन को प्राप्त कर सकते हैं। आओ, भारत के प्यारे! स्वामी जी के देश नाचिये! हम स्वामी जी के अमर नाम गू सिंह की तरह जियें और मों!

6

377 50 1.00





श्रद्धानन्द एक नीर योद्धा और योग्य लेखकति थे।

उनका सारा जीवन युद्ध में बीता। कभी साम्राजिक लुपुथाओं और लुपुथियों के विरुद्ध युद्ध किया, कभी पोगाबन्धियों की क्रूरियों के विरुद्ध। जैसा उनके पर वर्तमान विदेशी सत्ता से लड़ने में भी उन्होंने ने कहा नहीं छोड़ी। नीरता का धून उनकी रंगल में भी उठता था।

नीरता की प्रवृत्ति में अंगू शरारत के चोचों में लगा थी जाय तो उद्वृत्त कहलाती है। विचारों अनस्था में स्वामी जी के ऊँच उच्च की नीरता का भी अभाव नहीं था। स्वामी दयानन्द की एक दिन की सत्सङ्गति ने उनके जीवन को बदल दिया और उनके जीवन को अन्धकार से उज्ज्वल की ओर डाल दिया। स्वामी की प्रवृत्ति तो मौजूद थी ही - उन्मादी मिल जाते हैं उनके लिये उन्मात्ति का मार्ग जुगम होगया। इसी उन्मादी ने लहरो 'मन्माया या मार्ग का यह वचन', निराल

पगउथियों को पार करके उन्नति के राजमार्ग पर रोड़ने में सफल हो सना ।

सबसे पहले स्वामी जी का तात्कालिक धर्म और समाज से पाला पड़ा । उस समय का धर्म भी चौके, चूले और तीर्थों से ही सीमित था । नीची जाति का स्वामी, मुसलमान और उस्तादों का मेल हिन्दू धर्म का सन्ध्या करने के लिये सा प्री थी । इन शब्द में हिन्दू धर्म को स्पष्ट स्पष्ट का रोग लगा हुआ था ।

आर्य समाज का अभी जन्म ही हुआ था । उस पुराने रोग से अभी तब आर्य समाज का <sup>भी</sup> दिग्भ्रम न दूर था । ऐसे समय में किसी नीरता के पानी, ताटली तथा दयावाद के लम्बे शिष्य का

आवश्यकता थी जो आर्य समाज को बाल दृष्टि से बचा कर हिन्दू जाति का उद्धार कर सके । सौभाग्य से लेखक स्वामी और स्वामी सुदानन्द जैसे नीरते ऐसे ही समय में कार्यक्षेत्र में अवतीर्थ

होना <sup>उत्त</sup> समय की आवश्यकता को पूरा किया । स्वामी जी ने बड़े साहस से और वेम से ~~का~~ वैदिक-धर्म-पुनरा का कार्य शुरू किया ।

परवालों से लड़ाई ली, चमत्कारी बकालत से भी मुँह फेरा और

सारा समय देकर आर्य समाज का पन्नासमें संगठन करवाया शुरू किया । आर्य समाज ने स्वामी जी ने नैतृत्व में ~~के~~ पन्नास में

जाति की वेदा कर दी । इस पर गैरशाही भी ~~नों~~ ~~नों~~ और

इस संस्था को भय भी न आने दे लगे लगी। आर्य समाज के सर्व-  
ज्ञान संगठन और उन्नति का <sup>अधिकार</sup> प्रेष श्री स्वामी जी को ही है।

सैनिक का - लड़ते नाले योद्धा का नाम है केवल विनाश।

उद्देश्य में जो भी शत्रु दिखाई पड़े - उसे बिना किसी दया के

कुचल डालना सच्चे सिपाही का कर्तव्य है। इस काम के लिये

उसे थकावर को प्रलम्ब और शल व्यास को प्रलम्ब संहर में

लग जाना पड़ता है। रडु का ताण्डन वृत्त ही उसका शत्रु हो

जाता है। सैनिक के रूप में स्वामी शत्रुनाश ने भी यही

क्रिया की। जहाँ-कहीं पाखण्ड का बोल बाला देखा, वहीं पिल पड़े

और उसे नष्ट प्रष्ट करने छोड़ा। शल व्यास प्रलम्ब गये और शत-

द्विज एक कर दिया। सैनिक का त्याग - हत - मत - पत्र भी परना

न करने वाला ही का संकेत है। इस त्याग का परिचय स्वामी

ने जीवन के आन्तिक काल से ही देना शुरू किया था।

स्वामी जी केवल विनाशक कार्य नहीं कर गये।

उन्होंने शिक्षा के स्वतन्त्र कार्य में हाथ लगाया। दिन में

आर्य समाज के उद्देश्य की पुनः स्मृति गयी थी। लोगों ने इनको

पागल और बहसी समझा और खरी खोटी कुतर्कें। कुतर्कें ने

इनका ताते भी कहे। पर अपनी पुनः मजबूत के बिक्री करने

नाले से। अपने अन्तर्गत विश्व में जंगल में मौर्य ~~संस्था~~

बने दिखा दिया / गुमकुल वसुति भातुर्क्य के लिये बिलकुल तनीत  
 थी । अन्य विशेषताओं के साथ इसकी एक विशेषता यह है कि  
 ते स्वतन्त्र होता भी था । अस्ययोग आन्दोलन से बहुत पहले से ही  
 स्वामी जी असहयोगी थे और उनके असहयोग का ज्वलंत उदाहरण  
 आजकल ने गुमकुल में / अगु स्वामी जी गुमकुल चलाने में  
 नेक शक्ति का साथ से सहयोग करते तो हमें गुमकुल का रूप  
 भग्न कुछ और दिखाई देता । वर स्वामी जी यह बोलते हैं ? उनके  
 हृदय में तो स्वतन्त्रता की दिव्य भावना लटके मार रही थी । स्व-  
 तन्त्रता का पीठ स्वामी जी ने अपने गुम दयानन्द के लिये था ।  
 स्वामी से मेल करने गुमकुल को धनवान और यशस्वी बनाने  
 की अपेक्षा तो ने गुमकुल को गरीब रखना ही अधिक महत्व  
 करते थे । इसी लिये, लार्ड चेम्सफोर्ड ने सहयोग का हाथ बढ़ाया और  
 कश्चित् सहायता के रूप में, नई स्तूप देने का वायदा किया  
 तो हमें त उस सहायता को और बड़े लोग को बुझा दिया और  
 सक्रिय सहयोग से उन्का कर दिया ।

स्वामी जी का गुमकुल को खोलने का मुख्य उद्देश्य आज,

सादे और छोड़े खर्च में संतोष से जीवन बिता सकने वाले नागरिक  
 पैदा करना था ।

स्वामीजी गुरुकुल में नान बस्पी के रूप में रहते थे। उक्त रूप में उनके देखने वाले कहते हैं कि उनको देख कर प्राचीन ऋषियों का स्मरण हो आता था। उन दिनों सशुद्ध प्रकृति बिट्ठार स्वामीजी के पास प्रायः आते जाते रहते थे।

गुरुकुल में रहते हुए स्वामीजी ने विद्यार्थियों के लच्छे नैतिकदर्शनी - २:५ सक्षियता की शिक्षा दी। उक्त विगुदु शिक्षा में साम्प्रदायिकता की वृ नहीं थी - बह शिक्षा राष्ट्र प्रेम और विश्व प्रेम की शिक्षा थी। बह त्याग और तपस्या की शक्ति की विद्यार्थियों ने जिये अपने उपाय में एक बड़ी शिक्षा थी। समय २ व् उनही ही दुई प्रेरणाओं का तो कहना ~~सही~~ अनेक ही प्रमाण पड़ता था। स्वामीजी की यह आदत थी कि जो बुद्ध ने विद्यार्थियों से कहाते थे - उसे मे खुद भी किया करते थे। उक्त लिये उनमें बचनों का असा भी-प्रदा होला था। प्रज्ञदूरी या शैले ही कार्यो के लिये प्रेरणा ने खुद से नहीं आते थे बल्कि खुद खुदानी लेना पहले काम शुरू करते थे। स्वामीजी की प्रेरणा से गुरुकुल ने विद्यार्थियों ने प्रज्ञदूरी काये एक दृष्टि की फैली प्रहाला मानी जो भेरे नी थी। यह तब की बात है जब कि प्रहाला मानी का काम और तब प्रायः अज्ञानी ने ही सीमित था। उक्त से: पला

लगात है कि स्वामी जी विद्यार्थी अवस्था में ही क्रियात्मक राष्ट्रिय-सेवा करने के लिए इच्छा में थे। राष्ट्रिय-विचार तो उन्हें ने विद्यार्थियों के बीच में कूट कूट का भी दी दिये थे। एक स्वतन्त्र शिक्षणालय में ऐसी शिक्षा का होता सामान्य तन्त्र ही है।

इस प्रकार बहुत वर्षों तक गुप्तकाल में 'गुप्त' रहने के बाद स्वामी जी फिर स्वार्थ-जन्तक कार्य-क्षेत्र में कूट पड़े। पहले इसका तन्त्रालय के रूप में। लोगों को जहाँ जरूरत पड़ती स्वामी जी अपना तन्त्र-मन्त्र तक लगा देने को तय्यार रहते। अन्धाय के विचार तो स्वामी जी ने बहुत पहले ले ही धर्या उठा रखा था। कि हर एक अन्धको को सुचलने में उन्हें ने पूरी सहायता थी। एकमात्र किसी अन्धको को हाथ में लेने का बाद, उसके हाथ-पैरों के लिये कोई त्याग इसके लिये बहुत बड़ा न था। मन्त्र को तो वे कुछ समझते ही न थे। अन्धालों में जब निश्चिन्त परिस्थितियों के कारण को प्रेरण के स्वागत-पथक के पद को कोई स्वीकार नहीं करता था तब इस निर्भ्रान्त तन्त्रालय ने उस पद का भी उनके कान्धों पर लिखा था। उस को प्रेरण भी सफलता का सारा श्रेय स्वामी जी को ही है। इसी प्रकार गुप्तकाल के नाम के समय में ही स्वामी जी ने जिनमें वे अन्ध-अन्ध होते देखा तो उनसे स्वामी ने ही आत्मा-शा-देन-के तन्त्र-मन्त्र, ने सुद-मैदान में उतर आये और सिर-मार्ग में



मन्त्रों से क्या मिला था का प्र किया और आराधना के बंधों का स्वागत किया।

अलावा न सहने की आदत के ही कारण ही उन्हें के कांग्रेस हिन्दु महासभा और इनसे मिलने वाले यश और सम्मान को तिलांजलि देकर गरीब दलितों में अपना ध्यान नगीचा और उनकी सेवा में अपना सारा जीवन लगा दिया।

सन्ध्याजी के रूप में स्वामी जी के शासन का कर्मगतिक जीवन का क्षेत्र भारत की राजधानी दिल्ली रहा है। कुछ वर्षों तक तो दिल्ली के राजनैतिक शासन की कागडोर स्वामी जी के हाथों में रही। नहीं वरु उन्हें ने जामा मस्जिद के सिंहर में हिन्दु और मुसलमान दोनों को एक ही छत के नीचे एकत्र करने का यत्न रिया था जो कि दिल्ली के ही नहीं अपितु सम्पूर्ण भारतवर्ष के हिन्दु-मुसलमान एकता के इतिहास में अविस्मरणीय रहेगा। नहीं वरु उस वीर सन्ध्याजी ने गुरुरकों की नङ्गी तङ्गीनों के सामने धारी तान मरु अपनी अद्भुत वीरता का प्रत्यय दिया था। उस समय दिल्ली की जनता स्वामी जी के इशारों पर नाचती थी। युद्ध के दिनों में वहाँ उन्हें ने सेनापति का काम किया था। और उस वीरता

और रोब के साथ कि लम्बा दिल्ली की हद में खाभी जी को हाथ कम न लगा सकी।

खाभी जी का यह राजनीतिक नेतृत्व दिल्ली को अखिल समय तक न मिल सका। खाभी जी ने खुशबू दिया कि लम्बा के अलावा हमारे भाई भी पीड़ितों को चुनल रहे हैं। लम्बा के अलावा हमारे विरुद्ध आकाश उगते का मेला बहुत है। परन्तु हिन्दु कहे जाते वाले ६ करोड़ आमागे अधूतों की कुछ लेने वाला कोई नहीं। दलितोद्धार के प्रोग्राम में लिये खाभी जी ने कांग्रेस में भी जोर मारा - परन्तु कुछ फल न हुआ। इस प्रोग्राम अधूतों के प्रति कांग्रेस की इस उपेक्षा कृति से दुखी होकर इन्होंने उनसे त्यागपत्र दे दिया और दलितोद्धार के कार्य को सम्भाला। खाभी जी की दूर दक्षिण अब लोग सम्मान रहे हैं जब कि महात्मा गांधी ने और सब कामों को छोड़ कर इस काम को ही अपना प्रोग्राम बना लिया है। खाभी जी ने इस कार्य के महत्व को आज से दोस्तों को पहले समझाया लिया था।

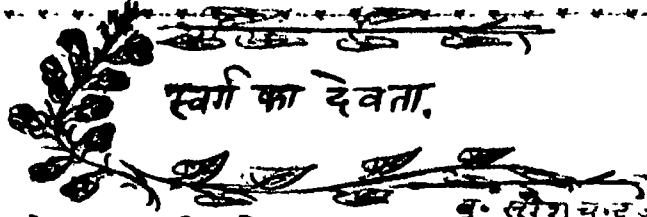
कांग्रेस को खाभी जी ने भी छोड़ा तथा जयपुर, जिला और प्रो. शो. कत उसी आदिमों ने भी छोड़ा। पालु दोनों के कांग्रेस

कांग्रेस को छोड़ने में प्रयास करता हों इन लोगों ने केवल स्वार्थ के लिये कांग्रेस का त्याग किया, जबकि स्वामी जी ने परार्थ और लोकसेवा के लिये। इन लोगों ने अपने सम्मान के रत्नों हाथों से लहरने के लिये तो स्वामी जी ने कल्ले का आ-लिङ्गन करने के लिये। इन लोगों ने पीछे कदम डालने के लिये कांग्रेस का परित्याग किया पर स्वामी जीने आगे कदम बढ़ाने के लिये। कितना अन्तर है।

ये लोग स्वामी जी को ठीक तरह नहीं समझते जो कि उन्हें सम्प्रदायवाद की बतलाते हैं। हिन्दु महासभा को दिये हुए त्यागपत्र में स्वामी जी की स्थिति सम्प्रदायवाद की दृष्टि से किलकुल स्पष्ट हो जाती है। अभी-उसदिन पं. लक्ष्मदेव जी विद्यालङ्कार ने स्वामी जी के उस त्यागपत्र का उद्धरण ~~का~~ दिया था। उस में स्वामी जी ने स्पष्ट लिखा था कि मैं महासभा को इस लिये छोड़ रहा हूँ क्योंकि इसकी नीति सम्प्रदायवाद की नीति होती जा रही। इन शब्दों के बाद यह कहने की आवश्यकता नहीं रहती कि स्वामी जी सम्प्रदायवाद के कितना विरुद्ध थे। स्वामी जी अपने को वैदिक धर्म का अनुयायी

कहते थे। लेकिन उनके वैदिक धर्म में आज केसे संतुष्टि  
 सम्प्रदाय बाद की वृत्तों थी। उनका वैदिक धर्म उनके दृश्य  
 से भी विशाल था। उनके वैदिक धर्म ने उन्हें दुश्मनों को  
 भी गने से लगाना - शत्रुओं से भी ब्रेक करना सिखाया था।  
 इसलिये युद्धलानों ने एक दिन उनको जाना मस्जिद भी मि-  
 भ्रम पर बिठा कर उनका सम्मान किया था। ऐला संभान भाज  
 तन्म कितने प्राण किया है? स्वामी जी की विशाल दृश्यता  
 प्रमाण यही है कि तुम्हें भी विजय पर युद्धलानों के साथ  
 स्वामी जी ने भी अपनी बुद्धि में दीयावलि मनाई थी।

स्वामी जी अजीबत देश और जाति भी लेना के लिये  
 ऐतिक की तरह लाना रहे, और सौभाग्य से उनके मृत्यु  
 भी ऐतिक होती मिली जो एक ऐतिक के इलिये गने भी  
 चीज हो गी है। एक कहर सम्प्रदायन्य से ~~कल्प~~ अर्थों युद्धलान  
 ने इत्या भी इस बात से स्वामी जी के सम्पूर्ण निर्यक्ष जीवन का गौरव  
 कम नहीं हो जाता। ~~अब~~ जहाँ अभी जान को लेने वाला एक युद्धलान  
 था कहे उनके जीवन देने वाला - नीकरी से अच्छा करते वाला भी  
 युद्धलान था। स्वामी जी की इत्या का किसी सम्प्रदाय से  
 सम्बन्ध नोडता उल्लिखित है क्योंकि यह कार्य निकलुल नैयतिकता  
 स्वार्थों के लिये किया गया है। इत्या को सुतों की होती है, पर शरीर  
 वही होता है जिहमी किसी लक्ष्य काम को करने दुष्ट होते हैं। स्वामी जी शरीर  
 में ~~इसके~~ ~~भी~~ ~~शा~~ ~~पर~~ ~~न~~ ~~हो~~ ~~ता~~ ~~है~~ ~~।~~ ~~इस~~ ~~के~~ ~~दु~~ ~~ष्ट~~ ~~हो~~ ~~ने~~ ~~है~~ ~~।~~ ~~स्वामी~~ ~~जी~~ ~~शरीर~~



## स्वर्ग का देवता,

बु. सुरेश चंद्र जी

आज से २० शताब्दी पूर्व अन्धकार में एक दिव्य ज्योति चमकी। वह शुभ दिव्य ज्योति पहुंचती है गरीब के घर, गरीबी मिटाने, रोटी के लिये तरसते हुए भ्रूवे की भ्रूज मिटाने, प्यासे की प्यास बुझाने और कुष्ठ रोग से पीड़ित कोढ़ की शय्या पर। वह शुभ ज्योत्स्ना अपने दिव्य आलोक से इस जगती तल में सत्य अहिंसा को आलोकित कर गई। वह ज्योति सत्य के मार्ग की मार्गदर्शक बनी। सचमुच सत्य का मार्ग कठोर से बिद्धा हुआ है। पग पग पर तीव्र असह्य वेदनाएं होती हैं। बिल्कुल सीधे ऊंचे पहाड़ों पर चढ़ना पड़ता है, बड़ी २ खाइयों को पार करना होता है। बड़े बड़े उलोमनों और शत्रुओं का सामना करना होता है। परमात्मा अपने भक्तों की, सत्यपथ के राहियों की कठोरतम परीक्षाएं लेता है। भक्तों को अपने अस्तित्व को मिटाना होता है, स्वयं नाचीज होकर अपने को बलिदान करना पड़ता है। यह सत्यपथ का राही उस पर सत्य का प्रचार करता है। मानव जाति के लिये दीपक बनता है। परन्तु उसे भी हाथों और पैरों में कीले गाढ़ कर शूली (Cholla) पर चढ़ा दिया जाता है। वह भी अपने खून के कतरों से भरी सत्य की भोली उस हो अक्षरवाले प्रेममय प्रभु के चरणों में समर्पित करता है। यह भक्त कौन? यह काइस है।

एक दूसरी आत्मा इस भूतल पर अवतरित होती है। एक निर्जनि वन में एक वृक्ष के नीचे वर्षों तक बैठा, तपस्या कर प्रभु की अमर ज्योति को प्राप्त कर सत्य अहिंसा का उपदेश करती है। इसी तरह मानव जाति के आगे 'अहिंसा परमो धर्म' के सत्य और सुन्दर सिद्धान्त का प्रचार करते हुए अपना प्राण त्याग देती है। यह जोगल में एकान्त में बैठा

सत्य और अहिंसा का उपदेश करने वाला कौन ? यह भगवान् बुद्ध के इसी प्रकार भारत में एक और प्रभु का प्यारा पैदा होता है। सन्ने शिव की खोज में अलखनन्दा की चोटी पर जाता है, शेर चीते जंगली जानवरों का मुकाम बना करता है, गर्द के दुकड़े खाकर भुजा को मिटाता है। इसी प्रकार सम भावतियों को भेलता हुआ, सत्य प्रदीप के प्रकाश से, ससार को प्रकाशित करता है। इसको साथ कटवाया जाता है, हलाहल विष का प्याल दिया जाता है और यह इसी तरह सत्य के लिये अपने प्राण का त्याग करता है। और कहता है 'ईश्वर तेरी इच्छा पूर्ण हो।' यह प्रभु का प्यारा कौन ?  
दयानन्द ।

इन्हीं महापुरुषों की श्रेणी में इस दयानन्द के एक शिष्य को रखते हैं।

आज भारत की राजधानी दिल्ली में एक मकान के दूसरे मंजिल पर एक सन्धासी रोग शय्या पर पड़ा हुआ है। अपने चिकित्सकों के बारंबार बिश्वास दिलाये जाने पर भी, कि आप अच्छे हो जायेंगे, वह कह रहा है कि, "अब यह शरीर देश की सेवा के लायक नहीं रहा, अब तो दूसरा-चोला धारण कर ही देश की सेवा करूंगा।" वह तो दूर दृष्टि रखता था। वह प्रत्यक्ष देख रहा था कि आगे क्या होने वाला है। एक मुसलमान आता है, ज़ीने पर से ऊपर चढ़ जाता है। सेवक आहट सुन बहता है- कौन ?

आगन्तुक - 'मैं, अबुल रशीद ।'

सेवक - 'कौं भाई! कैसे आये ?'

अबुल - 'धर्म पिपासा है ।'

सेवक - 'स्वामीजी से मिलने की उम्हदों में तुमानियत कर रानी है।'

इतने में स्वामी की कुद सुनाई पड़ा। उसने सेवक के सत्य स्वभाव से उदार स्वभाव से उसकी आज्ञा देने के लिये कहा। वह कमरे में आया

को अपने उदाहरण द्वारा सिद्ध किया। वे एक सच्चे कार्यवीर सन्यासी थे। हमेशा उल्लिखनीय होना, निराशा न होना और कार्य से कभी मुक्त न होना ही उनका जीवनोद्देश्य था। वे वीर कर्मों 'अर्थों' में जीवन के तल को समझ सके थे। इसी लिये वे अमर हो गये। एक जगह उन्होंने लिखा है - "मेरा जीवन आशातीत व्यतीत हुआ है। इस लिये जब तक हम में दम है, अनुष्ण को कभी बेदम नहीं होना चाहिये।" स्वामीजी का यह सिद्धान्त प्रत्येक आत्म-सुधार-चाहने वाले नवयुवक के लिये अनुकरणीय है। वृद्ध होते हुए भी स्वामीजी के नौजवानों की तरह उत्साह, स्फूर्ति और कार्यशक्ति बनी रही। और वे अपने जीवन के हमेशा विजयी होते रहे।

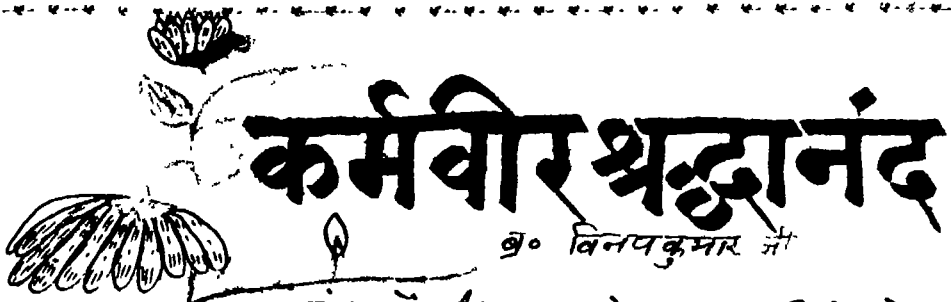
स्वामीजी एक धनी और हार्थव्यसम्पन्न कुल के वैद्य हुए थे। लक्ष्मी उन के कुल पर प्रसन्न थी। उनका बाल्यकाल ऐश, आराम और सांसारिक सुखोपभोग में बीता। आजकल के अन्य नवयुवकों की तरह वे भी उन सब सुखों से, जो कि इस पश्चिमीय शिक्षा और नगर के दूषित वायुमण्डल में पले प्रत्येक व्यक्ति में आज्ञानी स्वाभाविक हैं; बरी नहीं थे। परन्तु उन में कोई दिव्य शक्ति तथा पूर्वजन्म के उच्च प्रवृत्त संस्कार जन्म ही विद्यमान थे। आखिर उस प्रकार की अवस्था कब तक रहती! उन्होंने तो संस्कार में कुछ ऐसी बिलक्षण कार्य करने थे, जो केवल उनकी के हिससे में थे। जिससे संसार में प्रकट हो कर दूसरों का मार्गदर्शक बनना था, वह ऐसी परिस्थितियों में कब तक सम्भवता था! उन के जीवन में घलटा खाया। एक अश्रुतर्ष कालि हुई और उन की जीवन सरिता का प्रवाह एक दम उलटी दिशा में बहने लगा। भोग और बिलासिता के स्थान पर त्याग और तपस्या उन के जीवन के लक्ष्य बने। परोपकार वृत्त में दीक्षित हो कर वे धीरे-धीरे श्रीगुरुदेव से श्रद्धागन्ध ग्रहण गये। उन में आध्यात्म परिवर्तन हो गया। वह उन के जीवन में सबसे बड़ी और मुख्य विजय थी।

स्वामी जी ने जहाँ आदर्श त्याग और तपस्या, उत्कट आत्म-विश्वास और निरभिमानता, अनुसनीय साहस और निभीकता, अद्भुत कार्यसामर्थ्य और कर्तव्यपरायणता, भारतीय सभ्यता और संस्कृति के पुनरुद्धार की लालसा, ब्रह्मचर्य के प्रति आग्रहभङ्गा, धर्मनिष्ठा, परोपकार, देशप्रेम और सच्ची राष्ट्रीयता आदि अन्य सब गुण विद्यमान थे वहाँ उन में धर्म का महान् गुण भी उपस्थित था।

स्वामीजी के विचार और कार्य उस समय के लिये <sup>बहुत कुछ</sup> किसी युक्त नये और आश्चर्यजनक थे। उन्हें अपने जीवन में षण्ण पर आपदाओं का सामना करना पड़ा। अपने धार्मिक बन्धनों तथा मिथ्याविश्वासों को धारते के लिये उन्हें अपने पिता तथा अन्य सम्बन्धियों को नाराज़ करना पड़ा। ऐसे २ बन्धों को, जिन्हें अन्य लोगों को हाथ में लेने का साहस भी नहीं होता था, स्वामीजीने धरा दिया। स्वयं-सेन-में शिक्षा, राजनीति, समाजसुधार आदि सभी क्षेत्रों में उन का अपने साधियों से विचारों में प्रतियोगिता, जगह २ उन के विरोधी ५२ भी देखने में आते थे लेकिन कहीं भी उन्होंने धर्म को नहीं छोड़ा। साधारण लोग ऐसी अवस्थाओं में झुका कर कार्य को ही छोड़ देते हैं या अपने को बरा में न राख कर उन्दुरबला पूर्ण वृत्ति को ग्रहण कर लेते हैं परन्तु स्वामीजीने ऐसे मौकों पर सर्वत्र आरातीत धर्म का परिचय दिया। समुद्र की तरफ गम्भीर रहते हुए अपने प्रतिबन्धियों के मुखों को बन्द किया। किसीने सच कहा है 'महतां हि धर्मप्रविभाष्यमैव नमः।'

इस प्रकार इस महापुरुष में अतन्त्र गुण और अनेक विरोधलाचे पी जिन सब का वर्णन करना इस छोटे से निबन्ध में बहुत असम्भव ही नहीं परन्तु अशक्य है। बड़े भादवियों के दोष और कमियाँ भी उन के गुण बन जाते हैं। इन्हीं शब्दों के साथ भारतीय राष्ट्र के अद्वितीय महापुरुष, अपने कुल पिता स्वामीभुवानन्द के चरणों में इस भी भुङ्गा से प्रदुःखजलि समर्पित करते हैं।





संसार में तीन प्रकार के कर्ण्य दृष्टि के से

गुजरते हैं। उनके एक फेरणी के ने लोग हैं जो किसी काक को अपने साथ में लेते घबराते हैं। उनको अपने प् इतना भरोसा नहीं होता किने किसी काक को अपने साथ सम्भन कर सकते हैं। ऐसे कर्ण्य दुनियां में इस प्रकार रहते हैं जैसे संसार को उनकी आवश्यकता ही नहीं होती। जो जीवन के लिये आवश्यक साधन तथा आवश्यकताएँ हैं। उनके भी बपोरने तथा रूखडुग करणे में इस फेरणी के कर्ण्य अनुत्सवृत होते हैं। जीवन में अनेक विषय घटकाओं के आने प् इत बोधी के कर्ण्य घबरा जाते हैं। और जीवन से उकता कर शिष्य या दूसरे कर्ण्यों को देख देने लगते हैं। वमार तो इतने गिराशा होजाते हैं कि इस जिदगी की कफता तथा सांसारिक सुख उपभोगे को तिलांजलि देकर आत्मरक्षा प् उताक होजाते हैं। इस प्रकार के कर्ण्य समाज या जाति के अपनी काई स्थिति नहीं बना कर नहीं रह सकते। समाज इतें उधकित भावने देखता तथा व्यनहार करता है समाज का यह साध्याप नियम है। कि जो कर्ण्य समाज का कुछ उपकार या सहायता कर लेवे वही

मनुष्य समाज का सच्चा अंग है। फिर इस फोला के मनुष्य विच्छिन्न समाज के सच्चे अंग बन सकते हैं।

दूसरी फोला के मनुष्य वे गिने जाते हैं जो कारक के आक्रमण तो करते हैं परन्तु किसी भाषा या सुसीबत के आगे पर काम के बीच में ही दौड़ कर अलग हो जाते हैं। इस फोला के मनुष्य किसी काम को तो निर्निष्ठ तथा किसी का बीच में अधूरा छोड़ देते हैं परन्तु ऐसे मनुष्य जीवन के समुष्ट अन्वश्य रहते हैं। ऐसे मनुष्य जाते संसार का या समाज का कोई उपकार न कर सकें परन्तु अपने स्वतः जीविकापार्थकी साधन तथा समस्या अन्वश्य बघेर तथा हल कर लेते हैं। यद्यपि इस फोला के मनुष्य समाज में बड़ल विपत्ति बना कर न रहसके या तेरुल्य का कार्य न कर सकें तो भी अपने जीवन से निरग्ना होंगे। बचे रहते हैं और साधन पर जगत में उन की गिनती रहती है। जीवन मरु तथा संसार की अन्वश्य कुद ग कुद अलम्ब करते ही हैं।

तीसरे प्रकार के मनुष्य हैं जो किसी प्रकार को लेते निकते नहीं हैं। उसकार के नील में चड़े चितनी ही सुसीबते आगे परन्तु उसे बीच में छोड़ना अपनी शक्त के लिए विलास, समाज के प्रति तथा जीवन के प्रति कृतज्ञता साधते हैं। उसकार को धरा करके ही चिन्तन लोगे हैं। इस प्रकार के

गुरुव्य सगळ या संसार के अपनी एक हेली निशानी द्योउ जात हें जो उरवा सरा के लिये आरु ~~द्वारा~~ कर देती हें जनतक रस प्रकार का व्यक्ति जीवित रहता हें तबतक तो संसार को उरवा आवश्यकता होतीवे हें बाद में आ उरवे आरुवें संसार दो एक आरु बहाता हें। जीवित रहते हुए उनको प्रत्येक फल प्राप्त तथा जाति की सेवा के व्यतीत होता हें। रनाते, पीते, उबते, बँठते ह सगळ जाति की फलाई के बारे के विचार करते उह व्यतीत होता हें सेवा के बार्ध के जीवन के एक भा धाता फे तब भी नहीं हिचकते अरु शाक के तथा अनेक आरुओं से <sup>अभिमत हुए</sup> जीवन को बलि चढ़ा देते हें। पादाला की सब के अहल्य मरि ने रूसी के फलने हें कि किसी रीत या अर्त की रथा या सेवा को जाय। रस फेरणी के गुरुव्य महापुरुषों की कोटि के रहिते जाते हें।

स्वामी फलानर जी भी रानी महापुरुषों की कोटि में हें थे। उन का स्वरूप फल सेवा बार्ध के व्यतीत होता था। उन का जीवन ही माता सेवा के लिये ही था। दीनों तथा अताओं का बह सहा था, गुरुराहों के लिये पथ प्रदर्शक तथा उद्योगि दाता था। सेवा के बार्ध के जितना उसे आग्य आता था उतना वह जीवने के और किसी कार्य में आतरु का अनुभव उसने नहीं किया। तब क्त तथा धन से बह गरीबों

बा ~~क~~ बंधुधा / धन से लहायता बरनी है <sup>तो</sup> बडत से कृतघ्न बर सकते हैं।

ओ बडत से कृतघ्न धन द्वारा सहायता करने देखे गये हैं / तब इस

भी कुछ दू तक लहायता बरते वाले अधिभ संख्या में कितने ल सकते हैं।

<sup>अब</sup> जिनके दिलों में अनेक दरिद्र दृष्टियों ने हास्यता है ~~अब~~ को

कजब रख दिया हो किने के रूपता धन ओ तब लहायता ~~कर~~ कर  
न रहे। पण कत द्वारा लहायता करना लन ले सुशकल है / कत में

तभी आनता कितनी होती है कि वह कते कुछ उपायों से त्यागकर

सुधीयों के ऊर्ध्व से नये। तब ही नई कार है कि वह ल के उचित लनी

लगा ले लन की हित वाकता वे। तब कृत घ्न के वाकरी चीज

है किने कत में उले लगाता चले आती इच्छा की सुता विक लगा

लकता है। पण मन मों के कतों से कत से वा सुधीयों के

पुन जाहता है। कत से सदा के दृष्ट्य लका देलते रहना लका

है जो उले ह लमय युन का पात बरते रहे। संसार में कत ने

वध आये हजारों कृतघ्न तब आये में पण मन को कत के

सुने काला कोई निरला ही तब आये में / जिने मन को वध

में विधा हुआ है वह कत दुनियां में कितनी काक ले अधमीतव

हास्यता। कत से उधवा या अध का उदध कत के <sup>दुरासता</sup> ~~कत~~ है / यही

मानसिक शक्ति में उद्वेष्ट है तब कितनी से मध राने की जहाली

गयी ओ प्रत्येक कत सुधीयों के लका ललता इधर संपन्न होता है।

स्वामीजीका मन अपने बाबू से था जिसे काम से जाते उसे पूरी शक्ति से लगाना सकते थे। इसलिए उन्हें प्रत्येक काम से अनुप्राणित भी और निर्भीकता का बाध रहता था। यदि मन विचलित हो तो वही निर्भयता का प्रदर्शन नहीं करता। मध्य तथा निर्भयता मन के विषय है। यदि मन में मध्य का बोध है तब चाहे कितना ही प्रयत्न करो किसी काम से सफलता नहीं मिल सकती। यदि इसके विपरीत मन में निर्भयता है, तब उसे शिवा का मध्य है और तब किसी वैशेष आपत्ति का तथा अनुशेष जायसि का मध्य है तब चाहे उसे काम से कितनी ही बुरावें आएं वह सभी भी एक काम से ऊपूर नदी किनारे से बरतती विष्णुम लक्षण स्वामी का ही नाम जो जा मन शून्य में स्थली तथा प्रमाण्य म था। उसे त लोकापना द का मध्य था और त किसी दूसरी शक्ति को द था। जिस काम से उन्होंने हाथ डाला निर्भयता से उनके ऊपर से लगा लगे रहे, तब सफलता दोनो हाथों मिल के उन्हें आशीर्वाद देती थी जो उन्हें उत्साहित किया करती थी जिसके द्वारा उन्हें सब प्रकार की प्रकृतियों प्राप्त हुआ करती जो एक जैसे उनको जो सपने में भी नहीं त ही नहीं करती।

स्वामी का प्रधान गुण उनकी कर्मण्यता थी। मुमुक्षुओं के

धारणा करने तक के काम करना ही है। धर्म के बिना जीवन ही नहीं धारणा बिना  
 जासकता। यदि जीवन ही रक्षा की जिंता है और उसे आति तक ले जाने की  
 चाह है तो प्रत्येक का धर्म को इस कार्य में प्रयत्न देनी पड़ेगी। अतः  
 यह निश्चय ही है कि धर्म के बिना जीवन नहीं तो धर्म से चकरा कर  
 जीवन को गलत ही करना ही हमारी जी धर्म से दली नहीं डरे, यह बात  
 दोरा है भा बड़ा, इससे गहनवरी होती है उनके नहीं इसकी उद्योगे कभी चिन्ता  
 नहीं थी। जिसका कि उन्होंने अपनी तथा समाज की उन्नति देनी उसीका  
 जो जी जान से प्रयास करने में जुट गये। एक सब भी धर्म की सिद्धांत  
 ने। श्री गुरु से आगे वाले हैं और प्रतिदिन कोई न कोई काम करते  
 ही हैं। पालु हमारे कामों में तथा स्वामी जी के कामों बहुत अल्प ही हम  
 जो काम करते हैं केवल धर्म अर्थात् जो गुरु के रहने कर करते हैं  
 पालु भी स्वामी जी के कामों में अपनी अलाइ की कपेका इतरेकी  
 अलाइ अधिक हुआ करती थी। ने किसी को दुःखी देल नु नहीं रह  
 सकते थे। ईश्वर की सृष्टि के एक एकसका) नहीं तो दुःख, दुः  
 क्लेश में सबकी बल भोगने तथा अज्ञान से जीवन व्यतीत करने का  
 अधिवाह है इहालिये उद्योगे जितने तक विषय उनमें हीनों का विवेक  
 रक्ताल रहा है उनका यह विचार था कि अर्थन प्रमुख जिर्णभा  
 इह धर्म पंजके लिया, समाज अधिवाह रहती है जो समाजान या

उच्चजाति के हैं उनका यह बर्ण भी हल नहीं हो सकता कि वे उपनेस  
 कर्मजो या अपने ही बोरी जाति के कृषा के जो अग्रिमैय ही समाज  
 से बहिष्कार करें। स्वामी, सेवक या, ब्राह्मण, पारलिय वैश्य धूडों का  
 या बड़ा छोटे या कभीभी मर्यादा नहीं कर सकता। ब्राह्मण आर्यवर्ण  
 तो पीढ़े के समाज की व्यवस्था के लिए अनुष्य के ही बनाएं हुए हैं।  
 पहाला के कभी भी एक ही विसी को विशेष गुणों के निरूपित  
 वे नहीं मंजा जिसके बह यह बहने का साहस के एक ब्राह्मण  
 के या जन्म लेने के काण ब्राह्मण ही ही ब्राह्मण आर्यवर्ण  
 तो पीढ़े के समाज गुण कर्मों के देती है। स्वामीजी ने इस विषय  
 में भी प्रबलता से बात किया जिस का अर्थ आजकल के समाज  
 अबूतो हूँ या पड़ रहा है।

उनके जीवन का प्रधान कर्म युद्धकाल का

निर्माण करना था। बहुत ही से यह शो कर्म हुआ कि वर्तमानकाल

की शिक्षा से मुक्त समाज का लाभ की बजाय गति अनधिक हो गई

है। युद्ध देशकाल की बजाय धार्मिक रण से रंगे जाय उन्ही के समाज

होते जा रहे हैं। युद्धों के दिनांक शिक्षा से विदेशी ही बनते चले

जा रहे हैं। उन दिनाकों से कभी भारत की हिंसाकारगन्ती विकलस्वती

भन एक ऐसे शिक्षणालय का उद्गम होना चाहिए जिसमें भारतीय

दंगले निष्कार्थकों को शिक्षा दी जाय और रख समाज में भारतीय

की है। उनके उद्गर्क उग्रसमाज के कुछ प्रमुख व्यक्तियों ने







हमारे अन्तस्तरल में जो उमंगें उठा करती हैं - हमारे मन में

जिन दिव्य भावनाओं का आविर्भाव होता रहता है - और जिन महान् आत्माओं में महान् काम के बीज बोये जाते हैं - वे आत्म-विश्वास की जल से सींचे जाकर समय पर अपना फल लाते हैं। जब दुर्गंध अल्पसुख के नेत्रों से लगे लगे हो जाते हैं, तब ही शरीर पर निजकर्म की छाया पड़ती है - जो २० सहस्र कर्मों को कटाव दे सकती है।

आजकल की दृष्टि से २० सहस्र कर्मों को ही बड़ी बात नहीं, परन्तु धीरे धीरे उस अज्ञानमयी विकट परिस्थिति में गुरुकुल की स्थापना विषयक तबीयत और अनुभूति विकार पर उठे रहना और दुनिया के सामने अनहोनी बात को सम्भव कर देना, मायूली काम था - विकार प्रवाह में गहरे दुःख २२ आदर्शों को उसने किया तब ही रूप दे दिया - कहा जाता है कि लार्ड कर्जन के सुधार में से शिवाजी सुधार भी एक सुधार था - समय पर आकर मेराले के

शिक्षा-विषयक सिद्धान्तों ने अपना रङ्ग-दिरवाया और  
 देश-को पश्चिमीय सभ्यता-के रङ्ग में रंग-दिया। शिक्षा-ने  
 देश-की प्राचीन भाषाओं और सभ्यता-पर कुबारा-कात किया-  
 इस शिक्षा-ने जैसे नम्राल जेदा-कर-दिए और मौलिकता  
 को कोसों दूर फेंक दिया। केवल इस शिक्षा-का उद्देश्य सरकार  
 के शासन-तथा अधिकारों-के बनाए रखने में सहायता देना-तथा  
 राष्ट्रीय भावों और उन्नति-को देना देना था। यह विदेशीय-शिक्षा  
 प्रशासी केली और खूब केली, इसने भारतीय-नव-युवकों-के मनो-बन्ध  
 पर खूब-जबर-दस्त रखा-जमाया। और भारत-वर्ष-शिक्षा-की वास्तविक  
 दौड़-में अन्य-देशों से-निचड़ा-गया।

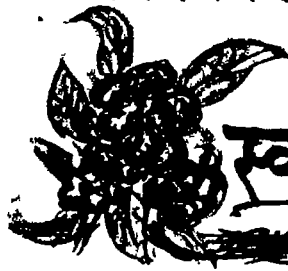
उक्त-कुल-के-विचारों-पर खूब-दिखलगी-दुर्-कुल-पिता  
 को-पगल-बताया-गया-और-जन-तन-युक्त-कुल-के-आदर्श-को-इ-का-में-ही  
 उड़ते-दिखा, परन्तु-कुल-पिता-को-तो-यह-धुन-सकार-थी-कि-यदि-किसी  
 देश-की-उन्नति-हो-सकती-है-तो-उसकी-अपनी-संस्कृति-से-ही-हो-सकती-  
 है। भारत-वर्ष-की-नकोरे-भाषा-है-और-नकोरे-सभ्यता-है-और-नकोरे-  
 संस्कृति-है। यदि-भारत-अपने-प्राचीन-अस्सी-विश्व-उन्नति  
 शिक्षा-पर-पहुँचना-चाहता-है। तो-उसे-अपनी-संस्कृति-का-ही  
 अवलम्ब-लेना-पड़ेगा। अपनी-सभ्यता-को-ही-अपना-ता-पड़ेगा-और  
 अपनी-जीविका-का-भी-को-बच-से-लगाता-होगा, तभी-राष्ट्रीय

भावों का जन्म होगा। यदि पाठकों के मन पर दया के  
 पक्षे विद्यमाने गङ्गा के पार काङ्गड़ी गाँव के पास कपडालगा ही  
 तो दिया। उदा वह दिन बिलना खर्चीक होगा, जिस दिन उस  
 माली ने बाँधीका लगा प्रीपी और इस बाँधीका के लिये अपना खून  
 और वसीना खककर दिया था। तभी तो उस तपस्वी माली की यह  
 पहलवाती बाँधीका दुनियाँ के अन्दर अपना साती नहीं रखती।

जब २ महासभा के द्वारा राष्ट्रीय उत्पात का प्रयत्न हुआ  
 तब २ राष्ट्रीय विद्यार्थी अत्यन्त भावशक्तता प्रतीत हुई और  
 जगह २ राष्ट्रीय संस्थाएँ खुलीं, परन्तु त्याग में, कष्ट सहन में, आत्म  
 विवेचन में और तत्पश्चात्त में कुककुल सब से बड़ा चढ़ा है। राष्ट्रीय  
 कामों में भी कुककुलीयों के मन प्राणों में कभी भी देहा मुँह नहीं  
 किया। परन्तु केसी भी परिस्थितियों में ही कुककुल ने अपनी निष्ठा  
 कायम रखने में जो शिष्टा की और उस तपस्वी के तप का प्रभाव इतना  
 था कि आज भी कुककुल भूमि में उसी र सन्ध्या की आत्मा  
 बोल रही थी है :- खडुबे को देखते ही मेरे सामने तो बेबी हुई मन्त्री  
 शान्त और दिव्य भावना भरी नष्ट प्रतिमूर्ति खकवारता निराधार  
 माया ( ) का काम कर जाती है।

अदृश्य वस्तु स्थितिकी प्रतिमूर्तिता में जादे बिकते ही सुक्ति समूह के  
 प्रतिबन्ध लगाने, किन्तु दिव्य भावना सारिता को रोक नहीं सकते।  
 खडुबे को देखकर दिल खकवार उमड़ी पड़ता है और आज के समयों  
 के रास्ते अशुभ में उस परमपवित्र दिव्य आत्मा के चरणों पर

आत्मसमर्पण कर देता है। आज वह मूर्ति खडुबे के तीर्थ नहीं  
बैठी। जरा खडुबे से तो पूछो कि एक कृतज्ञ तू अपने स्वामी के विरहा-  
नल से भस्म क्यों नहीं हुआ, तू खूब खा क्यों नहीं ९ तब क्यों से गम्भीर  
दिव्य ध्वनि निकलती है कि उस महात्मा के भक्तों के अशु-विन्दुओं से  
आज तक महल हलहा रहा है और उस दिव्य मूर्ति के सन्देश को सुना  
रहा है। उसे गङ्गाधर तू धन्य है जिसने तूने उस भव्य मूर्ति के चरणरु-  
ओं के सिर अपने चढ़ाया और चरणरुमलों की सेवा में ही तूने अपना तन  
वार दिया और उसके पीछे भी उस की कुरियाओं नहीं छोड़ा।



# स्वामी श्रद्धानंद

व. शिवकुमार जी.

स्वामी श्रद्धानंद महापुरुष थे।  
महापुरुषों के नाम भी महान् होते  
हैं। वही एकमात्र विशेषता है  
जो कि साधारण पुरुषों और महा-  
पुरुषों में भेदबन्ध लीमा का काम  
करती है। संसार में उत्पन्न हुआ  
उत्पन्न मनुष्य कोई न कोई नाम  
अवश्य करता है, लेकिन महा-  
पुरुष जो नाम धरते हैं, उनके  
नाम कोई न कोई विशेषता अ-  
वश्य होती है, जो कि उन्हें साधा-  
रण आदमियों से ऊंचा उठा देती  
है। कि श्रद्धानंद तो सत्यासी  
थे, उनके तो हर एक नाम महान्

होने ही चाहिये।  
अब देखा यह है कि कौन से से  
नाम थे, जिन्होंने स्वा. श्रद्धानंद को  
महापुरुष बनाया। वे तो महान्  
आत्मायें, एक नहीं अधिक हैं।  
ऐसे नाम हर जाती हैं, जिनसे  
उनके महत्त्व की परावृत्ति हो सकती  
है, लेकिन उनकी लम्बाई बहुत  
ही बेबाधों से नहीं हुआ करती।  
आगर होती भी है तो उन लोगों  
में जो कि शिक्षित हों, जिन्होंने  
महान्-आत्माओं के जीवनचरित्र  
को आधोपान्त पढ़ा है। शेष  
सर्वसाधारण जनता तो महान् पुरुषों

के खास नाम को ही देख कर उन  
 का गुणगान करती हैं। इसीलिए  
 उत्प्रेरक महाप्रकृत में ऐसी विशेष-  
 यता अवश्य बनी जाती है, जो कि  
 उसकी अपनी ही है, जिस विशेष-  
 यता के द्वारा सर्वसाधारण जन-  
 ता में भी उसका नाम अमर रह-  
 ता रहे। 20 वीं सदी के एक सली  
 विद्वान को और कुछ नहीं सूचना,  
 वह तो केवल इतना ही सूचना चा-  
 हता है कि कुछ में ज़ारशाही का  
 अन्त किसने किया। उसे पहले स-  
 दब नहीं कि ज़ारशाही के अन्त  
 करने वाले को कोन 2 वीं विश्व-  
 युद्धों में से गुजला पड़ा, उसने कि  
 साधन से रुह की सम्पूर्ण जनता  
 को अपने पुत्रों से क्रमशः  
 कर दिया; इन सब बातों की  
 विवेचना किसे बिना ही महमि

किस ज़ारशाही के अन्त करने  
 वाले की लोक बोलें; और खोन  
 वा तेरे के बाद अपनी विद्वान-  
 सुदम भेंट को उसके बालों में  
 लदा समर्पित बोलें। यही व्यव-  
 हा एह एक नेता के उत्ति सर्व-  
 साधारण जनता का होता है। भारत  
 वर्ष के उन जनता के सुदमाओं  
 को जो कि अधिका की चमकी-  
 का तक पहुँच चुके हैं, महात्मा  
 गांधी के विषय में केवल इतना  
 ही <sup>का</sup> शोक प्रकृत है कि विदि-  
 गवर्नेट एह सुदी भट लड़ियों  
 से को देह को जेह में गहरेमी  
 है, लेकिन वह पतल ए अन्तरी  
 ऐसी सुगत दयाल है कि कोन  
 जेह ले बाहर आ जाता है। सर्व-  
 साधारण जनता सर्वत्र महान्  
 युद्धों के विशेष बालों पर

नज़र घटती है। सर्वसम्भालण  
 ही नहीं, अपितु उत्प्रेक भोगी  
 का आरम्भ महान् उत्तम के वि-  
 शेष नाम के देखना चाहता है।  
 और खाल का अवशिष्ट आरम्भ  
 ले देखेगा ही उद्योग नाम के विस्त-  
 र के वि महान् उत्तम का महत्त्व  
 प्राप्त होता है। देवदत्त इसी दृष्टि  
 से विचार करते पर हम स्व-  
 महान्द जी के मुख्य कामों को  
 दो विभागों में विभाजित कर चढ़ेंगे,  
 प्रथम दृष्टिकोण का शुद्धि; और  
 द्वितीय गुणगुण की संस्थापना।  
 यह दो काम ही ऐसे हैं जिन्हें  
 स्व. महान्द जी की परिचायक ले  
 चाहती है। यही दो काम मंडी  
 रूप में महान्द जी का परिचायक  
 प्राप्त करने में पर्याप्त हैं।

हिन्दु-शास्त्र की संख्या दिनोंदिन

घटती जा रही थी, देख कर हर  
 एक हिन्दु का दिव्य रहस्य जाना जा  
 हिम्मे का। उन दिनों तो सर्वसुख  
 अन्धोदरता का, जिसने जी में  
 आती हिन्दु की बुद्धि और यज्ञो-  
 पवीत काटता और सुसहमान  
 का ईश्वर बना देता। लेकिन  
 इस का भी हिन्दु-शास्त्र की अन्ध-  
 खेल्ना उपचार इस नाटक को  
 देखती ही रही, उसमें इतनी भी  
 सुदृष्टि थी कि उठ कर इसका  
 प्रतिपाद कर चढ़े। एवं धर्म से  
 इतने धर्म में जना कोई तुरी  
 बात नहीं। आर विही को किसी  
 धर्म में कोई विशेषत नज़र  
 आती है, तो यह ले वह उसे  
 अपना ले, इसमें किसी को भी  
 आवश्यक नहीं होती चाहिये, और  
 न ही होती है। लेकिन आवश्यक

तो उस समय उत्पन्न होती है जब  
 कि किसी धार्मिक आरपी को मान-  
 विधि भूते पुढोभनों के द्वारा अपने  
 धर्म के सुत बर दिया गया। बभु-  
 तः इसी शस्त्र के ही उन दिनों  
 अधिबत हिन्दु सुलतमान हो  
 रहे थे जब कि स्वा० महात्मजी  
 ने शुद्धि का बीड़ा उठाया। स्वामी  
 जीने बभुतः एक बहुत बड़ा काम  
 किया। यह सामाजिक का चाहे प्र-  
 ष्व असासमिक हीनों न हो। अहिं-  
 सैके आदमी ही उसे बर लकने के,  
 और अहीने ही किया। जबरन  
 बर किया रहे चाहे भारत में शुद्धि  
 की प्रस रही। और अन्न में अहिं  
 के गुण भी इसी के कारण गए।  
 उनका इसए और उबहे बिलेव  
 काम गुलतुट की स्थापना के उप  
 में था। गुलतुट की स्थापना उनका  
 मोटिव काम था। जहि पमान्द

ने उन्हें इलके दिने इराए ही  
 किया था। उस इराए को प्रिना-  
 एष में परिगत बरते उये स्वा०  
 महात्म जीने गुदा के दिनारे  
 का एक विशद गुलतुट की  
 स्थापना की। जिसकी स्थापना का  
 उदेश्य भारतीय विधार्थियों को  
 भारतीय शिक्षा देते उये आर्य  
 नागरिक बनाता था। बभुतः यह  
 उदेश्य, भारत की तत्कालीन अवस्था  
 को इष्टि में रानते उये बहुत ही  
 अंश था। उद्यम ऐसी शक्ति का  
 ही बीज के उन दिनों मुकाबला  
 बरता जोरि एट काम न था। जिस  
 विधार्थियों के हासने स्कुलों में  
 काटेजों के अनेकविध पुढोभन को  
 करे हों, उनको अपनी ओर खींच  
 ताका एक बहुत बड़ा काम था। एसे  
 यह स्वीकार बरत चड़ेगा कि यह उदेश्य  
 बहुत अंश था और जिस आरपी



के रिट में यह भी कोई  
 अलभारण व्यक्ति का, जिससे  
 प्रभावित होकर लोगों ने पुत्रों को  
 एक उद्देश्य की शक्ति दे लिये, उन-  
 को समर्थि कर दिया। यह उद्देश्य  
 रहे अब तक भी पूर्ण न हुआ हो,  
 लेकिन पहले उच्च होने में किसी  
 को यह भी चन्दे नहीं। उद्देश्य  
 की शक्ति में भी यह सजा नहीं  
 के कि उसकी अपूर्ति में है। उ-  
 द्देश्य हमेशा ऊँच होना चाहिये,  
 और मनुष्य, मनुष्य समाज का  
 किसी संस्था को शत्रु: २ और  
 बढ़ते जाना चाहिये। उद्देश्य की  
 शक्ति की ओर तन्मयता से हग

जना ही महापुरुषों का ही <sup>3</sup> गति पु-  
 ष्य गति पुत्र बली है। सा. म-  
 हानन्द जी ने आर्षेयता को उच्च  
 मार्ग की ओर धकेट दिया, जिससे  
 कि गुरुकुल के उद्देश्य की शक्ति  
 हो सकती है; उली ज्ञाने धन्दे  
 से अब भी गुरुकुल में केत उच्च  
 रण लुप्त हो है, देखें गुरुकु-  
 ल का यह लुप्तता बन्द हो जाता  
 है या इसमें दूरा वेग आता है।

यह हैं दो काम जिनसे एक-  
 पुष्य सा. महानन्द जी महापुरु-  
 षों की शक्ति में सा लदे।



# व्यक्तित्व

ब्र रामनाथजी

(१) व्यक्ति में -

महात्माओं का व्यक्तित्व ऊंचा होता है, इसी वजह से दुनियाँ में पूजे जाते हैं। उन्होंने मानव-जाति का कोई बड़ा उपकार किया होता है, इस वजह से दुनियाँ उन्हें मानव की दृष्टि से देखती है। लेकिन कोई भी व्यक्ति ऐसे सर्वजनिक कार्यों में सफलता के बराबर असफल हो सकता है? यदि उसके व्यक्तित्व का अभाव जन्मा जाये। अगर उसके व्यक्तित्व की सहायता होगी पर ले तो जिधर भी वह जाएगा, जिस क्षेत्र की ओर वह रुकना चाहेगा, उस ओर सफलता और विजय उसके हाथ में होगी।

स्वामी जी के व्यक्तित्व का अभाव किसी भी प्रकार कम नहीं था। जब पत्र ले ही उन्होंने इस बात को सीखा था कि जो काम दूसरों से बराने की चाह हो, पहले स्वयं उसका अनुभव कर लेना चाहिये। सत्यप्रति-ज्ञान, सत्यवक्तृता आदि बहुत से गुण तो उनकी घेरे हुए रहे थे। शरीर में, विद्या में, आचरण में - सभी में वे ऊंचे उठे हुए थे। उनका जी-

मन को २ प्रलोभनों में ले गुड़ले के कर निधमित बन पाया था। य-  
 दती जवानी में लोग जयः जिन दुर्वहनों का शिकार हो जाते हैं,  
 उनमें पड़ते २ अपने आप को उन्हेत्रे बचाया था। शुरू में इतने  
 प्रलोभनों का सामना कर बुद्धने पर, आगे बढ़कर उनमें इतनी  
 शक्ति आ गई थी कि कोई कोड़े से बड़ा प्रलोभन भी उन्हें सत्य से  
 डिगा नहीं सकता था। उन्हेत्रे अपने जीवन में कई बड़े अनु-  
 भवों को लिया था, और ये अनुभव ही कई जगह उनकी लपटगा  
 में कारण होते थे।

ऊँचे लोगों का इन सांसारिक भोगों-पदों के व्यवहारों से मन उबार हो  
 जाता है, वे इतने पड़े रहना पसन्द नहीं करते। यही कारण है कि स्वामी  
 जी ने भी बकाहत को बूढ़ और थोड़ा सीखने और निरुत्सव का पुर्जा सम-  
 म कर, धन-दौलत की कुछ भी पता न करावे तथा के हिमे छोड़ दिया।  
 स्वामी जी ने देश और जाति के उपकार के लिये जो काम किये लो लो  
 किये ही, लेकिन उनका व्यक्तिगत स्वयं इतना ऊँचा था, कि उनके गुणों  
 का जितना भी मान लिया जाय, थोड़ा है। उनका वह अटल विश्वास  
 था कि जब तक अपना सुधार न कर लिया जाय, तब तक दूसरों का  
 सुधार किया ही नहीं जा सकता। कई स्वयं को बिरा देते ही, इतने  
 को बहुत कुछ बताने फिर करते हैं। अहानन्द ऐसों में न थे। वे जो  
 कुछ करते थे, पहले स्वयं आचरण में ले आते थे। अपने विचारों  
 में जो वे व्याजगादि के विषय में समझते रहते थे; प्रम-प्रियम के

बाहर करने और बनाने में विशेष ध्यान देते थे। स्वयं उनके विषय में प्रसिद्ध है कि लोगों ने उन्हें रेंदगारी के डिब्बे में भी बाधाम करते देखा था। प्रतः ५ बजे से ही उठ कर सब नित्य-कर्म कर लिया करते थे। अपने विद्यार्थियों को कोई बात सिखाने का उनके पास नहीं रंग था। जिसका व्यक्तित्व इतना अंधा हो, उसकी बातों का प्रभाव विद्यार्थियों पर न पड़े, यह कैसे हो सकता था ?

उनका बोलने का तरीका बहुत मधुर और छिप था। दूर लोग उनके माराज होकर जोश में भी बात करते लग जाते थे, पर उसका ज्ञान भी वे शान्त होकर ही देते थे। ब्रह्मचर्य के तो वे बड़े हामी थे; पर अपने विद्यार्थियों को ब्रह्मचर्य का उपदेश करते रहा करते थे। अपने विद्यार्थियों को वे ब्रह्मचारी नाम से ही पुकारना पसन्द करते थे। यदि किसी के मुख से 'सड़का' शब्द सुन लेते थे, तो बड़े माराज हुआ करते थे। जहाँ तक हो सकता था, अधिक से अधिक ब्रह्मचर्य का वायुमण्डल बनाना चाहते थे। अहिंसा की दृष्टि भी उनकी बड़ी दृढ़ थी। साथ ही स्वहल और पराक्रम भी कम न था। लोगों ने उनके गुरुकुल के नीचे में रात्रि को उनके तख्त के नीचे चीते, भेड़िये तक को घेरे देखा था। लेकिन वे इसकी कुछ परवाह करते थे, हमेशा बाहर खुली हवा में ही सोते थे। बहावस्था में भी उन्होंने बाधाम को न छोड़ा था। यही कारण था कि शरीर में बीमारियों के होते हुये भी वे इतनी लम्बी आयु तक पहुँच सके। उनके गुणों और विशेषताओं का वहाँ तक वर्णन

विधा जाय, वे तो सचमुच गुणों की खान थे। त्रिदेशों से जो लोग गुरुकुल को देखने आये. उन्होंने गुरुकुल के विद्यार्थियों में कुछ दिखने से पहले आचार्य-भट्टानन्द की विशाल, भव्य शक्ति को अवश्य ध्यान दिया। जहाँ गुरुकुल की शिक्षा-प्रणाली उन्हें आकर्षित करती थी, वहाँ साथ ही भट्टानन्द के विशाल देह और शान्त आकृति का जब पर ऐसा असर पड़ा कि उसे मुझसे न भूट सके। वह ही, उनके व्यक्तित्व की छाप!

## (2) समाज में -

स्वामी जी ने अपने व्यक्तित्व या जीवन को जिस ढंग से रचना से तो है ही : केवल उनका सामाजिक क्षेत्र में विद्यात्मक कार्य गुरुकुल की स्थापना से प्रारम्भ होता है। यह उनका ही प्रथम साहस था कि लॉर्ड मैकाले की शिक्षा-सम्बन्धी नीति के त्रिरोध-स्वरूप, मुन्दाबिहे में रने हुए। शिक्षा के क्षेत्र में उन्होंने अद्भुत क्षमता की महार पैदा कर दी। स्वामी स्वानन्द के निर्वाण के पश्चात् उस समय के आर्थिक-सामाजिकों में यह ताकत नहीं रह गयी थी कि वे ऋषि के शिक्षा-सम्बन्धी संदेश को विद्यात्मक रूप में लोगों के सामने रखते। यदि भट्टानन्द ने इस दक्षिण कार्य की ओर अपना कान आगे न बढ़ाया होता तो ऋषि की आवाज जैसे घंजीबी, शूज दर ही रह जाती। आज उसके विद्यात्मक, पुनरुद्धार का स्थापन हमारे पास कोई न होता। लोग समय उससे विद्यात्मक में लाने को अक्षम हैं।

समझते हुये, उस पर बहस ही करते नज़र आते ।

जहाँ स्वामी जी ने विचारधर्मों के विषये नई शिक्षा-पद्धति को चलाया, वहाँ स्त्री-शिक्षा के प्रचार के विषये भी उन्होंने अपनी तरफ से कुछ उपाय रक्खवा । आज जगह २ गुलकुल और बच्चा पाठशालाओं देख कर बौन है जिसके अहानर की याद नहीं आ जाती ! गुलकुलों के आदि जन्मसाला दुहापिता के प्रति अज्ञानता बढ़ाने की मन मुक्क जाता है ! आज जो अनेक गुलकुल दिखलाई देते हैं वे सब अहानर के अम हो सींचे हुये पौधे की ही बलमें हैं ।

दूसरा मुख्य कार्य, जिसके विषये आर्य समाज और हिन्दू जाति सदा उनकी लक्ष्मी रहेगी 'शुद्धि' है । उन्हें अपनी जाति, सचमुच नही प्यारी थी । अपने दूतों भाइयों को अपने ही सिद्धांत हुआ के न देन सबते थे । इसीलिये उन्होंने शुद्धि के कणों को बहराया । शुद्धि उन्हां ने इस रणभूमि से नहीं दि बने मुसलमानी का ईसाई धर्म को लहन न कर सबते थे, बल्कि इसलिये दि उनके दिल में रई का, वे अपने ही भाइयों को इस सि नर-पिशाची धर्म में डुबका नहीं चाहते थे । वेद-पूजकों, बड़ी जलसुबता के साथ राम और कृष्ण के लौलारों की प्रतीका करते बाले के हाथों, मुसलमानी धर्म का मोहर पहनाकर वे जोहें बहती नहीं देन सबते थे । वही भावना थी जिसने उन्हे शुद्धि के कार्य में प्रेरित किया । और इसी सच्ची भावना के बल पर

शुद्धि के मार्ग में ही वे हंसते २ बहिरादन हो गये । शुद्धि के लक्ष्य के लिए वे न करते थे । सुसन्मान भाई से उन्हें कोई डेय न था , वे तो सबसे रस विषय में बल-जीत किया करते थे । कई सुसन्मान उनके पास आते थे , और अपनी शंकाओं का निवारण कर चले जाते थे । ब्रीजग होते डूमे भी उन्होंने अबुनरसीद को धर्म-विषयक गुफ्तगू करने से प्रिल्मुट इन्कार नहीं किया था ।

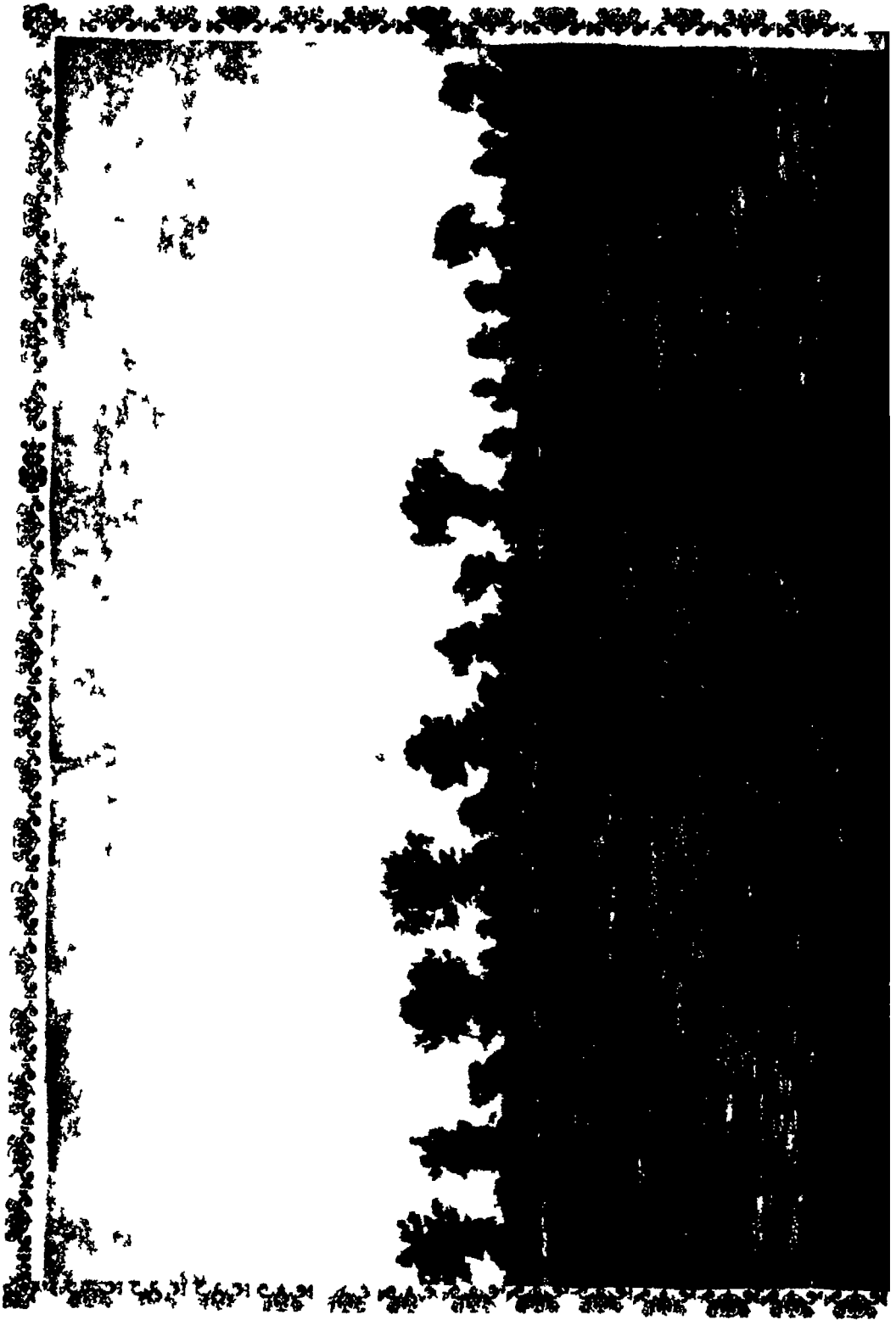
कई लोग उनके शुद्धि के मार्ग को दो धर्मों के बीच टकराई भागड़े की जगह समझते हैं । लेकिन यदि वे शुद्धि के मार्ग से ही न घबरा कर , उनकी भावना और सुसन्मान भाइयों तक की उनके प्रति सहायकता को देखें , तो उन्हें समझने में देर न होगी कि बही मार्ग , जिसे वे वैमनस्य की जगह समझते हैं , किस प्रकार दो धर्मों को भिन्नाने में कारण बन सकता था । जहाँ उनकी हल्क एक सुसन्मान के हाथ हुई , वहाँ उनकी मौत पर आंसू बहाने वाले सुसन्मानों की संख्या भी कम न थी । उनका यह मार्ग किसी भी सुसन्मान भाई का जी दुःखाने का उसे भिन्नाने के लिए नहीं था , वे तो अपने ही भाइयों को बाधित थे रहते ।

देर से बिछुड़े डूमे अपने भाई को पुनः ले गये लुगाने से यदि इच्छे को दर्द होता है तो होवे - उससे भाई भाई का मत नहीं हट सकता । उस दर्द का कारण मत नहीं , उसकी नगदानी है जिसे दर्द होता है । गाँव के गाँव मलबानों के थे , जो केवल नाम से सुसन्मान थे ; जो बड़ी उद्वेगता से उठीका किया करते थे कि कम -



हिन्दू जाति में हमें गटे लगाने बादा कोई पैरा होल है । उनको यदि  
 गटे लगाया हो अहानर ने क्या नुरा नाम दिया । हिन्दुओं की  
 हानियों मुसलमानों से भगवती हो जाकर, मजबूर हो जाती थी  
 कि वे अपने प्यारे हिन्दू धर्म को लदा दे लिसे दोगे । उनका हक  
 दुबटे २ हो जाता था, जब हिन्दू जाति की सत्ता में उन्हे रहती  
 थी कि तुम मुसलमान के स्वर्ग हो जाकर हो गयी हो, तुम्हें  
 अपने आप को हिन्दू रहने का अधिकार अब नहीं रहा । वे रोती  
 थी . किरखती थीं जमी पुकार को बोई न सुनता था । उन्दी  
 पुकार को यदि अहानर ने सुना, तो बोत सा नुरा नाम दिया ?  
 हिन्दू जाति अपनी सत्ताओं को धक्का दे देकर बाहर निकाल रही  
 थी । यदि अहानर ने आकर उसे चेला दिया, तो क्या गुनाह दिया  
 यदि लेते से जागरा, तुर्के को जितान अयाध है तो अहानर  
 को भटे ही रोपी बह हो, लेकिन उससे अहानर की शान  
 में हानिक भी आज न आयेगी ।





# कर्मवीर श्रद्धानंद.

किसी कृपा को उसकी पार-  
 निरक अवस्था में सुखाना जोड़ना  
 उन उद्योगों के लिये सब बन्धों के लिए  
 भी बहुत सरल कार्य है। परन्तु जोहि  
 १५-२० साल बाद वह अपनी  
 पूर्ण श्रेष्ठता के लिये आजाता है तो  
 सब बड़े प्रश्नों के लिये भी उसको  
 उद्योग तो दूर रहा किताब तक भी  
 कठिन होजाता है। वही ऋतु से पूर्व  
 किसी नदी के पहाड़ को रोचना या  
 किसी अन्य दिशा में धीरे धीरे उतारना  
 ही आसान होता है जितना वही ऋतु में  
 कठिन। वही सम्पूर्ण प्रक्रिया प्रकृति के  
 जीवन के भी साथ होती है। सब बाल  
 को जिस प्रायुष्काल में रखा जा-  
 ता है वह उसी के अनुकूल ही आगामी  
 जीवन के लिए अपनी परिस्थिति बना  
 लेता है। बचपन के सख्तपन को बाल

से सा बूढ़ और जटिल होता है कि  
 उसमें बस बस इस को बालना बाल  
 ही कठिन है और वही २ तो असंभव  
 भी हो जाता है। वही उसी प्रकार बाल  
 को- मुन्शीराम कोई भी किसी तरह सु-  
 ख सम्पन्न था परन्तु युवा-मुन्शीराम  
 की जागृते को बच बचाना किसी  
 साधारण प्रकृति का काम नहीं था।  
 इस उद्योग को बच में बचने  
 के लिए किसी अक्षय कोचवान की  
 जरूरत थी। साधारण साइनों के लिए  
 तो इसकी सब ही दुलती की बच बचाने  
 पर्याप्त थी। जिसने अपना सम्पूर्ण बच-  
 ल्य बचाने का समय भोग और बिल-  
 को के लिए समर्पित कर दिया तो, पीछे  
 उसका सबको बच बचाने और तपस्या  
 का पाठ पढ़ना सब सम्भव ही था।  
 बच से बच मुन्शीराम के लिए यह

बात सोलह आने सत्य की। मुन्शीराम  
 के जीवन का प्रतीक ऐसी 2 धृतिता  
 धरनाओं के प्रतीक अथ वज्र है कि  
 किसी को यह आशा - कि कितानी  
 मुन्शीराम वस्तु आने पर तापस्वी कु-  
 म्पनीराम भी बन सकता है - स्वप्न  
 में भी न हो सकती थी। "होमराय  
 विरवान को होते जीवने पात" इस  
 व्यापक और प्रसिद्ध लोकोक्ति को कि-  
 सी ने गलत ढररे विरवाया तो वह  
 मुन्शीराम का जीवन था। अपने मौ-  
 ज विराय के जीवन में कोई ऐसा  
 दुर्गुण न था जिस से मुन्शीराम बना  
 सके उवाहो। यद्यपि धन और बि-  
 लासमय जीवन एक ऐसे विचल  
 दत्ते के सामान्य है जिसके आगे पी-  
 छे असंख्य मधु-मदिराओं वाली दुगा  
 इन्हें प्रियमित्राण्य करती हैं। प्रेममयी  
 माता का रक्षा का हाथ उध ही चुम्ब  
 था। मित्र मिलते तो भी जैसे जैसे।  
 पाप के अघाट दलदल में सब बार  
 पड़ते फिर प्रतिक्षण नीचे ही नीचे

बदलते नही रहता गया। नीप 2  
 में बरि बार प्रसन्न भी लगे पर प्रत्य  
 भी अज्ञानों का बंधनों की जोर ने कर  
 ही बना होता था। *Don't drink and  
 to be merry*; जब यही व्यापार  
 था और यही जीवन का मुख्य उद्देश  
 था। मुन्शीराम होते उध भी बना किया  
 थीं भी हुआ नासबता इसका मुन्शी  
 राम के मन रखता तक भी न आया  
 था। परिणामतः कितानी ही बार कि-  
 टार्थ - जीवन में अनुत्तीर्णता के अनु-  
 कूलों का आस्वादन किया। यह समझ  
 तो उमङ्ग का था। " जीवन धनसम्य-  
 विः प्रयुक्तमभिवेकता। यद्वैकमय  
 मर्षीय किमु धन चतुष्टयम्" इस  
 श्लोक का अर्थ 2 मुन्शीराम को  
 जीवन पर चरितार्थ होरा था। जीवन  
 था ही, चित्त जी के ओर से खर्च के  
 शिखे कोई बन्धन न था। अतः  
 का शत्रु अपने को प्रभु मानता ही  
 था। जब इन बातों से कितानी अ-  
 विवेकता उत्पन्न हुनी अर्थात् जी

वह पूरी माशा में विद्यमान थी।  
 शान्त स्वप्न उठती थी नास्तिकता जो-  
 से पर थी। नाटकमय अग्नि बला-  
 ने व्या शोक था। शराब पीने की  
 आदत सीमा को हानु रही थी। बन्नी  
 पण्डित का शोक, बन्नी कविता की  
 पुन, बन्नी उपन्यास पढ़ने की लालच  
 और बन्नी अकारण। मनोविनोद  
 की कोई भी सामग्री मुन्शीराम के  
 लिए उतनी ही आवश्यक थी जितना  
 वायु और उष्णता। ऐसी अवस्था में  
 मुन्शीराम का विवाही-जीवन कित-  
 ना अल्पकालिक रहा होगा इसका  
 पाठक गण स्वयं ही अनुमान कर  
 सकते हैं। इस जीवन में बहुत से  
 उभार चढ़ाव उठे। वह बात तो मुन्शी-  
 राम के स्वभाव में ही थी कि जो व्याप  
 करना पेट भर कर करना। मुक्ति के  
 खुले चौड़े द्वारों तो ईश्वर तक को  
 नकार दे दिया आचरणों की बाग  
 मीती की तो सभी आचरणों को

दिये। मुन्शीराम को दृष्ट में यदि कुछ  
 भक्ति की विचित्रता उवाला जहा  
 रही थी तो वह भी विश्वनाथ के  
 मन्दिर में रीति-रिवाज की रानी की  
 चरना से एक कम मुभाई। व्या  
 विश्वनाथ जी को भी आज धन की  
 सज्ज बूत बेड़ियों ने अपने पन्ने में जक  
 ड लिया है जो एक रानी के मन्दिर में  
 चले आने पर और सब की पूजा के  
 द्वार पर ताला कुंज गया है” इस  
 उवाच की विचार क्षितिजों से मुन्शी-  
 राम का दृष्ट सागर शुद्ध होगया। इस  
 घटना ने मुन्शीराम को नास्तिक बना-  
 ने में जलते ईश्वर में ही दिइने का  
 कार्य किया। उस दिन विश्वनाथ के  
 मन्दिर की गली से अन्धकार-मुन्शीरा-  
 म नास्तिक बन-मुन्शीराम बन कर  
 निकला। जो मुन्शीराम देवताओं की  
 पूजाके पूर्व मुंह में अन्न जल भी न  
 गहता था वह अब इनका अन्ध विरो-  
 धी हो गया।

अन्ति-प्रधान कुल में बौद्ध-  
 ल अपने सब से छोटे पुत्र को ही  
 भाविका के देवदत्त पिता जानकर  
 मन्त्र जी मन ही मन दुःखी हुआ  
 करते थे। साध ही मुन्शीराम को  
 इन सांसारिक उलझनों में उलझा  
 देकर वह भी उसके आकाशी जीवन  
 के निष्पन्न में बहुत विचित्र हो। इ-  
 हीने अपने लड़के को संध्याहने  
 की बहुत कोशिश की पर बे-होश-  
 मन्त्र का योग अब कैसे कबल में आ-  
 ता। चुड़की धमकी, शिक्षाओंके  
 अन्त और उपदेश देने और बि-  
 नम का उस पर कुछ भी असर न  
 हुआ। काल को इस ज्ञान पुनरा  
 और उस ज्ञान उग्र देवा उसका नि-  
 त्त का कर्म था। बहुत उपलब्ध करने  
 पर भी जब वह निरक्षर हो गये तो  
 उसके मुख से यही वाक्य निकल आ-  
 १० वह समय सब विचित्र आदू और  
 अमरवन्त का होगा जिस स्वर्णिय

दिवस में मेरे इस लाउले पुत्र को  
 जीवन में पूर्णविधवा जानना भी  
 परिवर्तन की फलक नजर आगली।  
 निदान, अपने मन्त्र जानकर मन्त्र को  
 हृदय की आकाश मुन्शीराम ने सुनी  
 और मुन्शीराम सब सेसे आदूगर  
 के कर्में में फंसा कि उससे छुटकारा  
 पाना असम्भव होगा। पर आदूगर  
 कोई भय न था। १४ वर्ष पूर्व जब मुन्शी-  
 राम के पिता जानकर मन्त्र जी काशी  
 में नौकर थे उस समय यही लक्ष्मी मा-  
 किका-आदूगर के नाम से विख्यात  
 था। काशी में रहते हुए, इस भय से  
 कि कहीं मैं लड़का इस आदूगर के  
 कर्में में न फंस जाऊ, माता मुन्शी-  
 राम को यह से बहिर भी न निश्चल  
 ने देती थी। माता जी को क्या मा-  
 लूम था कि उनके बेटा का के पीछे उनका  
 चार बच्चा इसी आदूगर के  
 उपदेश से प्रभावित होकर उसका  
 अनुयायी हो जायगा।

उसी जादूगर ने अपने विचित्र  
 जादू से बहुतों को पत्तों में फंसा  
 बर १९३५ में भी बरेली में भी  
 अपना जाल फैलाने की सोची।  
 मुन्शीराम को पिता नानकचन्द  
 भी तब बरेली में ही जेलवालयो  
 एक दिन घर आते ही पिता ने पुत्र  
 को बुलाया और कहा कि - "बेटा  
 मुंशीराम! एक दण्डी सच्चाई आगे  
 हैं बड़े विद्वान और योगी राज हैं।  
 उनकी बख्शता सुन कर तुम्हारे  
 कंशक अबश्य ही दूर हो जायेंगे। क-  
 ल मेरे साथ चलना।" मुन्शीराम  
 ने उत्तर में तौ हाँ कर दिया पर  
 दिह में घर भाव चबबर ब्याहता  
 रहा कि बेवला संस्कार जानने  
 महा साधु क्या अकला की का-  
 ल बरेगा। पिता जी से चलने  
 का भाव तो कर ही दिया था  
 सोचा चलो आज भी अन्य सा-

धुओं की न्यारें इस साधु की भी बर  
 बर सुन आयेगे। बेगम के का  
 में कारवान का प्रबन्ध था। निमित्त  
 समय पर पिता जीके साथ मुन्शी-  
 राम भी बरो पहुँच गये। परन्तु इस  
 साधु की तो दिव्य शक्ति में ही कोई  
 अजीब जादू था कि उससे दर्शन  
 करते ही जादूगर की साधु रज्जुदम  
 हृदय पर अकूत होगई। अभी १०  
 मिनट की बख्शता नहीं चुनी थी कि  
 हृदय में बिचारों की उषल-पुषल  
 मचगई। उस दिन को ब्याख्यान ने  
 मुन्शीराम ने पर कोटिनी मग का का  
 जाल बिछा दिया। बर दिन किसी  
 प्रकार बीता। आगे दिन से मुंशीराम  
 प्रतिदिन ब्याख्यान में उपस्थित होने  
 लगे। मुन्शीराम को ईश्वर और बेद  
 तो एक वकी सदा भाग प्रतीत होता-  
 था, अपने नासिद्ध पन को अधिमान  
 की कोई सीमान थी। एक दिन

सु नारा के सम्मुख ईश्वर के अ-  
 स्तिता पर आश्रय कर ही उनो।  
 पाप मित्र के उदार में ही मुंशी-  
 राम रोया फिर गया कि जिहाज पर  
 सुर लगी। जो कुछ सोच कर  
 आया था सब हवा हो गया। इत-  
 नी बार तैयारी की, तीसरी बार  
 साहस किया पर मुंशीराम की  
 तर्कना को हर बार पछाड़ि ली।  
 जादूगर चला गया पर अपना  
 जादू का जाह बिछा गया। इत-  
 जाह में जैसे पक्षियों में से मुं-  
 शी राम भी एक थी बस यहां से  
 उल का पुकार उदाह पड़ा। उमड़ी  
 हृदय की बड़ी हुई उमड़ी टकरा  
 कर उलटी और की चली। ना-

सिद्ध मुंशीराम के बहा आन्तिम  
 ही नहीं बना पर नारा के जादू ने  
 आचरण में भी क्रांति उत्पन्न कर  
 दी। अपने नाउले पुत्र में यह  
 आश्चर्य-पूर्ण परिवर्तन दोष कर  
 पिता जानकर चक्र जी की खुशी  
 का पारावार न था। अपने  
 लड़के के सम्पूर्ण परिवर्तन का श्रेय  
 उसी जादूगर को ही देते थे जिस-  
 को विचित्र जादू से उल की  
 लड़के की विचार तरंगों का  
 परिचय की तरफ बढ़ता उठा  
 प्रजाए एक क्षण पूर्व की ओर व-  
 ट चला। पाठकगण! इस विचित्र  
 जादू के जादूगर आर्षिलमाज के प्रवर्तक  
 स्वामी दयानन्द सरस्वती ही हैं।



# श्री कर्तव्य

न सत्यभूषण उ

महर्षि स्वामी दयानन्द जी के निर्माण के पश्चात् आर्यसमाज के जितने कतिपय नेता हुए हैं; उन में अमरशहीद स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज का नाम सब से मुख्य है। वे एक सच्चे देशभक्त, लोक-प्रिय जाति-सेवक और प्रसिद्ध समाज-सुधारक थे। उन्होंने अपने जीवन में बड़ा भारी काम किया। उनका कार्य-क्षेत्रकेवल आर्यसमाज तक ही सीमित न था। वे देश के एक सर्वमान्य राष्ट्रीय नेता थे। धार्मिक अथवा राजनैतिक सब प्रकार के आन्दोलनों में उन्होंने भाग लिया। समय-समय पर देश में जितनी द्वांन्तियां हुईं या सुधार की लहरें उठीं; कर्तव्यका स्थाल करके स्वामी जीने सब में पूर्ण सहयोग दिया और पुरांसनीय कार्य किया। उन में विरोधता यह भी कि वे सब स्थानों पर अग्रणी बन कर रहते थे। उन्नति के किसी भी काम में वे पीछे नहीं रहे। आर्यसमाज का प्रचार आरम्भ किया तो सब मुत्सद्दों को लात मार कर उसी में दिन-रात रुक कर दिया। आत्म-सुधार में लोगों को आदर्श सन्नासी बन कर दिखला दिया। पश्चिमीय सभ्यता के प्रचार को रोकने के लिये तथा प्राचीन भारतीय आदर्शों को पुनः स्थापित करने के लिये शिक्षा के क्षेत्र में द्वांन्ति मन्था ही। गुरुकुल जैसी आदर्श राष्ट्रीय संस्था को स्वील कर अस्तमभ्य भेटे जाने वाले कार्यको सम्भव कर दिखनाया। हिन्दू-मुस्लिम-ऐक्य के दिनोंमें हिन्दू और मुसलमान दोनों जातियों के हृदय-सन्नाद तथा बिना हतन के राजा बन गये। भारतीय-स्वातन्त्र्य-संग्राम में उतरे तो महात्मा गान्धी और जवाहरलाल जैसे नेताओं की श्रेणी में गिने जाते लगे। वे एक उच्चकोटि के राजनीतिज्ञ थे। जब हिन्दु-संगठन की आवश्यकता समझी तो शुद्धि और दलितोद्धार का तथा प्रोग्राम आरम्भ कर दिया। उनका प्रत्येक कार्य वीरता और उत्साह से भरा हुआ था। वेत्याग और तपस्या की मूर्ति थे। निर्भयता उन में कूटकूट कर भरी थी। वे एक निधीक सन्नासी, वीर कर्मयोगी और प्रचण्ड योद्धा थे। उन जैसा कर्तव्यपरायण लैनिक दूसरा देखने में नहीं आया। महर्षि दयानन्द उन के मार्गदर्शक और सेनापति थे।

अपने सेनापति की आज्ञा का उन्होंने अक्षरशः पालन किया। जिस बात का भविष्यद्वानन्द अपने उपदेशों व ग्रन्थों में निर्देश कर गये थे, उसे उन्होंने कार्य में परिणत करने की चेष्टा की। जिस काम को उन्होंने उक्ति के लिये आकरमक और अच्छा समझा, उस में प्राण-पण से जुट गये। नीर मोहरा की तरह उन्होंने जीवन-संग्राम में सब विपत्तियों का बहादुरी से उकासला किया। उन्होंने जिस कार्य को अच्छा समझ कर एक बार आरम्भ कर दिया उसे अन्त में पूरा करके ही छोड़ा। महापुरुषों की यह सब से बड़ी निशानी है। 'पारब्धमुत्तमजनाः न परित्यजन्ति।'

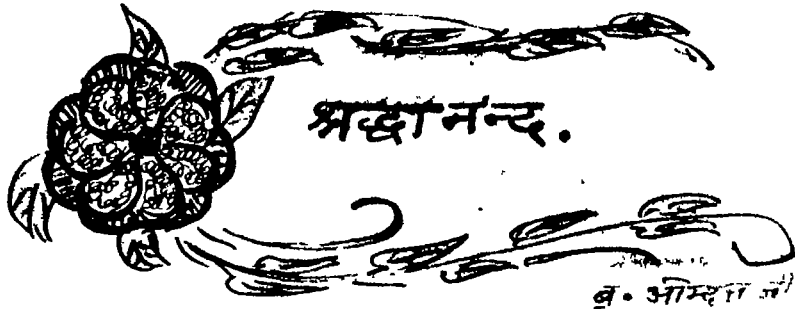
जीवन क्या है? यह एक अत्यन्त गहम प्रश्न है। इस का विचार प्रत्येक के लिये आवश्यक है। इस का उत्तर सब मनुष्य अपनी २ रुचि के अनुसार अलग-अलग दे सकते हैं। यह सब के लिये विचारणीय प्रश्न है। जीवन एक विषम समस्या है, जिस का हल आसानी से नहीं हो सकता। जीवन का बिभ्रमण करने से पता लगता है कि यह विषमताओं का द्वीप क्षेत्र है; सुरको और दुःखों का अपूर्व सम्मिश्रण है। इसमें कभी उतराव आता है और कभी-प्रदान कभी विषाद और कभी आनन्द। वास्तव में विषमता का नाम ही जीवन है। सच्चा जीना इसी को कहते हैं। जहाँ विषमता नहीं, परिवर्तन नहीं, वहाँ आनन्द कहाँ। जिसने विपत्तियाँ नहीं ऋलीं, वह जीवन के आनन्द को क्या भोगेगा! जो लोग संसार में आकर सदा अविचल रूप से एक ही कार्य में लगे रहते हैं; उन्हें संसार कैसे पहचान सकता है! जो लोग स्वार्थ-साधन को ही जीवन का एकमात्र उद्देश्य समझ कर दिनरात उदरपोषण में लगे रहते हैं और संसार का कुछ भला नहीं करते; संसार उन्हें क्यों याद करेगा! जिनके जीवन में जीवन-के द्विधा शीलता नहीं और परीक्षा की लालसा नहीं, उनका जीना जीना ही नहीं कहा जा सकता। कोई बिरले ही महापुरुष होते हैं जो जीवन के असली रहस्य को समझ कर उसे अनुसार आचरण करते हैं। स्वामी श्रद्धानन्द ऐसे ही लोकान्त महापुरुषों में से एक थे। उनका सारी जीवन विषमताओं और आश्चर्यमयी घटनाओं से परिपूर्ण है। उन्होंने अपने जीवन को साधक करके संसार के सामने आदर्श उपस्थित किया मनुष्य साधारण अवस्था से किस प्रकार ऊंचा हो सकता है; इस बात

और कहा कि मुझे प्यास लगी है। स्वामी ने सेबक से कहा पानी पिलो दो। सेबक ने पानी दिया। मगर उसकी प्यास पानी से कहां बुझ सकती थी उसको तो खून की प्यास थी। उसने स्वामी के विशाल वक्षःस्थल पर धकाप दिया। स्वामी की इहलीला समाप्त होगयी। स्वामी ने अपने खून से कटोरे को भर अपने कानिंल की प्यास बुझाई। यह थी आदर्श मृत्यु!

आज दिल्ली में एक शहीद सन्यासी नहीं नहीं बादशाह की अर्धी का जलूस निकल रहा है। लाखों की संख्या में लोग जमा हैं। आज दिल्ली की सड़कें फूलों से बिंदी हुई हैं। बैण्ड बाजों से उस दिवंगत आत्मा के मृत-देह का स्वागत किया जा रहा है। बीच में सजे हुए फूलों से बिंदे हुए एक विमान पर उसी सन्यासी का मृतदेह जो अब भी ओजस्वी मालूम होता है, पड़ा है। उस की दाती खुली हुई है, मानो अब भी बन्दूकों को आह्वान कर रही है। मकनों की दूते मनुष्यों से भरी हुई हैं। स्त्रियों दूतों पर से पुष्प बरसा रही हैं। कहीं-कहीं और रूपों भी बरसाये जा रहे हैं। यह शानदार बादशाह का जलूस दिल्ली के इतिहास में अनुपम ही था। दिल्ली के पुराने बादशाह भी अपनी कब्रों में से डचक २ कर इस बादशाह के जलूस को ईर्ष्यालि आंखों से देख रहे थे। देवता भी आकाश में विमानों से पुष्पवर्षा कर रहे थे। यह देवताओं का विमान इस सन्यासी के स्वागत के लिये नीचे उतरा और सन्यासी को इसमें बिठाकर ऊपर उड़ाया। लोग देखते ही रह गये और आज भी उस स्थान पर लोग उस सन्यासी के देह को देवताओं से विमान पर ले जाये जाते हुए देख रहे हैं। स्वर्ग में इन्डु का दरबार लगता है; सब देवता एकत्रित होते हैं। बारी २ से हरेक उठकर उस सन्यासी को स्वागत करते हैं। इन्डु अपने आसन को छोड़कर उस सन्यासी को उस पर बिठाता है। हर्षध्वनि होती है। नरेश का कानिंल अब्दुल रशीद आता है और जार जार होता है और स्वामी के चरणों में गिर जाता है। शीते २ उसकी धिग्धि बन्ध जाती है। स्वामी कहता है- 'पुत्र, इस में तेरा शेष नहीं।' यह कह कर शमा प्रदान करता है। सभी सभा में सन्नाटा छा जाता है। कुछ देर बाद हर्षध्वनि

होती हैं। आज क्षमाशीलता के सामने हिंसक शक्तियाँ नीची हो जाती हैं। यह सन्मासी कौन! यह देवसभा का सभापति कौन! यह स्वामी भद्रानन्द ही यही हमारा नायक है।

ओहो! वह क्षण धन्य था! कितना महत्व का था! एक क्षण में विचारों के प्रवाह ने क्या से क्या रूप ले लिया होगा! सत्कार के लिये पुष्प माला बनाने के लिये फूल तोड़ने वाले को मना करने वाले उस अहिंसक साधु के सामने वह विरायत दिवात्वर लिये खड़ा होगा तो क्या उस समय स्वामीजी उसको देखकर क्रोधित हुए होंगे? नहीं, नहीं, कभी नहीं। संसार के स्वप्न से महान् पुष्प महात्मा गान्धी जो उनको अपना बड़ा भाई समझते थे, लिखते हैं कि - 'यदि मैं कुछ भी स्वामीजीको जानता हूँ तो कह सकता हूँ कि प्राण द्योते समय स्वामीजी के मन में हत्यारे के विषय में यही विचार आया होगा कि परमेश्वर उस नादानको क्षमा करें।' सचमुच उस भक्तमूर्ति के दिल में यही भाव था। वह तो अपने निर्बल शरीर द्वारा भी देश, धर्म और जाति की सेवा करने के लिये तय्यार था। उसको तो अपने हाथ से बोधे हुए वृक्ष को रुधिर से सींचने का यह अवसर मिला था। स्वामीजी जिस शांति से उस दुनियाँ में आये थे और रहे थे, उस से बढ़कर सौ गुनी शानति से यहाँ से गये थे। सचमुच उस क्षण की कल्पना अद्भुत थी। वह क्षण संसार के इतिहास में नवीन ज्योति पैदा कर गया। ओक्षण! वृ धन्य! धन्य!! धन्य!!!



आजकल उस कुलधूमि में 'श्रद्धानन्द'

सम्राट बनाया जा रहा है। इन्हीं दिनों में ही हमारे कुल  
पिता ने अमरत्व प्राप्त किया था। उस की पुण्य-स्मृति में  
ही यह सब कुछ हो रहा है। जगह 2 चटलपटल नजर  
आती है। सब के मुँहों पर अगर कुछ है तो वह है -

श्रद्धानन्द। यह जो कुछ भी विभूति नजर आ रही है  
एही है वह सब उसी कुलपिता के तप का परिणाम  
है। उस ने हमारे प्रति जो उपकार किए वे किसी से

छिपे नहीं हैं। स्वयं वह एक तपस्वी और सच्चा संन्या-  
सी था, गुरुकुल का आदर्श आचार्य का और था वास्तव-

विन्द कुलपिता। उस ने देश, जाति और समाज का जो  
बलगाव किया सो तो दिया ही, लेकिन उस ने हमारे

सामने जो आदर्श स्थापित किया और हमारे लिये जो अ-  
 ने को विपत्तियां भेटीं, उन्हें हमारे दिल ही जानते हैं।  
 कहाँ तक उन के यश को बरकत दिया जाय ?  
 भी पास ऐसे शत्रु नहीं हैं और ना ही ऐसी योग्यता  
 है जिस से मैं उन का यशो गान कर सकूँ। एतद  
 गुरुकुल ही उन का कीर्तिस्थल है। जब तक यह  
 गुरुकुल इस भूमि पर विद्यमान है तब तक उस गुरु-  
 दित्त का नाम अमर रहेगा।

अब यह हमारा कर्तव्य हो जाता है  
 कि हम सब भी इस सुअमर को हाथ से नहीं छोड़  
 न जायें, और ऐसे मौके पर उस स्वर्ग में बुलपिता  
 के चरणों में रुद्ध न रुद्ध श्रद्धाञ्जलि चढ़ायें जिस  
 से अमर बुलपिता की आत्मा को स्वर्ग में भी  
 शान्ति मिले।

इस अमर पर उस पित्त की पुष्प-  
 स्मृति में हम दो कानें करते हैं। एक तो बुलपिता  
 का अभिवादन - जो कि हमें, बुलपिता और बुल-

विना के प्रति आदर व प्रेम के भावों से भर देना है और  
 हम भावुक हो कर अपने अन्तर हृदयविना के पवित्र चरणों  
 धराजलि चढ़ाते हैं। दूसरे - इस सप्ताह में जो मुख्य और  
 महत्वपूर्ण कार्य होता है वह है 'अखिल भारत बर्षीय  
 धराजलि हॉकी टूर्नामेंट'। यह साधारण या रचना-  
 या टूर्नामेंट नहीं है। इस में काका मदा एक चांदी  
 का चर विजयोपहार, <sup>(शील)</sup> भी रखा हुआ है। मुझे यह बत-  
 ते हुए बड़ी प्रसन्नता होती है कि यह शील लगा-  
 तार चार या पांच वर्षों से गुरुकुल टीम ही जीत रही  
 है। पर यह देख कर और भी ज्यादा खुशी होती  
 है कि यह टूर्नामेंट प्रति वर्ष उन्नति और उन्नति  
 ही करता जा रहा है।

मुनते हैं पिछले कई सालों की अ-  
 मेक्षा इस साल टूर्नामेंट बहुत ही अच्छा हो रहा है।  
 उन की नर टीम भी बहुत बढ़िया आई है। उनमें  
 D. P. Singh, S. Choudhary मुजफ्फरनगर की टीम विशेष  
 उल्लेखनीय हैं। इस में तीन चार खिलाड़ी तो  
 बहुत ही बढ़िया खेलते हैं। इन की game बहुत  
 ही fair है। उन के ~~...~~ उल्लेख

दुष्ट & Pressing को देख करे मुशी के दिल भी उछलने लगता है। एक देखने ही बनती है।

बहुत सम्भवतः गुरुकुल A. final में इसी से ही भिदेगी। इन की खेल देख कर यह कहना बहुत मुश्किल ही मजूम होला है कि गुरुकुल टीम इसे चलना कर ही देगी। असल: अब की बार मामला उतना उठे ला जान पड़ेगा है। फल नहीं निजय श्री दिस के गले में जामाला उलेगी।

में महं पर यह कह देना आसपक स-मकला है कि यह दूनमिण्ड जितना ज्यारा उन्नत होगा उतना ही हम कुल धिरा के नाम को उमर कर सकेगी। इस दूनमिण्ड की उन्नति ही उस के उमर-न का चिन्ह है।

अन्त में मुझे यह कहने दुष्ट हादिक प्रसन्नता होगी है कि यद्यपि प्रतिनिधि सभा 9-7 जाय ने हम पूरे ससाह का अब काश न देकर कुलधिरा के प्रति श्रद्धा का अच्छा परिचय दिया है तथापि निष्कारिधियों ने ससाह को सफल बनाने में कोई काम न उठा रखी है।





# श्रद्धानंद

ब. नरदेव जी १० मं तु. कु. सुपा.

संस्कृत १९१३ के भारत के एक छोटे से गाँव में एक विद्वानि

उद्बोधनी है । यह विद्वानि शक्यार्थनिष्ठ क्षत्रिय धरात्रि में जन्मलेख  
 कथपत्र में ही क्षत्रियोचित तेजस्विता, सर्वप्रियायगता तथा क्षीरिता देवता  
 में, रानी गुरु की, कि जिसमें संसार में कोई विद्वानि ही आत्म रानी हुई  
 होगी।

उस देश-धारी विद्वानि का नाम सुधात्म सुशीराम का । इस  
 का जोश्रम बालक एक भावार्थ बालका । निहालप्रेमी है साधारण ने  
 इनके जीवन के तपस्यामय नतादिवाच्य, शीत भात की म. कर्माती स्वरी  
 में भी- दिन में पत्रिक का जो जल से स्नान करना एक साधारण बात थी  
 नहीं पागुने उषमकरही पित्त की पोर से अंड पड़ी, क्षान्तिरानी आत्म  
 इस अंड के साथ न वह लकी, यह गले में पंगड़ी लगालेगी है, पित्त  
 उस कोह एक गाल उलीक का बनेते; सुशीराम एक मय माता की गोद  
 में द्विप जते है । इस तरह स्वप्न स्वगीत होते २ उबकी उपनयनविधि  
 होली है आ शिक्षा कोकमें प्रवेश बले है । शिक्षा का इतर कोक दि



ही हाव-भाव का इस समय के लिये बहल दिख। यह परिवर्तन अद्वितीय था,  
 काम चलने से यही बहल बरका। हात की ज्योती जैसे २ बंदगी गर्ब, धर्म के  
 धर्म के कर्म लों २ खिलते गये। अटिंला, रमा, न्याय, सत्य, धर्म, चोप्य  
 के अंगुर निवसित छेने लगे। बेगारी के काम लेना उन की आत्मके लकीर  
 अनिकूल था। बिक्रम राम लिये पुकारे से बेवर्षि खुलु लेलेताथा तो यह जो बरी  
 के काशो के बहु दुबे २ भी कर्मि तद से बह देताथा कि इस न हो गेते  
 दुकारे उभारुंग। आखिर दिखला बनिधर ल वहुंचो, पर नू कितीके  
 आत्म बने ही उर रहा। उस घटना को यह प्रमाण हुआ कि  
 गलेते तो बरी पर लाग मयरी फोर नकोलत की कीका कीतयारी  
 बरे लगे। एक की लगे कि जोर पदश। आकार के अद्भुत बदिले  
 कि उन्ही दिने खबाएक एक लकीर धारी अलबु मुती के पत्रि होगये  
 हावप का अन्धकार उस ज्योति से देखने ही न गेते बहो विकीत  
 होगया। उज्वल ज्योति से आखे खुल गयु। अब उदीदित से उस के  
 जीवन का रोपद जोगया गयो। आदित्य बलबरी दिव्यगति इकी  
 मपानन्द के लगेते लका पुद गयी। नरम बहूट होगया। संसारिक  
 वास्तवके के दबाई किले नेलताबूद होगये। जोतल की अगद भव  
 सम्पार्थ उबाए हाथ से आगया। भक्ति, विश्वास को अहूसे उलका  
 अद्भुत पात दिना फोर लका के लिये पास होगया।

अध्यात्मिक वा साधकिक बनें तुम श्याम सुधी, श्याम सुधी, श्याम सुधी  
 का संग सुधी। अब देखी पीछे तो समय था, देखे नामक बल्लेरी पर रखि-  
 गये। चित्तने बलिपत्र नामे का पुष्पिका दिया, पालु इत तुम्ह पुष्पिका से  
 कम्प उगी आली क्या उल्लेख करती। कभी नहीं। कभीकत नामा के पर बंध दिया,  
 फोर गणेश परमात्मा ने वरं कि तुमने तुम्हें उचित गाथा से प्रार्थना की  
 आदि नहीं की। चित्त मह हृदय देखकर को रह गये। नो मनने  
 लोचने लगे कि " तुमने कि परमात्मा दर्शन किया है मगः " भरे। मिस  
 नामक पर तुम्हें का मन भी उगायेन होना है, उस पर उल्लेख रक-  
 रक देखे हाथ करदी। चित्तने, आगे तुम्हें बनें का कम्पिका लाइस नहीं  
 होता, बापने हाथ निश्चल हीजाते हैं। फोर मउकने छोड़ रक मन अक  
 छोड़ते है। बेंचीली चलती नीम श्रेय कालुष्य देने लगी, कतो विसीने  
 सीरी हो। सागा शरीर निश्चल फेर हेल गउकनू होना कतो लकन मर-  
 गक हो।

सब अगुडे छोड़कर अब देखे नामक ने बकाला ने वेद रक्षणा।  
 वेद रक्षणा का ही एक मग चमक उगे, बकाला म जेते का मोर घेरा रहा।  
 उसी मोर घेरे ने उल्लेखे खलानिक क्षेत्र ने परार्पण दिया। रघुनाथ  
 बान्धक दे पधनपि को पाध्या साधने, किन्तु वरं ही भी पाधने उदेख  
 की सिद्धि न देखे निराला होगये, तब उल्लेखे मनो ने उसी दिव्य शक्ति

यमनन्द का एक गम्भीर तब सुगर्भ चिन्ता कि किन बुद्धिचर्च प्रकाश के भारत  
 की शिक्षा खोखली है। यह शब्द हृदय में ऐसे लगे कि बकासत और  
 सब भावों पर हाथ मारकर उठें। पुनः पुनः की पुनः खण्ड हुई। यमनन्द  
 उन जगहों में जो हाथियों की चिन्ता और दोहों की गन्तव्य से गुंज रहे थे  
 एक संकल्प और एक भावना के अन्दर बैठ गये। 'दकीर की मौली  
 भद्रगर्भ प्रतिनिधि गर्भ', माताओं ने अपने जिन्दा के दुकड़े भी उनसे  
 हकले कर दिये। वह जंगल में भ्रमण हो गया। जो जंगल हाथियों  
 कि चिन्ताओं और दोहों की गन्तव्य से गुंज रहे थे। जो जंगल बक की चिन्ता  
 से गुंजते लगे। दकीर ने अपने मन्त्रों, अपनी तब मन तथा सन्तुष्ट  
 इस प्रकार जोड़कर कर दिया। इस त्याग का यह फल हुआ, जिससे पात्र  
 दुनियां देखकर संत हो गईं। 'दोहों' लहरों के कथने। जो लहर-दुन्दुब  
 दुन्दुबों चिन्ता के का खण्ड करके भी पात्र उस दकीर की नीति-धारा  
 ३२ साल के बाद भी गली। उसी पात्र को देख से अपना सिर फेर उठाये  
 'दोहों' लहरों के लगे पात्रसे ३२ साल पूर्व की। 'दोहों' लहरों मटाचिन्ता  
 लय खड़े हुए। और खतम हो गये, किन्तु पुनः पुनः पात्र भी अपने किन्ता  
 की नीति-धारा के साथ जोड़कर मन्त्र उठाये हुए थे। जिन किन्ता  
 पुनः पुनः को एक प्रसन्न मनसुकी जगह की, बुद्धिचर्च की प्रकाश पर  
 लोग हंस दिया करते थे। उन किन्ता ने महात्मा गुण्डीराम की शक्ति की,  
 जिसने दुन्दुबों को मल्ट कर दिया किन्ता। पुनः पात्रने मन्त्र जोड़कर पात्र,  
 और पात्र एक नहीं 'अनेक' पुनः पुनः उससे एक चिन्ता पर चल रहे थे।  
 हकले नाथकने अपने तब मन चत से गेहरी पुनः पुनः की शक्ति, 'दोहों-  
 दोहों' चिन्ता ने मदी और मन्त्रों पर लगेगा। पुनः पुनः दोहों चिन्ता  
 लहरों ने लगे चिन्ता खण्ड पात्र कराना यह उलझी-टी चिन्ता थी।

पुत्रकुल से उपाश्रयता तब पुत्रकुल धर्म की भावनापुस्तक उन्हेने मान-  
 वस्थाक्रम से सम्बन्धित प्रश्न उभरे अन्ते आश्रय दिये। तैनें वर प्रदरनी  
 सभामने वर प्राप्त कर अन्ते विद्यालय अन्ते वर पुत्रकुल हुने, वर  
 वर पकीरी मान धरम वर विद्या जिसकी सीमा अन्ते पुत्रकुल वर पुत्र  
 दिग्गभूति दली सभतद से मत ही मत ने प्रथम वर मुद्वेये। आज तब  
 जिसने ऐसो भावना ने जिन्दगी पुत्रकी, जो पुत्रकुल का प्रथम जो  
 सभोत्रयम आश्रयदारी था, उहे आज अन्ते देश जो धर्म की सेवके लिये  
 निरकारी वर वर पकीरी बना गहे ने उनको देव दिस की अन्त मम उभर  
 होगी। वर आजसे हमरा नेह न. मुदीराम से प्रहानद वर गया।

अरि शेर प्रहानद जिध निरलगायी, अन्त ही सभसे फर  
 निरार्थ दिया। वर अन्त ही लोकिने जो नरीप्रगतो देवमित्त  
 अन्तसे ने अन्ते वर स्वगतम्य वर होके अन्ते वर आधिते वर  
 इतनी सभलता जो निमित्तता से सभपु वर देता वर इतनी जगमर्  
 की दिग्गभ की। जैन जो पुत्र से मान दे सिद्धते वर सत्ताष्ट से सभय  
 इतरो के लिये अन्ते वे पुत्रि वर देता वर पुत्र स्वामीनी ने ही वर  
 सं. १७८५ के अन्त में कोलर एकर से सभय ने देनी के संतान  
 के आगे निर्माता का जो दृश्य देव वर वरि न दिस जो न निरार्थ  
 देगा। संकीने से वरि की वरि ने पुत्र दिया।

शुद्धि सोचन का काम हाथ में लिखा तो उसे नी  
 दिग्गभ तब पुत्र दिया। अन्तरे हाथ से न जो न वर वरि ने पुत्र-  
 दिग्ग वर आश्रय लिये। अन्तरे हाथ वर। अन्तरे मम ने देवा जो धर्म  
 की सेवके निरार्थो ने मम प्रहानद के वरि वर वर वर वर वर।  
 पुत्र वर सभयके, अन्ते निरार्थता वर वर था। इतरो ने वरि मम

ज्यों ही गती की बल लेकर आया कि ज्यों ही दगावन की गति से बसरा चला दिया। पापी के हाथ में बल ही बहाँस्य, रक्त ही खूँ से मिल दिया गया। हजारों लोग कोहरी के बंद दुआ, शहीद खाती पुत्री को बंधे जा रहे। पूरे देश के शिकारों ने खगलाया कि कहां तक का भला होगा, बल, शहीद को दूत नहीं बजाय है। प्रकृतिक सबसे पतित बन गया।

आरे आये। आज कल दिन राते ही नहीं, बतियवानन का है। हमारे कुल पितर का भाग भक्ति कल है। इस पक्षि कल का भाग पक्षि के भाग उलने हमारे इन बसके-क्यों प गला है। जब हमारे कीर पुरख कुल पितर के भक्ति ही सारे देश में प्रगति तथा ही के व्या हम सब कुल भाग मिलन देश में पवित्र वेदिक धर्म की जला नहीं जला सबके १ व्या नहीं पवने विलो के जैसा वेदा बले, पितर के सार गभक्ति उपदेश के पार बले:-

इदरेदात्ततात्तानं नोत्साकप्रबराधयेत्  
 आत्मेव दयालवो बन्धु आत्मेव दिपुरात्मतः।  
 बन्धुदात्तमनसस्य चेतोमेवात्मकजितः॥  
 पितृभक्त्यु शान्तिर्वैतोत्तमैव शान्तिवत् ॥

पापी आत्मा के जो शक्ति संधादन बले, सदाकता गहर मिलेगी, भतः आये। आज से ही उदराली दुर्ष नहीं उमंगों के हाथ हम सब मिलन पद पदाल से प्रगति बले दि प्रगति। हमें बसको तादि हमतिवले आत्मा शहीद पितर के बंधितों प पक्षि सुवे, वेदिक धर्म के सं ने सं बल पवने देश, जति तथा धर्म प पक्षिगत होने के जिये व्या बल का इस संहार की सगारपती के कूद पते तथा उदरे

इसमें वृत्त शक्ति का संघर्ष है। पात्र के दिन अतिथि का है नववध-  
का नहीं। इसलिये "तन्मिमतः शिवसदस्यमलु" की उपासना  
करते हुये फल 'उत्तिष्ठत जाग्रत प्राच्यवशात्त्रिकोऽथ' के फलेश  
का प्राप्त करते हुये, उमु अज्ञान से प्राचीनकारी शक्ति के दि  
व्य हमें जीवन की जननी जन्म भूमि तथा पुण्य से भी धार्य धर्म  
के लिये जीवन सौंदास्य करने का वाक्ये।

कुलपिता की पालना हमें नर 2 पुकार कर  
बंद रखी है दि पुण्य। अमर कसो देश फल धर्म पर कुर्बानि  
होना फल। धर्म गुरु की जलती नबीता फल से शूद्र को, दूसरे के  
दुखों से धरते को खटा करे। फल धरते सनातन फल गुरु  
के अडे को नीचे न फुदते से, तभी गुरुणा इत कुल से रहना लार्थिक  
होगा। उमु कुल पुण्ये नाक्ये।

सोम शम्





संवत् १९१३ काल्पुन कृष्ण त्रयोदशी के दिन पर-  
मात्मा ने भारत को एक दिव्य सितारा दिया था जो आज  
के ६ वर्ष हुए अस्त होगया। पर उस का नश्वर शरीर ही  
अस्त होगया है; उस की <sup>वह</sup> दिव्य चमक तो अभी तक भारत के नर-  
नारियों में भरी हुई है। क्या कारण है कि उस की चमक अब  
तक भी है और अन्त तक रहेगी। मेरे मत में उस के उतरे इच्छि  
उठती है कि वह क्यों आज भी चमकता है। हां पर केवल ईश्वर  
से काम न चलेगा। वह क्यों उदासीन हुआ और उसने किस  
तरह दुनिया को उदासीन किया, इस पर आज हम सब आई कि  
चार करने को स्वप्न हुए हैं। और उस के जीवन से <sup>उस</sup> शिक्षा लेकर  
हम भी उदासीन होने का प्रयत्न करेंगे।

हमारा कुल सितारा प्राचीन संस्कृति का बड़ा उपा-  
सक था। देश जब तुसलमानों के अत्याचारों से दन चुका

था, चारों ओर से अलग रूपी अन्धकार का गमा था, साधारण जनता स्व-संस्कृति की छल छुड़ी थी, गमी युद्धों से प्रासुभाप से हमारे गौरव-पुरुषों का आगमन हुआ। उन्होंने हमारे देश को शिक्षित बनाता चाहा पर वह व्यापार शिक्षा थी देश को डुबाने वाली मदिरा थी, जिस की पीकर हमारे आचार विचार हमारी सभ्यता हमारी संस्कृति हमारा शौर्य आदि सब नष्ट हो गया। यहां तक कि हम अपने को उनके साम्राज्य में रहने में अभिमान मानने लगे। हम अंग्रेजी बोलने में अपने को सम्यक बताते लगे। इस प्रकार वे दीन तथा अकर्मण्यता के विचारों को धक्का पहुंचाने वाली एक सौम्य तथा भयंकर शक्ति भारत में अवतरती, जिस से वे पुरुषार्थ से हंस दूर या समीप होते हुने भी आई २ तथा वृष्ण-सुदामा का आदर्श बताने वाले प्राचीन सभ्यता का महत्त्व बहिस्तारते जाते हुने। वह भव्य-वृद्धि हमारे शहीद कुल पितर 'वीर सम्भासी' श्रुतानन्द की थी। उसने जगह २ गुरुकुल खोले जिस के द्वारा उसने प्राचीन संस्कृति को पुनः जगृत कर दिया। ब्रह्मविद्या तथा आत्म-व्यवस्था को स्थापित किया। अंच नीच के मेदमान तुल्यो।

हिन्दी को सब से उच्च-स्थान (राष्ट्रभाषा रूपमें) देकर श्री विनायक शास्त्री आदिज्यों को चक्रित किया और फिर से इस पुण्य-भूमि को नैऋत-गान से पवित्र कर दिया।

यही नहीं साथ २ हमारे अध्येय-अध्यातन्त्र ने और भी कितने काम कर दिरवाये। चणों ओर से मुल्ला-मोलनी तथा पादरी, हिन्दुओं को ग्रस रहे थे। उनके विरुद्ध उसने शाब्दिक तथा ~~अ~~ अदुतोच्चार का दरवाजा खोल दिया और सैन्तों हिन्दुओं को विधर्मी होने से बचाया। और आखिर जब उस सैप्यार दिये हुने वृक्ष के लिये रक्त रूपी पानी की आवश्यकता हुई तब उस वीर सन्तारी ने उसे अपने लोहू से सींचा और उस पर अपने पारों को मोदवार कर दिया।

हमारे मुल दिताने परोपकार को अपना कर्तव्य ही बना लिया था। वह तो यही समझता था कि 'वसुधैव कुटुम्बकम्' † सिक है। जहां पर बुद्ध आयानी आती वहां पर सहायता के लिये वह दण्डधारी शूर्ति प्रथम रहती थी। अमृतसर की कांग्रेस में वह शूर्ति प्रथम थी। जालिमोंको

नाग के पीड़ितों की प्रथम सहायता करने वाला वही सन्नासी था। वह खेबरों का नेता होकर चला। मुसलमानों का पक्ष-प्रदर्शन बना। हिन्दु-मुस्लिम ऐक्य का अग्रणी था। और हिन्दु तथा आर्य भाइयों का तो प्राण ही था। कई आर्य भाई तथा सनातनी भाइयों ने उस के काम में विघ्न डाला। विधार्मियों ने मृत्यु की धमकीयां दी। पर वह किसी से न डरा, डर तो उसे किसी का था ही नहीं। वह प्यार से तो दिल्ली के घंटाघर के सामने खेल में विजय पाही-मुक था। विजय पाने क्यों नहीं, उसने 'नेनें दिन्दान्ते शरत्राणि' तथा 'न जायते म्रियते वा कदाचित्' के पाठ को तो अपने जीवन में ही उतारा था। इन सब गुणों को देखकर हिलोपदेश का एक श्लोक उपादा आता है -:

विपादि धैर्यं मयाभ्युदये क्षमः,

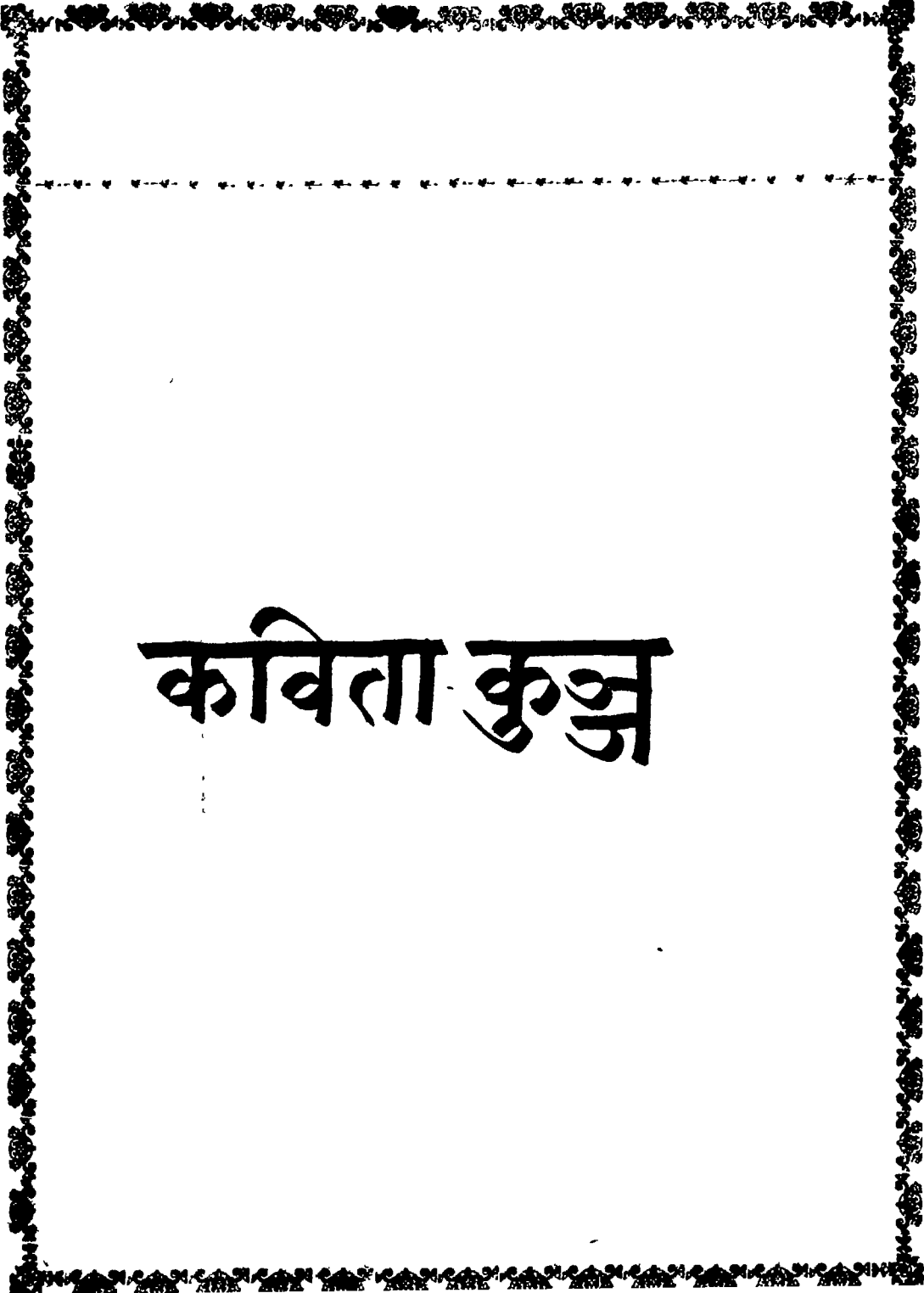
सदासि वाक् पटला युधि विभ्रमः।

मशामसे चाग्ने रुचि वसितं भुक्तो,

उदृति सिद्ध सिद्धं हि महात्मनाम्॥

सच मुच मे सब गुण उस कुलायिता ने उदृति से ही प्राप्त किये थे। वह गुणों का भण्डार था। सचमुच ही वह भारत का दिव्य सितारा था।

वि वि ष.

A decorative border with a repeating floral pattern surrounds the text. The border is composed of small, dark, stylized floral motifs arranged in a continuous line.

# कविता कुञ्ज

# दुनिया

दुख सुख का क्या मेल बना है  
यह जीवन क्या खेल बना है ?

जन्म मरण क्या है दो पाले—

जो भी पार करे जय पाले। —

चाह भरी मस्तानी ताने

आह भरे एकाकी गाने

दाह भरे कुद्व कीर तराने

यह सब कुछ क्या है क्या जाने ? —

करुण हास्य भीमत्स भयानक

प्रतिफल नव नव दृश्य अचानक

क्या है कलरव, क्या नीरवता ?

क्या विदोम विषमता समता ? —

किसका रोना, किसका गाना ?

क्या भूतन, क्या भला पुराना—

अपना क्या है ? क्या बेगाना —

किसका आना किसका जाना ? —

चिन्तन का है दिया बुझा सा

है रहस्य यह बे सुलभ सा

यल विवश हो, ज्यों ज्यों करते

जाता अधिक उलभ सा। —

x x x-3-x x x

किसी हृदय को कुछ प्रियकर है

वही दूसरे को प्रतिकूल।

अलबेली ठगिनी है नम में

कोई अहित वही अनुकूल। —

वही कुतूहल जो खिल उठती है

देख सोम की एक भलकू,

मुरझा जाती, देख दिवाकर

की आभा को बूंद पलक। —

पंकज विषम सरोवर नसी

साथी भयकारी जलचर।

शिला देखकर जिसे सौम्यभी-

बध्न गुपा होता छिपकट। —

उल्लूकमय पर रीभा रहता

रवि और सुभरकर अनमोल,

अनकहें हे अलिङ्गन कर

कैव है उसका दिल खोल

सबके अपने कुछ अनुभव हैं।

कहो पुराने या अभिनव हैं।

उन ही से विस्लेषण जग का

जीवन में करते मानव हैं। —

दुख ही ने सुख की परिणति है

स्मरण में ही सच्ची गति है।

कलपाने में ही कलपाना,

छिपा हुआ रोने में गाना। —

कड़वी घूँटे मधु बनती है,

लौह शृङ्खला छुदु बनती है।

स्वप्नों की बातें भी बहुधा

सत्य निकल जाती है सहसा। —

अमित न्यथा में खुशी भरी सी

कंसकों में आशा बिखरी सी।

विष के प्याले में अमृत है —

भरा हुआ अप्रिय में हित है। —

दूर दूर से अपना कर मन,

कदु अनुभव पाता है सुन्दर। —

छुदु गुलाब का फूल कैदली

भाड़ी में रहता जीवन भर। —

दोनों के मुख पर सहसा ही

लज्जा की हलकी लकी —

आती देख उभा मुसकाली

दुनिया होती मतवाली। —

विविध दुख दुनिया के प्रतिफल

देख कर लेकर रख —

फिर भी एक पहली सी है

यह सतार है या नीरस

## फूल

क्या कहूँ फूल! तू क्या है ?  
इक रूपेँ रुचिरताका है। १.

सुन्दरता जग में अती  
बन रूप रंग की पुत्ती।  
पत्तों के हलके गहने

सिर से पौवों तक पहने। २

यह रंग अबूता तेरा,  
ओ फिर कौटों में उँरा।  
हे. पायन्दान बिच्छाई -

पग मोह दृष्टि शरमाई। ३  
क्या रोया है बाणों की  
कर विजय वीरता लेटी।

हे प्रताप इन पत्तों में  
या भीष्म थिर अपनी में। ४.

- या योगी पराकुटी में

- हे मस्त फटी कमली में

- हे तेज खेलता हविपर

- या लाल बाल रबि तम हर। ५.

क हे या वनसाला अलबेली,

बगिया में खड़ी अकेली -

पत्तों से भौंक रही है।

क्या पाप नाशिनी श्री है। ६

हे आभा किसी सती की

बन जैहर युग युग चमकी

क्या कहूँ फूल! तू क्या है ?

बिन रंगी में इबा है। ७.

में फिर रंगत को शूँ !

फग पग पर मुग्ध हुआई

हरमीर मुझे चीनी है

रुमि तज्जी बौरता नही। ८.

(८)

में भुनगा प्रेम पुञ्जरी  
बलागण अशख बिगारी।  
हे फूल! मुझे तू क्या क्या।  
साधन प्रिम की पूजा का।

(१०)

तू भरा रूप का प्याल,  
में प्रेम भगमतवाला  
तू पीकर भूम रहा है

तू मा तमूपात तू तू।



..... ???

क्या जाने किस पूर्वजन्मके, युग युग के सन्धित उद्गार (सस्कार)  
जाग उठे ये आज हृदयमें, मचा रहे हैं हाहाकार।

x x x x x x x

मध्वनिशा के अन्धकारमें किसी निबिड़ बट तरुके बीच,  
- कहीं स्तब्धता भङ्ग न होजाये भरसक सन्नाटा खींच —  
दम साथे कर रही चौकसी फैली सब शार्वार हैं,  
सैते शुक-शक्क शिशुओं की मानो प्यारी धाये हो।  
इतने मे अज्ञातभाव से 'खड़ खड़' वहाँ हो उठे शोर  
और उचक कर बिड़ियो के कातर बच्चे बाहर की ओर—  
ज्यों देखें, भट महाकाल की छाया ही कोई तसनीर,  
दीखे उनपर हाथ डालती, हो जायें वे अवश अधीर।—

x x x x x x x x

उसी भीति कुछ आज हृदय पर छाया यह सहसा अबसद।  
करुणा का कम्पन नस नस में, बेहेशी, भीष्मा उन्नाद ॥

x x x x x x x x

एक वार तो नी करता है मुक्तकण्ठ में रो दूँ आज,  
जगती को चम्कल करदूँ पर अपने की में खो दूँ आज।  
कारण ? कारण नहीं जानता, क्यों ऐसी उठती है नह,  
क्यों बैठा ? यों ही बस, भरने में लगता हूँ आह।  
इतना ही बस मुझे पता है, है पीड़ा कुछ है कम्पन,  
कही अकेलापन या अर्क, आजावे कुछ हलकापन।  
डरता हूँ पर जबतक ईदू में कोई निर्जन एकान्त  
इसी बीच ही नहीं हृदय की कसक न होजाये कुश्शान्त।  
रोक बामसे क्या होगा ? क्यों व्यग्र होरही हो पलको ?  
किस दुविधा में पड़े आँसुओं रुके वहाँ ? बलको, बलको।  
बरनस बरस पडो स्वागत है, हे मेरे हिय के उद्गार  
फूट पड़ो उमड़े मेघों से फूटे ज्यों जल की नौवार।

x x x x x x x

क्या जाने ..... ???

परिवर्तन

सुख दुःख का भाग्य विधाता-  
 है सरा भर का परिवर्तन ।  
 सखे! एक इशारे पर उसके  
 बन लघु करता जगनर्तन ।

x x x x x

जब लम्बी जीवन सरिताका-  
 वेग रुका सा जाता है,  
 बन सेत उस पल परिवर्तन ही  
 आगे का दुलकाता है ।

सम्भित करता शक्ति स्नेत की-  
 पुष्पमयी वह धारा है,  
 कितनी ही को परिवर्तन ने  
 लाखों बार उबारा है ।

x x x x x

मेरे सुन्दर जीवन का वह-  
 एक बना चुव तारा है;  
 हे परिवर्तन । कहो कौनसा  
 तुझे समर्पण प्यारा है ॥

माँ —

देखता हूँ स्वप्न स्क,  
स्नेहमयी बाँह मेरी—

माँ की मुझे छाती तक  
रखी चेलिये जाती हैं।

झलक रहा है प्यार,

अमृत सा प्यालियो में,

स्नेह बरसाती आँखें—

आज मिची जाती हैं।

देखना न स्वप्न भङ्ग

लेवे यह मातु! मेरा,

नामना अकेली बस

यही रही जाती है।

जोमल करों से तुम

मेरी सहलाना देह,

तेरी पुण्य गोद में जो—

आज लेटी जाती है।

श्री 'सुकुमार' आयुर्वेदालय

## समुद्र

यह अनन्त निस्तल अधीरता,  
 व्याकुलता का पारावार !!  
 क्या है? क्यों है? दीड़ा जाता,  
 कौन? किससिये? किसके द्वार?  
 X X X X X X X X X

अंचीनीची लहरें उठती  
 पटक रही सिर, किसकी खोज?  
 भाग उगलतीं, दौत पीसतीं,  
 क्या यह मतवालो की मौज? X  
 भंभा कबकी मार रही पर  
 फटक रहा संतप्त हृदय।  
 व्योम व्यापिनी पीड़ोंतुभको -  
 आ आमेगा कौन सदय? X  
 कौतुक है, नाटक है, क्या है?  
 सूत्रधार सीला का कौन?  
 हा! असीम अविरत कोलाहल।  
 साध लिया क्यों तूने मौन? X  
 यही समस्या मन की मेरे,  
 यही हृदय का मेरे सार।  
 अन्तहीन निस्तल अधीरता!  
 व्याकुलता का पारावार। X.

श्री प्रो. चम्पानि जी एम. .

गाओ गाओ अपनी तान।  
 प्यासा अपनी प्यास बुझाता  
 दे दे करके कान।— गा.  
 नयन चषक अश्रु बरसाता  
 भर भर के यह दान।  
 बीड़ा-भार भरे औसू में  
 भिन्नमिल हो जाना भगवान्।  
 गायक/भूल क्षमा कर देना,  
 मुझको जान अज्ञान।—  
 हृदय धधकती आग जली का  
 कर दो तुम अवसान।—  
 सरल सहोद्रे बाल-हृदय में,  
 रमकर हे मृदु बाल सखे!—  
 मीठी नीरव स्वर लहरी का,  
 तन दे तान वितान।—  
 आकर फिर ही भाग चले तुम,  
 खूब प्रेम की काट चले तुम।  
 ना छोड़ूंगा तुम्हारा पाकर  
 कितने छलिया हो भगवान्।  
 x x x x x x x  
 पकड़ पकड़  
 रह जाता हूँ मैं।  
 तुम्हारा सखा  
 न पाता हूँ मैं।

रुकाकी के प्रति

मनसहपी थाल सजाकर  
 प्रेम अश्रु कल कल वलाकर  
 दिया तुझारा तुलें चढ़ाता,  
 भोम करो भगवान्।—  
 मह प्रलय की काहनिशामे,  
 आग बलकती पूर्व दिशामें  
 दीवाना बनकर आजाना  
 करने को मधु पान।—  
 तारागण की उजियाली में  
 कृष्णघनो की अंधियाली में,  
 दूँ या मैंने जाकर  
 नहीं मिला तुम्हारा उपमान।—  
 हृदय सुमन का विनिमय करले  
 तू मैं या मैं तू हो जावे,  
 एक हृदय होकर फिर गावें—  
 गायक मङ्गल गान।—  
 मैं तुम में या तुम मुझ में हो,  
 ससे। बताओ तुम किसमें हो?  
 इसमें उस में सब में हूँ मैं—  
 बाहर भीतर एक समान।  
 x x x x x x x  
 सखामिलन की  
 डोरी कसते—  
 हो गए  
 अन्तर्धान!!

श्री आनन्द स्वामी जी  
 'गुणवत्'

क्षमादान

मित्र!

(१)

प्रथम - क्षमा।

द्वितीय -

कहा क्या ? क्षमा याचना  
यह कैसा अंधकार।  
मैं तो सदा तुझारा ही हूँ  
पर तुम करते अत्याचार।  
आखिर कब तक सहे चलूँगा  
रो रो कर दुत्कार। —

प्रथम - आज क्षमा दो मुझे मित्र तुम, प्रथम - टुक टुक दिला हुआ हमारा  
और बना लो हिय का हार।— चौटे खा दो नार।—

(३)

(२.)

द्वितीय - आह !

नहीं सह सका मेरा दिला तो  
रोकर उठा पुकार।  
तुम मेरे ही सदा रहे हो  
पर यह कत्र प्रहार।  
करके सुख तुने सोचा था  
प्रेम भाव को मार। —

द्वितीय → इन्द्राहै अब तुझे शगलुं  
हियसे अपने हे प्रियमित्र !  
मुझे सर्वदा सावधान कर  
हिय भरना भाव पवित्र,  
यह ही अदा तुमसे अबतक  
रखता आया हूँ मैं मित्र !  
आज रिक्चगमा अहा ! तुझारा  
हियमें प्रेमभावमय मित्र ।

११ विद्यानिधि जी आयुर्वेदालांकार

आकस्मिक हंसी

मेरी हंसी फूट पड़ी।

फूट पड़ी फिर फलक पड़ी इन अँखियन के द्वारे। मेरी-

जोर लगावा बहुतेरा, समझाया मनवाया भी,  
लोभ दिखाया तरह २ का मुलसाया हर्बाया भी,  
जुँ तक रंग न पाई कानों खपरङ्ग दिखायाया भी -  
सीस दिया अखिर चरणों में हाथ जोड़ तरसाया भी।

इतनी निडुर भई। मेरी  
x x x x

लोग खड़े हैं सुनलेंगे तो घबराएंगे क्या समझेंगे,  
पागल तो ऐसे ही लखों फिरते हैं सब कह देंगे।  
क्या जगता है कहेंगे ये निधङ्क होके सारे  
पी मदिरा के प्याले काले कभी नहीं ये हारे।

रुक जा देर भई। मेरी ---  
x x x x x

क्या जानें ये भोले भाले जमक दमक में रहने वाले  
नयनों की इस तुच्छ बूटा पर होने वाले मतवाले।  
क्या होता है सूर्यदिव्य में पूर्वदिशा जब होती लाल  
और कुछ नहीं केवल- बिधि ने खींच लिया है अपना पाल।  
सुन लेंगे अब कई। मेरी ..

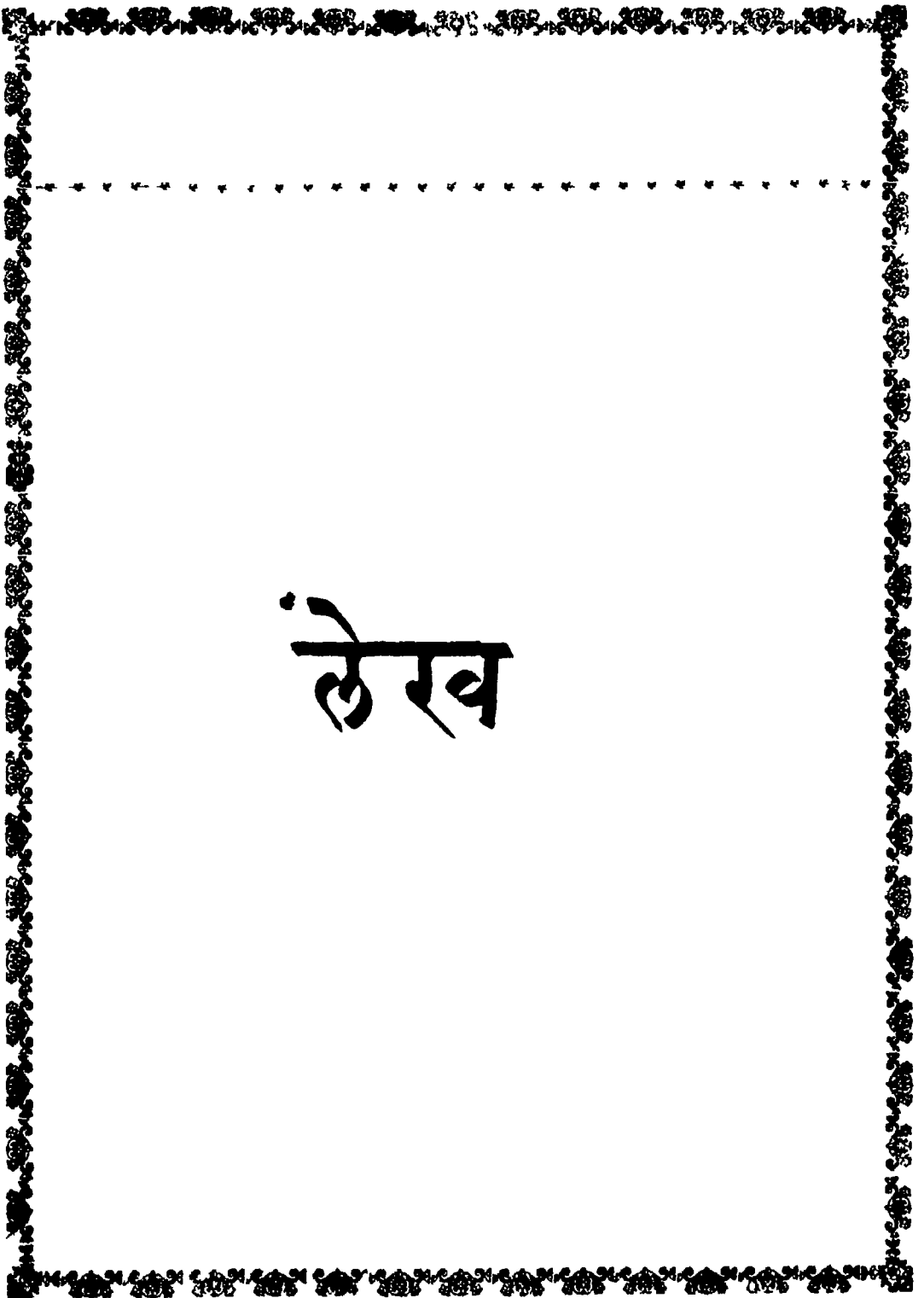
श्री सु. शोमदेव जी 'सुखदा'

## पथिक

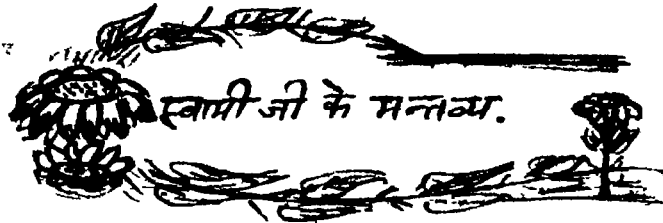
पथिक चलो घर भूलो अपना सारे सकट को भूलो ।  
 अभी यहाँ फिर अभी वहाँ तुम शूलो पर पग धर भूलो ।  
 चले चलो परदेसी बनवन उपवन यावनवास करो,  
 सारा ही बन बने तुझारा इन मे ही उल्लास करो ।  
 सुबह सूर्य के आलिंगन को, नींद तुझारी जा भागे ।  
 पीछे पीठ फेर मत देखो, चले चलो आगे आगे ।  
 धूप तेज हो जाये तेरा तेज उसे नीचा देखे ।  
 आगे तेरे विमल मार्ग हो, बाधक दल पीछा देखे ।  
 तप्त भूमि पर जब जब तेरे चरणपड़े गिर गिर जायें,  
 तब तब स्वेदबिन्दु भर जाये तेरे चरण कमल हवै ।  
 वृक्ष तुझारी सेना को ही, मार्ग तुझारे खडे हुट ।  
 या बाधा का रूप बदल करे तेरे पैरो पर पडे हुट ।  
 शूल फूल हो, महादेव सर्वत्र गीष्मसताप हरे ।  
 मरुस्थली मे जटाजूट से गंगा की नौछार करे ।  
 मित्र तुझारे चिरपरिचित मे वृक्ष मनीहर वान भरे ।  
 फूलो की चाली भरस्तह, तुम्हे भेट सम्मान करे ।

॥ ॐ ॥ अलदल ॥



A decorative border with a repeating floral pattern surrounds the page. A horizontal dashed line is positioned near the top of the page.

लेख



(१) भोजन का समय दो बार ही ठीक है। प्रातःकाल ४-१० के बीच में सायंकाल ६-८ बजे के बीच में।

(२) भोजन सदा सुपचले बहुत मसालों वाला न हो। परस भोजन ही परस विकृत भोजन न हो।

(३) भोजन अभाव के ऋतु के और देश के अनुकूल होना चाहिये।

(४) भोजन के पदार्थ जहाँ तक हो सके कम क्रियाकलाप में से चुनने।

(५) आसन व्यवस्था और वातावरण प्रातःसायं नियमपूर्वक बनाने चाहिये।

(६) शुद्ध वायु में प्रातःसायं एक ही घण्टा भ्रमण स्वास्थ्य के लिए का काम से भी अधिक हितकर होता है।

(७) भोजन के पश्चात् खुली चरती वायु में टहलना हितकर है।

(८) भोजन इतना बढ़ाना चाहिये कि पेट में जोश उत्पन्न न हो।

(९) अन्न की साफ़कता के कारण यदि भोजन के पश्चात् कुछ अलस्य उत्पन्न हो तो १५-२० मिनट लेटकर आरामधान हो जाना ठीक है।

(१०) रात्रिको ४ बजे से ५ बजे तक निद्र लेना पक्की बात है।

(११) सर्जि को सोने की उष्णता पूर्व भोजन पर चुबका चरियो।

(१२) भोजन के पश्चात् और सोने से पूर्व ब्रूग-स्नान करना चाहिये।

(१३) <sup>शक्ति</sup> ~~समय~~काल में स्नान के पश्चात् आसन व आवागम और शीघ्र में स्नान से पूर्व करना अधिक अच्छा है। —

(१४) स्नान करते समय पानी से भरे रुई के कपड़े से शिराया से नख तक शरीर को रग लेना चाहिये।

(१५) स्नान धारण से पूर्व शरीर को अच्छी तरह सुना लो।

(१६) स्नान के पश्चात् भी शरीर को ऊपर से नीचे अच्छी तरह मसो।

(१७) प्रातःकाल में स्नान के समय अर्धव्ययिष्ठन के साथ शरीर को और मानसिक पूर्ण विश्रान का अनुभव करो।

(१८) भोजन निश्चित होकर करते व्यथता में नहीं।

(१९) भोजन के पश्चात् भी कम से कम ३ घण्टे तक आराम करना चाहिये। एक घण्टे के बाद साधारण व्यायाम करना आवश्यकता है।

(२०) भोजन के पश्चात् प्रविणता पूर्वक दिहा बदलाव कुराने काकाल को तैरना वा यैधन में खेल कर करना अच्छा है।

(२१) कसम सर्बिस खुले जिन में दुग्ध न आती हो ऐसे परित्रे चाहिये।

(२२) २५ घण्टे के पश्चात् पहिना हुआ कपडा पानी में धरा कर धूप और हवा में सुना कर पहिना चाहिये।

(१३) अपने बिल्ला से अपने प्रतिदिन रूप में सुखाने उचित है। रूप में वर से रूप छत्रे से पहिने ही उन्हें लपेट कर बिल्ला बनाकर रख देना चाहिये।

(२४) जिम को स्वप्न दोष होने की सम्भावना हो उनको तो अवश्य ही पशु अन्नो को भी सधरतनि में उबकर तयुशुण काके फिर शोण चाहिये।

(२५) शत को नींद खुलाने व लीटे रहना हीन नहीं। कुछ टल कर फिर बौद्ध-कर गायत्री मन्त्र का जप मन में ही गिनते हुए आरंभ करके करते। १०० आकृति से पहिने ही नींद आजावेगी।

(२६) कब्ज रहता हो तो फलामाल उन्ने के पश्चात् एक गिलास उबला हुआ गर्म पानी पीकर रूप से रूप एक मील दूरने चले जाओ। शौच साफ हो जावेगा।

(२७) रूप का रक्षण रखते हुए शक्ति को ब्रह्म-पार्श्व से सोना अच्छा है। इससे भोजन हीन जीर्ण होता है। शतको यही से कुछ बनाव रहता है।

(२८) सोने के पश्चात् कुटी से उने, सुप्ती से नहीं, सेसन हो लने से सनावेगी कि तुम्हारे शरीर पर तुम्हारा अधिकार नहीं है। भोजन व्यायाम और निद्रा के निरमो को हीन काके अधिकार प्राप्त करो।

(२९) किसी बात को रिकजी नहीं। इससे निरलता सन्धित होती है।

(३०) किसी बात का उत्तर चाहे आताहो या न आताहो, यदि उह का उत्तर नदेने से तुम्हारी कुछ शक्ति नहीं है तो उत्तर नरहो। ऐसा करने से निरमो से बन जावेगी। और शक्ति का अवकाश नहीं होगा।

(३१) भोजन से पूर्व भी स्नान कर लेना चाहिए। स्नान न किया जा सके  
तुब हू खुली बापुमें टटलकर और कुछ हाथ पाँव धोकर भोजन करना चाहिए।

(३२) शक्ति को आने से पहिले ऋतु के अनुसार ठण्डे ठा अन्न पानी से  
सुख हाथ पाँव धोकर शुद्ध स्तूप के साथ सो जाना चाहिए।

(३३) स्नान से पूर्व सूर्योदय से खुली बापु में शरीर को मराना  
चाहिये।

(३४) मांस तम्बाकू शराब भङ्ग गांजा चरस अफीम को भोजन  
अधिक सेवन करना अनुचित है।

(३५) भोजन पात्र इतने स्वच्छ होत्रे चाहिए कि उनमें अन्न की  
गन्ध भी न आती हो।

(३६) पुस्तक के पत्र पढ़ते समय घूम लगाकर न पलटने चाहिए।

(३७) खानी बैठे मुँह में अनु ली लौकनी या तिनना आदि कुछ  
अले रावना अनुचित है।

(३८) बिस्तर शुद्धता न होना चाहिए। स्वयं शीत जिनें ही उन्हें  
इस ओर विशेष ध्यान रखना चाहिए।

(३९) अवश्यकता को छोड़ कर केवल मनोरंजनाधी जादू बूढ़ी  
कापी काय काको लैमोनेट अरि पदार्थों का सेवन छोड़ देना चाहिए।

(४०) सुगन्धि के लिये इतर उरि तीव्र सुगन्धियों का सेवन न  
करें और २ कर सुंघते रहना हीन नहीं।



प्रथम प्रश्ननामिका. ---

मुझ ने मुझ से जप के विषय में --- --- ---  
 तुम्हें

कोई विचार भी जब अपने पाठ को स्मरण करता है तब उसे बारबार दोहराना है। कोई कार्यकर्ता जब किसी नवीन कार्य में प्रवृत्त होता है तब कार्य करने के समुदाय को बारबार मन में दोहराना है। बार बार दोहराने से कार्य करने के लिये मन में दृढ़ता आ जाती है। कार्य करने से पहले मन में निश्चयान हीनत्व, संकल्प को बार बार दोहराने से, निकल जाती है। संसार में प्रत्येक कर्म किसी न किसी रूप में चरि पर अनलम्बित है। चरि का जैसा स्वरूप होता है वैसा कर्म का स्वरूप होता है। चरि में जितना बल होता है कर्म उतना ही बड़ा होता है। चरि में विद्वृति आने से कर्म में विद्वृति आ जाती है। विशेष फल की प्राप्ति के लिये विशेष कर्म की आवश्यकता है। किसी भी कर्म से किसी भी फल की प्राप्ति

हो जाने यह सम्भव नहीं है। कर्म में विवृति का प्रतिबन्ध करने के लिये कृत्ति में विवृति का प्रतिबन्ध करना अनशक होगा है। कृत्ति में विवृति का प्रतिबन्ध हो जाने अर्थात् कृत्ति स्थिर और सतत नहीं रहे, इस के लिये उपयुक्त साधन का अवलम्बन करना आवश्यक होगा है। यह उपयुक्त साधन जप है। फलविनाशे समय फलवाले एक एक स्थान को लकड़ी से छूब कीसते हैं। लगातार जोर मारते से वह स्थान पक्का हो जाता है। स्थान पक्का हो जाने के अनन्तर फिर जोर मारने की आवश्यकता नहीं पड़ती। इसी प्रकार चित्त की धूम्र को पक्का करने के लिये जप के द्वारा उस पर निरन्तर जोर लगाई जाती है। बाध्य संज्ञा में तो जोर लगाने वाला और जिह्व पर जोर लगाई जाए दोनों दृष्टक २ हैं परन्तु आत्मिक संसार में ये दोनों एक हैं। चित्त पर जोर लगती है और चित्त ही लगाता है। चित्त के भीतर कृत्ति की आवृत्ति होती है और यह आवृत्ति चित्त में ही होती है। चित्त का स्वरूप-विशेष ही कृत्ति है अतः चित्त से दृष्टक नहीं है। चित्त में कृत्ति का आवृत्ति ही जप का स्वरूप है।

चित्त-दृष्टि

चित्तवृत्ति के साथ शब्द का चिन्तन सम्बन्ध है। निश्चित प्रकार का शब्द निश्चित प्रकार की चिन्तवृत्ति को उत्पन्न करता है। जो शब्द जिस प्रकार की चिन्तवृत्ति को उत्पन्न करता है, उस शब्द के निरन्तर उच्चारण करने से वह चिन्त स्थिर हो जाती है। चिन्त की स्थिरता का नाम ही चिन्त की स्थिरता है। शब्दानुसारी चिन्तवृत्ति होने का कारण यह है कि शब्द-परक अक्षरों के उच्चारण में स्थान, प्रयत्न और काल का भेद पड़ता है। अक्षरों-उच्चारण में स्थान, प्रयत्न और काल का भेद प्राण की गति में भेद उत्पन्न है। प्राण की गति में भेद का कारण प्राणगत बल का भेद कारण है। अक्षरों के स्थान, प्रयत्न और काल के भेद से प्राण के बल में भेद पड़ जाता है। प्राण के बल में भेद पड़ने से चिन्तवृत्ति बदल जाती है। प्राण-रूप और गम्भीर होती चिन्तवृत्ति में चञ्चलता मन्द पड़ जाती है। चञ्चलता को शान्त करके देहिमे प्रोक्त को बलवान् तथा गम्भीर करता आबश्मक है। वर्णमाला में अनेक अक्षर अल्पप्राण हैं और अनेक महाप्राण हैं। अल्पप्राण अक्षर प्रोक्त को गम्भीर तथा बलवान् नहीं बनाते, महा-



प्राण अक्षर प्राण को गम्भीर और बलवान् बनाते हैं। इस  
 लिये महाप्राण अक्षर चित्तवृत्ति को शान्त करते हैं। अक्षर  
 का उच्चारण करते हुए यत्न लगाऊँ-चाहिँये कि किस किस  
 स्थान पर किलने २ प्रथम से किस २ प्रकार का बल प्राण  
 में प्रकट होता है। यदि प्रथम किसी शब्द को स्थूल वा सूक्ष्म  
 उच्चारण करते हुए यत्न लगाये कि प्राण में किस २ स्थान  
 में बल किस २ स्थान में उत्पन्न होता है और उस की उत्प-  
 न्ति कम क्या है तो फिर उस २ स्थान में प्राण के साथ मन  
 को उसी २ से कम से टिकाने से अर्थात् केवल ध्यान  
 करने से भी अक्षरोच्चारण के बिना ही जप हो जाता है  
 और इस जप से चित्तवृत्ति में कही प्रान् <sup>उत्पन्न</sup> होता है जो  
 जो शब्द के आधार पर जप करते से होता है। अक्षरोच्चा-  
 रण के बिना ध्यानमूलक जप से अधिक प्रान् होता है  
 और अन्य प्रकार से कम होता है। अक्षर के बिना जप  
 करने में चित्तवृत्ति का अपरतिमात्र जप होता है। जैसी  
 जैसी चित्तवृत्ति करनी होती है वैसे २ भावों की आच-  
 रित करते जाते हैं। शब्द ध्यान के साथ शब्द के साथ को  
 भी जागृत करते जाते तो शब्दिक जप की अवस्था अ-  
 थिक्क लाभ होता है।

गायत्री मन्त्र के अक्षर अक्षर महत्त्व है।  
 उन के उच्चारण से मा केवल उन की ध्वनि से प्राण  
 में बल आकर चित्त चित्ति विशेष शान्त होती है। अ-  
 न्य मन्त्र जो इसी प्रकार भासी अक्षर वाले हैं उन से भी  
 बड़ी लाभ उठाया जा सकता है जो गायत्री मन्त्र से। विशेष  
 व चित्त चित्ति के लिये विशेष मन्त्र हैं, सब चित्तिका  
 के लिए सब मन्त्र नहीं हो सकते, क्योंकि मन्त्रों में अक्षर-  
 योजना निविध प्रकार की है।

केवल मेष-गर्जना में स्तिग्ध, गम्भीर  
 निर्धोष के स्तिग्ध-गर्जना को स्मरण कर के बार  
 बार मन में आचरति करते से प्राण में भी स्तिग्धता  
 और गम्भीरता आती है और इसी के साथ चित्त चित्ति  
 उस मानसिक निर्धोष में लीन हो कर शान्त हो जाती है।  
 और म् का जप केवल मेष के स्तिग्ध, गम्भीर निर्धोष  
 की अनुकृति में ही किया जाता है, तभी और म् का  
 जप विशेष फल बाला होता है अन्यथा नहीं।

“हंस हंस इति मन्त्रो ऽथ जीवो जयति सर्वदा।”

ऐसा कहा है। “हृदयेन बहिर्भूति सुकारात्प्रतिशोभतः।”

इस प्रकार मनुष्य हम् की आकाश में ध्वंस बाहर में बना  
 है और स की आकाश में ध्वंस अन्दर कर लेता है। ध्वंस  
 प्रश्नस में बल देने से इस प्रकार के आकाशों की बल्यता  
 की गई है, यद्यपि उस ध्वंस-प्रश्नस पर से बल हटा  
 लिया जाय तो ध्वंस-प्रश्नस में कोमलता आ जाती  
 है स + हम् = सोहम् = स् + ओम्ह् उम् = ओम् । ध्वंस-  
 प्रश्नस की कोमलता में ओम् का जप रह जाता है। इस  
 लिये ओम् का जप करने के लिये, ओम् शब्दोच्चारण-  
 पूर्वक जप छोड़ कर, केवल कोमल ध्वंस-प्रश्नस में ध्वंस  
 से स्थापना और गभीरता में रह करके उपस्थित करके  
 ओम् का स्वाभाविक जप करना चाहिये यह ही उत्तम  
 है। इस स्वाभाविक जप में करना कुछ नहीं फड़ला-  
 केवल मन में स्थाप और गभीर ध्वंस को स्मरण  
 करके प्राण को भी बैसा-बनाना होता है। ध्वंस में ग-  
 भीरता आरम्भ होती है और निश्वास में समाप्त हो  
 ती है। इस जप से मनुष्य का चित्त एकत्र और शा-  
 न्त हो जाता है। उसे आनन्द अनुभव होता है। इस  
 जप के स्वाभाविक होने से अन्य किसी जप के

करने का प्रश्न ही नहीं रहता।

प्रश्न: सायम् और अन्ध ऐसे समय जिस समय मन अज्ञान हो उस प्रकार जप किया जा सकता है। भोजन करने के पश्चात् इतनी देर तक यह किया न करनी चाहिए जितनी देर तक पर हलका न हो जायें।

शान्त, मुदाग्ने, निगन्धि, निधूमि स्थान में, जिस में हवा मन्द रह रही हो और जल का कितना हो, यह जप विशेष लाभ प्रद है। अन्ध ऐसे स्थान में भी जिस में निक्षेप न हो जप किया जा सकता है।

शिवासन का पश्चासन से बैठ कर जप करना अधिक उत्तम है। अन्ध आसन से भी जप किया जा सकता है, जिस से नाथान मालूम होती है। जप करते समय श्वास के उतरान चढ़ान के साथ मन की गति पृथ्वंश गल सुषुम्ना नाडी में शिरः पृष्ठास्थि (occipital bone) के सम्मुख से गुदमण्डल तक करनी चाहिए। श्वास लेने में नीचे से ऊपर को शिरः पृष्ठास्थि के सम्मुख तक और श्वास छोड़ने में ऊपर से नीचे को गुदमण्डल तक मन की गति होती है। श्वास

प्रश्वास रुक होने लगता है तो मन की गति ध्वास प्रणा-  
ली की विधली होकर के साथ २ अणु से हृदय तब रह  
जाती है। ध्वास प्रश्वास की गति बहुत मन्द करने पर  
मन हृदय में टिकने लगता है। अन्त में ध्वास-प्र-  
श्वास में गति शान्त होती है और मन हृदय में टि-  
कता है और हृदय के अन्दर चुसला हो।

इस प्रकार जप के रास्ते से भी मुमुक्षु  
चित्त की लकात्र और निरुद्ध भूमिकाओं को प्राप्त कर  
सकता है।

मुमुक्षु-

देवान विद्याकाव्येति.



## अस्पृश्यता.

ब. च. गुप्त जी

प्रायः विश्व भूम्याके  
भाषके सन्तुष्ट में उपस्थित करने ल  
गा हू वह कुछ चन्द लोगो को  
मस्या नहीं है किन्तु वह पू करोडलो  
गो को समस्या है। राष्ट्र के लडे २  
नेता उस पर गम्भीर विचार को  
में सलज्ज है। मैं भी भारत के  
सातके हिस्से के प्रति अपने विचारों  
का इजहार करने लगा हू।

प्रायः सम्पूर्ण भारत में  
दलित वर्गों को दहा जाता है।  
बजाय के के वस्तु-पिष्टन नहीं कर  
सकते, सार्वजनिक शिक्षणालयों  
समाजसेवकों और स्वको पर

उन्हें चलेने की इजाजत नहीं, वस्तु  
को के सुडके जिन पर कुत्ते फिर  
सकते हैं गंध सूझ सकते हैं कि  
किन्तु हिन्दु जाति के बड़े जन पर  
पौर नहीं धर सकते। हाल की  
घटना हैं १९३० के इधिया  
राजनद नमक नाम के कलुष  
जाति पर प्रस्ताव पास करती हैं  
पैक अशुत लोग का भूषण व जाग  
न बरे खुदने से नीचे अपडा न  
पहने, बाल न बजाये, धाता न  
लागते, केवल सिटी के ही न  
सिन प्रयोग के लाये, विवाह पर  
नाजा न बजाये, घोडो पर न

बनें, वे अपने बच्चों को शिक्षा  
 न दें पशुपालन कर ही वे जी-  
 वन व्यतीत करें। इन प्रकारोंको  
 भारत में न लाने पर उनके सौ-  
 पड़ों में भाग लगा दी गई, उसके  
 नष्ट कर दिए गये, और सम्पत्ति  
 हूँ ली गई। इतना ही नहीं १६  
 १२ की २४ दिसम्बर को "Mink"  
 को छत्रिल को उठाकर खरिबारे सब  
 unseeable जाति का रोनांच-  
 मयी दृश्य हमारे आँसों के स-  
 प्रसे से छुजरता है। वह मध्यरात्रि  
 में क लोगों के अपने धोने को  
 निकलती है और पै सुटने फिर  
 अपनी उल्लुओं में छुस जाती है।  
 सौ प्रकार के सब और जाति  
 गले में बसकर लवणों के

सामने आते हैं। इसी प्रकार पूजा के  
 परिवर्तों और जाति के कलारूप म-  
 न्दिर में ईश्वरों और सुसलमान जाति  
 मन्दिरो को अपवित्र कर सकते हैं  
 किन्तु हरिजन लोग सतारा करने  
 पर भी उस नहीं पाते हैं वे मनुष्य  
 होते हुए भी मानवीयता को न भिन्न  
 से बलिबत रखते जाते हैं और पशु  
 होते हुए पशुओं से भी बहारा था  
 बहर उनके साथ सिपा जाता है।  
 कौन ऐसा व्यक्ति है यह सुन कर  
 बिसबा रोम रोम जल नहीं जाता  
 शिवां में खून नहीं उतरता। यह है  
 विषमता को समझना। कौन इस स-  
 स्था को दूर कर सकता है और मि-  
 प्रकार भयुतपन के कलङ्क को मि-  
 का सौकर मर जा सकता है।

बुरा जा सकता है कि लो-  
 गों में प्रचार करो परन्तु यदि यह  
 समस्या १ लाख लोगों को होती तो  
 उसको हल किया जा सकता था।  
 एक नहीं - इस समय बहुत  
 को छोटी समालोचकों और  
 लालबाजों लालियों को प्रचार  
 जाते हैं। प्रधानमंत्री के समक्ष  
 के दलित आदिवासी के दिलों को  
 रखा बांटते २ विरोधियों को खून  
 के कटोरे पिलाकर अमर-वाहीदों में  
 नाम लिखा जाते। और गांधी  
 नाम ले सकते थे जो अस्पृश्यता  
 को जीवन का चरम-लक्ष्य बना  
 कर आभारण उपवासों से अपने  
 जीवन को बाजी लगा देते। किन्तु  
 यह समस्या हजारों को नहीं छोड़ती।

को नहीं, करोड़ों को है। एक की न  
 हीं, दो को नहीं, ५ करोड़ को है।  
 देश के अहिंसक आन्दोलन  
 महत्वपूर्ण कार्य को करने में सक्षम  
 हैं।

हिन्दू उन्हें अपना  
 नहीं चाहते, मुसलमानों से वे न  
 डरते हैं; ईसाइयत उन्हें सी  
 का नहीं, और सिक्ख अपने  
 प नहीं सह सकते। ऐसी अवस्था  
 में बहुत-समस्या Community  
 को समस्या न रह कर Nationality  
 को समस्या बन गई है। यह चा-  
 न्दिके सच न रह कर सक्षमता  
 का काल हो चुका है। कहा जाता है  
 कि बहुत स्वयं उन्नत हों, या हिन्दू  
 समाज समाज के अस्तित्व के



सम्भार को हस्तगत करने की क्या जरूरत है ? मैं पूछता हूँ, आज की हिन्दु  
 राज में ऐसी जातियाँ मौजूद हैं जो व्यक्तिगत के अपने धर्म का भरोसा  
 समझें बैठे हैं, क्या आप उन्हें व्यक्तिगत करने की आज्ञा देंगे ? ऐसे  
 ही लोग मौजूद हैं जो नरकल और बालवध को अपने समझने  
 में महत्व अनुभव करते हैं। क्या आप नरकल अपित्त करेंगे और  
 क्या आप मोले भाले बच्चों के हाथ कटा कर मूर्तियों पर अपित्त  
 करने को उद्यत होंगे ? रहने कीजिये इस समस्या को यहाँ पर, इतिहास  
 से भी और देखिये, अंतोम्य क्या बतलाती है ? क्या सत्तेपना भा  
 त में बन्द हो सकता है यदि सरकार का सहयोग न होता ? क्या  
 बालवध और नरकल का उपाय नामों निशां दुनियाँ से मिट सकता  
 है यदि सरकार की दिव्यक्षी न होती ? और क्या शायद देव  
 का स्वयं विषय जा सकता है यदि सरकार की अनुमति न होती ?  
 यदि नहीं तो आज अस्पष्ट समस्या भारत के लिये क्या रहित हो  
 चुकी है। अनुपम हिन्दूधर्म का कोट पूरतिता प्रागर्हित हो चुका  
 है। सामाजिक विषमता ने जो जो करतूतें दुनियाँ की रंगमंच पर

विरुद्ध हैं। वे सब हमारे शौकों के आगे हैं। रीशपा आज Commu-  
 nist लोगों के उभाव में प्रसिद्ध हो चुका है। जर्मनी साम्यवाद के रंग  
 में रंगा जा चुका है। सीधों से चले आ रहे वूजिपति और अजजीबियों  
 के परस्पर विवाहों ने साम्राजिक और आर्थिक क्षेत्र में जो आउच्यजनक  
 परिवर्तन कर दिखलाए हैं उन सब से हम भले भौंने परिचित हैं। आ  
 र तो देशों के Constitutions में यह बात आ चुकी है। Bill  
 of Rights या फुंडेमेंटल सिद्धि स्वीकृत किए जा चुके हैं।

आज हमारे विरोधी दल के तर्क आकाज  
 उठते हैं कि Unreachability Bill पास करना जनता के अधि-  
 कारों को छीनना और स्वतंत्रता का विनाश करना है। परन्तु क्या मेरे  
 तर्क ऐसा कोई देश विरुद्ध सकते हैं जिसके Constitution में  
 एक मनुष्य के अधिकार दूसरे से सर्वथा भिन्न हों ? क्या समाज में  
 सर्वथा परिपूर्ण, अधिकार शून्य मनुष्यों को उनके अधिकार लौटा  
 या दूसरों की स्वतंत्रता का अपहरण करना है ? मुझे तो हिं-  
 मकर १७८० का दिन याद आता है जब जनता के वृहत्तम अधिकारों  
 की उपेक्षा करते हुए उपेक्षित किया गया था - "सब मनुष्य स्वतंत्र

उत्पन्न होते हैं, सबके अधिकार समान हैं, सामाजिक भेद का भाव्य  
 सर्वजनिक उपयोगिता के प्रतिरूप मान्य कुछ नहीं है और चुनिंदा  
 वर का प्रयोजन जनता के हितपूर्वक अधिकारों की रक्षा करना ही  
 राज की स्वामित्व शक्ति जनता के अधिकारों के प्रतिरूप में निश्चित है इसीलिए  
 जनता का प्रतिनिधि है और वह करे कायून या मसीबदा पैदा करता  
 है तो यह मानना पड़ेगा कि जनता का स्वतंत्र नहीं तो अधिकार  
 भंग्य सहमत है। यदि जनता का अधिकार एक कायून के पक्ष में  
 है तो कायून कि लोगों की स्वतंत्रता को बर्बाद वाला नहीं प्रत्युत  
 बर्बाद वाला है तो फिर उकार भंग्य को दृष्टि के सम्मुख रख  
 कर जनता के उत्पन्न, अनपेक्षित तथा स्वाभाविक अधिकारों को  
 सुरक्षा जा सकता है ? इस उकार भंग्य के अपने उदाहरण  
 से यह सिद्ध कर दिखाया है कि जब तक सामाजिक विषमता  
 को दूर नहीं किया जाता तब तक कोई भी शासक प्रतिनिधि  
 काल अपने शक्ति के शक्ति और व्यवस्था को बनाए नहीं रख  
 सकता है। यही काल राज भंग्य के विषय में है। सामाजिक  
 अन्तिम के जो तरफे प्रत्येक एक कोने के प्रदर्शन हैं जो के

हिलोरे' लता हुई हिन्दू-महासागर को पार कर आज भारत में भी भारत प्रभाव प्रदर्शित कर रही है।

यह बात बारम्बार दोहराई जा रही है।

कि सरकार को समाज सुधार करने की क्या आवश्यकता है? प-

रन्तु यदि इतिहास पर दृष्टिपात किया जाये तो पता चलता है कि

सति प्रथा, बालवध और नरवध को समाज में धार्मिक पुण्य होने

द्वारा मान्यता के दूर करने में अथवा सुदुलता प्राप्त की है।

काम्य है कि आज बेटियों पर बकरों के घाट मनुष्यों के गले

पतवार कर नहीं बंधाये जाते और बाह्ये अकाल ही में जीवन

से हटा नहीं जा बैठतीं। अभी राष्ट्रीय संघटन पास हुआ है। बच्चों

की शादी को बन्द करने की कोशिश की जा रही है। उनके सुख

गृहस्थ के पहाड़ को उखाड़ दिया गया है। विधवाओं के लिये *Widows*

*re marriage act* बनाया गया है। उत्तराधिकार

और विवाह को नियंत्रित किया जा रहा है। स्वयं अनुष्ठानों को समाप्त

की ही लक्ष्य है —: लैजिस्लेटिव कोमिशन और *British India*

में *depressed classes* को *deal* देकर उस बात को पुनरा

पेश किया गया था कि अधुन सन्ध्या का सुतधान बिना जा सकता है।  
 प्राचीन सरकारी पिछले कई वर्षों से अधुन को निभा नादे के लिए  
 निरन्तर प्रयत्नवान हैं।

यही नहीं, यदि इसी सन्ध्या में धार्मिक सन्ध्या  
 में के सन्ध्या में दूसरे देशों की Governments की प्रतिक्रिया  
 को देखा जाये तो पता चलागा कि- १८५० में जर्मनी में Kultur  
 Kampf की लड़ाई में साम्राज्य की पालिशमेंट ने कैथोलिक लोगों  
 को के विरुद्ध May laws पास किये थे। जैसुसट सन्ध्या को जर्मनी  
 ने बहिष्कृत कर दिया। प्रतीपा तो इतना भरो बढा कि पारसी लोगों को  
 निम्नलि और निम्न पर जो बन्दोल किया गया। ५ इसी प्रकार प्रसंग  
 १८०५ और १८०७ में मोरोसो विधान ने जर्मे के विरोध में नानेक  
 कानून पास किये। इसी का परिणाम है कि प्रथमकाल में फ्रांस में  
 बड़े का जो अधुन अधिपत्य था वह नुक सुवेय नष्ट हो गया है।  
 १८८१ और १८८६ में <sup>बाल्टिक देशों</sup> कानून विधान को जर्मे के उपाय से हट  
 राज्य के अधीन किया ~~गया~~ १९०३ में 'रेसोसिस्टास विधान'

कर १०००० से अधिक वार्षिक विद्यालय बन्द कर दिये। इसके द: बर्ष  
 काय भवति: १९१० में जहां सरकारी शिक्षणालयों में पढ़ने वालों की  
 संख्या ५० लाख से अधिक थी वहां वार्षिक शिक्षणालयों में १ लाख से  
 भी कम विद्यार्थी शिक्षा पाते थे। १९०७ में 'एथक मर्यादा-विधान' का  
 बन्ना कर चर्चे की सम्पूर्ण सम्पत्ति और जापराय को जप्त कर लि  
 या गया। यही दशा आज इंग्लैंड की है। वहां का चर्चे पूर्णरूप से  
 पोलिप्रैन्स के अधीन है। *West-minister, York, Cambridge*  
*University* आदि बड़े बड़े स्थानों के पार्सनी भी सरकार द्वारा ही नियु  
 क्त होते हैं। इंग्लैंड में तो इस बाध में रहना भोगे कष्टम सम्भव है  
 कि वहां के चर्चे की प्रवर्धनार्थ भी पार्लिमेंट द्वारा प्रवर्धित होती है।  
 यही बात अन्य देशों के विषय में कही जा सकती है। रोम का यह  
 योग्य जो किसी भारतीय मूल में अपने द्वारा मात्र से जनता के हृदयों  
 में प्राण पैदा कर देता या आज स्वतंत्रता, सुख और सुध लुप्त कर  
 देता या कानूनों को बेडियों से जकड़ पाता है। इसी प्रकार सोवियत  
 रशिया, उकी: भारतमिस्तान के उदाहरण सब की जवानों पर हैं।

आस्ट्रिया, बेल्जियम, स्पेन और पोर्तुगाल के राजा सुधार भी किसी के नाम गहक नहीं करते हैं। वे भी इतिहास इस काल का समर्थन नहीं कर रहा। वे इसको सिद्ध करने के लिये इसके अधिकतम ल उदाहरण उपस्थित करने जा सकते हैं। यदि नहीं तो हमारे अर्थों का असन्तोष दूर क्यों नहीं होता ?

हमारे अर्थ एक उठन और उठते हैं। हर ग्रहण कि घट, मन्दिर, सड़कें और शिक्षणालय खोल देने से अधूतों के सामाजिक समस्या इस नहीं होती है। मेरा कहना केवल इतना है कि अधूत समस्या जहां तक अधूतपन से सम्बन्ध रखती है उसे दूर हो जाती है। शेष रहती है निश्चिन्ता की समस्या। निश्चिन्ता केवल अधूतों के पक्षे नहीं पड़ी है। भारत की ९० प्रतिशत निश्चिन्त है। यह सब अधूत नहीं है। इस प्रकार हमने देखा कि अधूत समस्या को दूर करने के धर्मानुसूत, समाजानुसूत तथा व्यापारानुसूत है अर्थात् अधूतपन को मिटाने के धार्मिक, सामाजिक तथा व्यापारिक हैं।

माकण्य! हिन्दु जाति का भविष्य आज भन्धकपत्र

है। किसों से पिछड़ा हुआ मुन्घर जाति का एक समुदाय 'गार्डि' गार्डि-

नादे लगा अरु राःःः

रा

अपनी डूली कि-

स्मल को रो का

गईया! एक भा

New & News

के सजप

तो भाप उरुं

न में ही

लगाए समझते हैं

क प्रे की

प्रबुद्धपन को प्रिया

जं। सप्र

अंजो विरोध में

गुडियां नामे

मुझे नजर आ

पुस्तक लि

गाए, तो उनको

ह सुझाए म

विद्वान गाए, तो

हंगो।





## ग्रुप मेकिङ्ग

डॉ. बालकृष्ण जी  
उपस्नातक

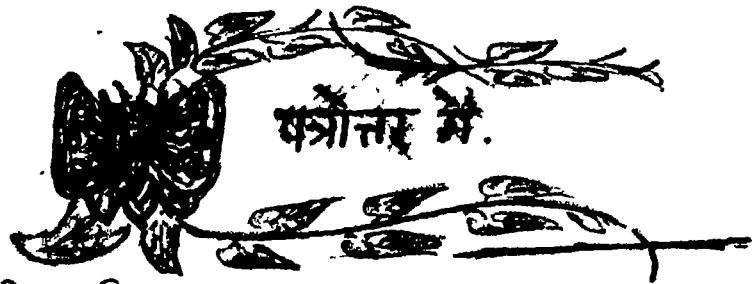
Group making क्या है ? और इस के क्या लाभ हैं ? यह बताना मेरे लिये बहुत मुश्किल है। यह तो केवल वह जान सकता है जो किसी शिक्षक के नीचे रहकर शिक्षा प्राप्त करे। यह एक क्रियात्मक चीज है। विचारात्मक या वर्णनात्मक नहीं। इस लिये इस को केवल करने से डी जाना जा सकता है अन्यथा नहीं। सन्तानानुवाक्य के दिनों में हमारे महाविद्यालय के विद्यार्थियों का एक दल श्री मास्टर नारायणराव जी की अध्यक्षता में group making or Pyramid Building की आकर्षक और मनोरञ्जक व्यायामों का अभ्यास करने के लिये गुरुकुल इन्दुप्रस्थ, देहली आदि स्थानों पर रहा था। मैं भी उस दल में था। Pyramid Building या group making के व्यायामों का विशेष उपयोग सामान्य जनता में प्रदर्शित ही है, यह अभ्यास देखने में बहुत आकर्षक और आश्चर्यजनक प्रतीत होते हैं;

जनता इन को देख कर स्तब्ध रह जाती है और दान्तों  
तले अंगुली दमती है। शरीर संघटन और शरीर की  
समानुपातिक वृद्धि की दृष्टि से इसकी अधिक उपयोग-  
गिता नहीं है। इन अभ्यासों के कुछ चित्र पत्रिका में प्र-  
काशित ही हुए हैं और बहुत से भाई अन्य अनशिष्ट  
अभ्यासों को जानते ही हैं। इन सब अभ्यासों में निचली  
मज्जिल को दृढ़ता और स्थिरता की अधिक आवश्यकता  
होती है। इस से ऊपर की मज्जिलों में साहस और निरंतरता  
की आवश्यकता होती है। धीरे-धीरे अभ्यास से कठिन से  
कठिन स्थान को भी भरना सुगम हो जाता है। मास्टरजी  
का दो महीने निरंतर अभ्यास कराके रत्न को लैप्पार  
करने का उद्देश्य - अधशिलाविके अवसर पर गुरुकुल  
कांगड़ी की ओर से व्यायामों का प्रदर्शन कराना भी था।  
परन्तु अजमेर में व्यायामों के प्रदर्शन का समुचित प्रयत्न  
न होने के कारण हम ने अनुभव किया कि हमारा  
सारा काम परिश्रम व्यर्थ ही गया है। अजमेर के मेमो  
कालिज में राजकुमारों के सन्मुख भी हम व्यायामों का

प्रदर्शन करने में समर्थ हुए। राजकुमारों ने हमारी खेलों को अत्यधिक पसन्द किया। group making या Pyramid Building से शरीर के विकास में कोई विशेष सहायता नहीं मिलती इसका प्रमाण यह है कि हमारे दल के किसी भी सदस्य को इससे विशेष लाभ नहीं हुआ। प्रतिदिन नियमपूर्वक ५ ½ घण्टे अभ्यास करने पर, और अच्छे से अच्छा भोजन भी प्राप्त होने पर सबका स्वास्थ्य गिर गया। शायद इसका कारण यान्त्रिक नियमित भोजन न मिलना, जलवायु का अनुकूल न होना, और ग्यापाम की अतिशयता भी हो, वरन्तु इतना मैं कह सकता हूँ, ऊपर की मज्जिलों में जो रहते हैं उनका कुछ ग्यापाम नहीं होता और भय के मारे उनका खून सूख जाता है और चेहरे पीले पड़ जाते हैं - जोड़े उन्हें पर्याप्त अभ्यास हो जाये तो भी ऊपर की मज्जिल में रहने वालों को भय लगता भी है। निचली मज्जिल में रहने वालों का कफ ग्यापाम होता है, वरन्तु अब दूर हो जाता है, तो

उनके स्वास्थ्य को बहुत चम्का लगता है। इन अभ्यासों के अंग रूप व्यायामों को हर स्तर पर यदि शकल भी कृ सकता है और उनके नियम पूर्वक करने से बहुत अधिक लाभ उठ सकता है। यह 'अंगरूप व्यायाम' कई प्रकार के आसन ही हैं जैसे चक्रासन, शशाङ्क के बल खड़ा होना, आदि। Group making or Pyramid Building इन्हीं आसनों के सम्मिश्रण से ही किये जाते हैं। इन आसनों के करने के ब्या लाभ हैं यह केवल आसनों के करने से ही जाने जा सकते हैं।





प्रिय भाई .....

सप्रेम नमस्ते । तुम्हारा पत्र मिला ।

तुम ने 'सुखमय' में तुम्हें माया दिया है, यह बहुत अच्छा दिया ।

तुम ने सहायता मांगी है, तुम्हें हर्ष है कि मैं सहायता दे

सकता हूँ । पहले पहल तुम्हें यह समझना चाहिये कि तुम्हारी

समस्या आचार-व्यवहार - की है, विचार की नहीं । तुम्हारे

हृदय में जो अन्ध-भावनाएँ जागृत हुई हैं, और जिनके निरुद्ध

तुम निरन्तर कुछ चला रहे हो, उनका उद्देश्य क्या है और

उनसे तुम्हें कैसे पेश आना चाहिये, यही जानना चाहिये ।

वैराग्य, सर्प रज्जु, ईश्वर का विगुणत्व अप्यना सगुणत्व, इ-

न्द्रिय और आत्मा - इन सब बातों के बारे में जो कुछ विचार

इसके दूसरों से पाये हैं उन सब को थुला कर पहले तो अपने

पत्र को साफ़, खुलासा open कर लो । तुम को यह नहीं देखना

हैं कि दूसरे का सत्य बताने हैं, छल्युत यह कि तुम्हारे हृदय को का सत्य मालूम होता है। जो कुछ तुम्हारे हृदय को सत्य मालूम होता है, उसी की पकड़ो। पहले पहले तो बहुत कुछ अस्पष्ट होगा, किंतु आचार की समस्या हल करने में वह स्पष्ट होने लगेगा - हृदय का सत्य उकट होने लगेगा। पहला काम तो यह है कि दूसरों से प्राप्त ज्ञान के मोह - *second hand knowledge* - को छोड़ो और हृदय के उद्देश्य के लिये मार्ग साफ करो -

यदा ते मोह कलिलं नादि व्यक्तिरिष्यति

तदा गन्तासि निर्वेदं श्रोतव्यस्य सुतस्य च ।

दूसरी बात हृदय की वास्तवताओं से बोलते पेश आ जा जाये, उन के साथ बेशर व्यवहार किया जाये, क्या *Attitudes* ली जाये, यह है। तुम को दो ही मार्ग दिखाई देते हैं, याले उन के दुर्दिम बहाव में बह जाया जाये - उन के बशीभूत हो जाये और या उन से निरन्तर युद्ध किया जाये। पहिले मार्ग से तुम उरते हो और दूसरे को तुमने ग्रहण किया है। परीणमतः तुम्हारा जीवन अधिगन्त, युद्धमय, बेचैन हो गया है। मैं तुम्हें

बताना चाहता हूँ कि एक तीसरा मार्ग भी है, और उसी को  
 अवलम्बन करने के लिये मैं तुम्हें अनुसंधान करूँगा। वह मार्ग  
 यह है कि उन उच्छ्राओं में लेश-मात्र भी राग-आसक्ति न रखी  
 जाये, और यह के साथ ही उन के प्रति लेश मात्र भी द्वेष  
 न करना जाये। अपनी उच्छ्राओं को अपर से, उदासीन भाव से,  
 अनासक्त रूप से देखना सीखो। जानते रहो कि तुम्हारे द्वेष-  
 घृणा के भाव ने ही, उन उच्छ्राओं को इतना प्रबल उग्र कर  
 दिया है। यदि तुम उन को दबाना, कुचलना- उन से युद्ध करना  
 - दोउ दो, तो वह समय पाकर स्वयं ही शान्त हो जायेगी,  
 तुम समझते होगे कि लेश बतने से तुम उन के नेत्र में  
 बह जाओगे। मैं तुम्हें बताना चाहता हूँ कि उच्छ्राओं के  
 नेत्र में बहते वही हैं जो उच्छ्राओं को दबाने-कुचलते रखते  
 हैं। एक दिन लेश आता है कि उच्छ्राओं का नेत्र इतना  
 प्रबल हो जाता है कि उन की बरसो की लक्ष्मी शिकके  
 की तरह बह जाती है। जो एक दिशा में अनिश्चयता-काल  
 है, वही ही विपरीत दिशा में भी अनिश्चयता - extreme  
 पर पहुंचता है। उच्छ्राओं से शांति रखना, और उन से द्वेष



रचना- युक्त करना - यह दोनों अतिशयता के मार्ग हैं - ये अन्त-  
वह हैं। इन दोनों की दौड़, और इन दोनों के बीच का, इन  
दोनों से अतीत, युक्त-रूप-विहार-नेष्टा-आचार का मार्ग  
ग्रहण करो।

इस की ग्रहण करने वाले के लिये सब से पूर्व  
यह समझना आवश्यक है कि हृदय में उठने वाली उच्छ्व-वा-  
सनाओं के उत्पन्न होने में उस की लेश-मात्र भी जिम्मेदारी  
नहीं है। यह तो एक स्वाभाविक-प्राकृतिक क्रिया है। जिस  
उच्छ्व से हृदय धड़कता रहता है, फेफड़े, आंते, मस्तिष्क, का  
करते हैं, उसी उच्छ्व से उच्छ्व-वासनाओं की उत्पन्न होती रहती  
हैं। जिस उच्छ्व से प्रथम क्रियाओं प्रथम की उच्छ्व के आधीन  
नहीं हैं, उसी उच्छ्व दूसरी भी। और भी, वे वासना-वासनाओं  
तो पुरुष की उच्छ्व के विरुद्ध कहीं उत्पन्न होती हैं।  
उन की उत्पत्ति में पुरुष की जिम्मेदारी हो ही नहीं सकती।  
वे अगर उत्पन्न होती हैं, तो होने को। जहां से वे उत्पन्न  
हुई हैं नहीं वे समा जायेंगी। पुरुष की जिम्मेदारी उन-  
की उत्पत्ति में नहीं है, बल्कि उन के अति राग-द्वेष भाव धारण

करने में। यदि वह उन से रण खलेगा तो अपने-आप को खो बैठेगा, यदि उन से द्वेष करेगा तो निरन्त पुष्प संलग्न रहेगा और डार जाने की आशंका बनी रहेगी। उसके लिये तो सर्व श्रेष्ठ मार्ग यह है —:

उदाशं च प्रवृत्तिं च मोहं मेव च पांडव ।  
 न द्वेष्टि संप्रवृत्तानि न निवृत्तानि कांक्षति ॥  
 उदासीन वतासीनो गुणो यो न विचाल्यते ।  
 गुण्य वर्तेन्त इत्येव योऽवनिष्ठते वेङ्कते ॥

आपूर्वमिण मचल उतिष्ठं समुद्र मासः प्रविशन्ति पट्टत् ।

लड्डत् कामाई यं प्राविशस्ति सर्वे स शान्ति माप्नोति न काम कामी

अपने मोह-वासनाओं की उदासीन वर्-अंचे बैठे हुये

के समान - निर्मय होकर देखना सीखो। जिस प्रकार समुद्र गिरने वाली नदियों से विचलित नहीं होता, उसी प्रकार तुम भी हृदय में उठने वाली वासनाओं से बचवाओ नहीं, उरो नहीं, उन से लड़ो मत। समझे रहो कि वे तुम्हारा बुद्ध भी नहीं बिगाड सकतीं। वे तो खेसी वस्तु हैं जो बिगाडी जाती हैं और जाती हैं। जो इच्छाएँ उठ समझ बड़ी मयंक

लगाती हैं वे ही कुछ समय में बिल्कुल शान्त हो जायेंगी। यदि तुम द्वेष-रूपी उन्मत्त हैं तोल कर उन्हें भड़काते न रहो।

उपरोक्त मार्ग ही में तुम से ग्रहणा करने का अनुरोध करूंगा। यही वैराग्य है। मैं ने कोशिश तो की है किंतु तुम्हें पता नहीं कि मैं तुम्हें समझा सकने में कहां तक सफल हुआ हूँ। यह मार्ग शायद बहुत कठिन मालूम हो, किन्तु वास्तव में ऐसा नहीं है। इस का अभ्यास कीजो और यदि इस में तुम सत्य हो तो यह अधिकामिष्य सरल होता जायेगा। सब प्रकार की अनिच्छाओं को दूर दो। बिल्कुल एकान्त सेवन और अन्य तपस्याओं को दूर दो। साधारण-भाव से रहो। जिस मार्ग से हृदय में शांति और आनन्द अनुभव न हो, उस में जरूर कहीं कोई गलती है यह जानते रहो। इन ढंगों में मार्गों को ग्रहणा न करो। हर क्षण में स्वाभाविक रहो। इस समय तो शतना ही।

शाम्भु

तुम्हारा भाई

राम कृष्ण

(M. B. B. S.)



# वीर्यरक्षा.

अ. ३६१०२०

५५ यदि वीर्यरक्षा के अभाव में वीर्य कम हो जाय तो  
वही रक्त के साथ ही जा उठे विपरीत होने से, स्वयं पता लग  
जायगा।

१. सिर में दर्द। नीचे लहर करते बालों को सबसे पहिले  
सिर में दर्द आकर पकड़ती है। ऐसा अचानक विचार का काम नहीं  
कर सकता। पहले तो उबका मन ही नहीं लगेगा और देवेंगी  
दिगी। और यदि जब इसी उबके मन को लगेगा तो तो उसे  
के सिर में दर्द आकर हो जायगी, कुछ अधिक परिश्रम  
करने से आधे सिर की दर्द हो जाती है। अचानक  
सिर में दर्द आकर हो जाती है। सिर में बिना दर्द का -  
कारण दिमाग के रक्त का विकृत हो जाता है। रक्त -  
व्यवस्था ठीक नहीं रहता हो जाता है और सिर में दर्द  
उत्पन्न कर देता है। तब ही चेतन करके रक्त 'रूप' में  
को बाहर निकाला जाता है। और जो रक्त उबका रहता है  
रक्त विकृति का कारण वीर्य शक्ति है। वीर्य के कारण



मनुष्य को बीड़ा सा भी अधिक काम कहा पड़े या उसे  
भारी सख करनी पड़े तो उसके शरीर में विक्रमिमें नही  
करने लगेंगी। भारी करने से भी गली शरीर में बढ़ती  
है अतः गली ही कारण कहा जायिये। बीरि नाश में  
शरीर में विक्रमिता का नाश होता है। अतः गली के  
कारण मांस के छोटे २ भागों में फटप होता है वह  
ही विक्रमिमें उल्लेख होती है।

४. पिठलियाँ में रूई होने लगती हैं। नीर्य  
नाश से मोस वेरनी दीहती तो यह ही जगती है अतः यन्त्र  
कारण के कारण के जरी करने से पिठलियाँ पर आधुनिक  
जोर पड़ता है जिससे शरीर सदान की शक्ति उबने लगे  
रहती, अतः एव पिठलियाँ में रूई होने लगती है।

५ उदासी धरि रहती है, सुस्ती बेरे रहती है  
मन में विकल्प बेहद उबते रहते हैं। अपने को उब  
होता है अतः इसी की अच्छी बात की भी यह ही  
समाप्ता है कि हमने जहर रहका कोरि स्वार्थ ही पर  
भुजे कुप्रधान पदुवाने के लिये कहा है। धूमों पर से

विजास उल्ला जाता है। ऐसा सुगंध उदासी और निरसता  
 न रहे बल्कि वन जाता है जब दूसरों की बात ही उदासी  
 नहीं लगती तो स्वभाव सिद्धि विजास हो। स्वभाव ही उदासी  
 और निरसता काय अवस्थाओं में भी हो सकती है -  
 पुरु हो अवस्था की उदासीवर्ती स्वाधी हो जाती है  
 आनंद भी उदासी रहती है

४. कन्ज-वीर्य नारा से कन्ज हो जाता है।  
 कौं कि वीर्यनशा के कारण आजादियां मोलन की  
 शक्ति उदास से उदास संकती है और नहीं रहते -  
 पक्षा का बाद निश्चल रहती है शोच के बाद  
 निश्चलते में शोच स्वाद (गुरा में) नाडियों में से वात  
 सिंचता है, जिससे निज का शोच निश्चित प्राप्त,  
 पहला शोच धिक्कतकनीय के बाद निश्चल जाता है।  
 वीर्य के निकलने से शरीर में शुद्धी हो जाती है  
 उस शुद्धी का सेकने के शिके ऊपर बाय होके लग  
 ता है और शोच होल हो जाते के कारण आजादी से  
 वाद नहीं निकल सकता। अल्लु कस मय २ उदास



भइये लगता है तो नाडियों पर उसका प्रभाव पड़ने से  
 धरत ही लगता है। धरत का होता कारोबार मैं गहरी  
 का बर प्रभाव माता है। उस शौच की धरत निकालने  
 की (लापा धरत) मरणापरा शक्ति व्यय करते हैं।  
 जिससे गहरी बर जाती है। परन्तु नीच गहरी गहरी  
 वाला अदानी वलनी शक्ति का व्यय नहीं कर सकता  
 अतः इसे वाद्य स्थापन करनीया या सुलाप आदि  
 विरोधन करने की आवश्यकता पड़ती है। ऐसे आदि  
 गी को पानी की प्रवास आधन लगती है इसे पानी के  
 चादक ताकि शौच बरत करते हैं सरलता मिले  
 नाडियों में पानी क्रम से स्थिता है। क्रम में पानी  
 कम होके से प्रवास लगती है। कर्म होने का अभाव  
 एक पर भी है कि बरी गहरी को सुत्रप पर  
 स्थिते शौच दाहिनी से प्रवास ले। सम्भव है उसका  
 कारण यह हो कि दाहिनी प्रवास चक्रे पर दाहिनी  
 गी गहरी से क्रम तक सम्बन्ध मरणापरा धरत  
 क्रम पर प्रवास उल्लता है जिसके कारण वही से पानी

निकल कर आने दिनों में जानवर का वजन घटता है। यदि  
 ऐसी अवस्था मनुष्य की पंच उर है कि वजन बढ़  
 जाती तो जब ही आता है और लोच लागे के लिए  
 मनुष्य जब जोर लगाता है तो भीतर ही जाता है  
 अतिसार के पूर्व अवस्था में जोर ठोस वस्तु न खाने  
 चाहे, पस्तु इस वस्तु खानी चाहे, ताकि वजन  
 बढ़ सके। जिसका वजन होती है उल्टा जाय: पुका  
 भी हो जाता है। विचारो यह है कि वजन जोर  
 पुका का का सम्बन्ध है। दिमाग से एक रोग  
*neuritis (Vagus)* निकलता है जो कांसे मोजन  
 तन्त्रिका अर्थात् मुख के मुदा तक, और कंधे तथा  
 धृष्ट में भी गति देता का काम करता है कन्ज के  
 काम का *neuritis* में *Irritation* बढ़ा होती है  
 उसमें गुणित हुआ बार या यह *neuritis* जहाँ २ जहाँ  
 गति है वहाँ २ मुख न कुछ *Irritation* बढ़ा जाता है  
 अत एव ताक्षणा के रूप में *glands* है उनमें  
*Irritation* और ताक के सारे जग जग निकलते हैं।

लक्षणा है। यदि प्रत्यक्ष साधकते हैं कि कर्म की दृष्टि  
 से यदि है कुछ विस्तार बढ़ाने वाली बस्तुएं (पार्थी) जिससे  
 पुष्कल ही है। परन्तु वे यदि कुछ बस्तुएं अधिक  
 उद्योग उद्यम करती हैं जिससे धीरे धीरे का अधिकता  
 होती है और कर्म तथा पुष्कल उद्योग की धीरे धीरे  
 से और अधिक बढ़ जाती है। उनी धीरे धीरे के  
 विस्तार के कारण किसी के पुष्कल काम में वे  
 अतीव जाती हैं यदि यदि धीरे धीरे २ बीमारियां  
 मित्त २ ही उपपन्न होती हैं। शब्दों की कारणों  
 से कुछ लाभ नहीं हुआ लगता ही रहेगा। यदि जो  
 का काम किया जाय तो कुछ गिर पड़ेगा, यह ही  
 बात यहाँ है। धीरे धीरे के उपायों की उपयोगों  
 में जाकर यदि धीरे धीरे साधकत किया जाय और  
 साथ साथ धीरे धीरे दिया जाय तो सब बीमारियां  
 आप से आप जाय जाती हैं, अल्प या अधिक  
 प्रकृतियों पर हैं। तीव्र २ धीरे २ दिन के बाद गिने  
 धीरे धीरे जाते ही जाकर पड़ गई हैं वे एक बार

उनके लिए पञ्चाक्षर, पञ्चाक्षर के बाद कुछ उच्च शक्ति  
 के द्वारा रहना जाना करते हैं और इसी मा लीसे वि. के  
 बाद करते हैं कि उच्च कुछ उच्चम से उच्चम है।  
 अब क्या है कल पक्षी हट (अवकाश)। फिर अब हटने  
 का मौका उभरा तब एक बार फिर नीचे तारा का-  
 लिया, आगे दिन फिर करने लगे अली में फिर  
 बड़े स्थाप है। उच्चमने इसी तरह घेरने हटने में ही  
 नहीं आता। इस उच्च उच्च लोगों को बीमारियां क  
 ती <sup>जली</sup> जाती है और स्थिति होती चली जाती है। कफ  
 आदि की वृद्धि होता बहुत से अनुसार भी होता है  
 भरी में कफ बढ़ता है, गली में <sup>चित्त</sup> और पक्ष  
 में <sup>नीति</sup>। बहुतों का परिचय और शरीर में उनी  
 इस से शक्ति वृद्धि होती स्वाभाविक है। कफ पक्ष  
 परिचय शरीर के लिये हानि का एक नहीं, धीरे क्रम  
 नीचे रसा का काला उच्च उच्च निचम रक्ति तारा  
 उच्च उच्चों के अनुसार आद्य व्यवहार काला रहे  
 यदि क्रम्य स्वयं अपने को स्थाप काला एक को

तो अहमिक परीक्षण, जो उनके किचे लाभदायक होने से,

उसके सामने मृत्यु का स्वरूप ला खड़ा करता है।

मृत्यु से पहले दवाइयें आता रहे, लायक उपाय करता

ही परन्तु सब बर्ष होते हैं और मृत्यु के कुछ म

जाता ही पड़ता है। दवाइयों से जहां तक ठी बन

कर ही रहना चाहिये। साधारण भोजन धरम अथर्व

पत्र आता हुआ, अथर्व मंत्रों से बनता हुआ, निपट

रहित यह रहे तो छोटे मोटे बीमारियों मिली अथर्व

ही भी लाभ तो भी यह बीमा दवाइयों के लय ही

जाती है। बीमों तो दवाइयों साथ उल्लेख उल्लेख करते वया

सर्वत्र की विद्वत् करते वाली होती है। छोटे २ बीमारियों

को मारा जाती हुई भी बल कारण को अभी हय -

सकती अल्प बढ़ाते हैं। यथा -

तत्र स्वीकृत नामकी उभे वध जो एक हस्त

की धारण है वीरुं तत्र की होती है। अज्ञाना यथा -

उत्तमैः नै दिवा जाता है। यह हस्त लायक के

उत्तमैः की तो लाभ पहुंचाता है परन्तु स्थिति दोष

बेह को बढ़ाने के लिये यह पर्याप्त है। वरिष्ठों को अपने से लम्बा  
मेरु के वीर्यतापक उरुम के तन्वीर में जब कब  
का भार हीन ही जाता तो कई बीमारियां हो जाती हैं।

६. 'आइसोप्राय' या 'मधु' के हो जाते हैं। इनके  
उत्पन्न भागों खाते हुए के रूप में पर्याप्त उरुम में ही  
सिद्ध हो जाता है, बहुत बड़ा अंश कपात हो कर वीर्य  
तक पहुंचता है। साधारण तौर पर ६० वर्ष के बाद मधु  
में हो जाता है। यों कि उस समय यदि भारी आधिक्य  
आता रहे, वरिष्ठों तक बढ़ता रहे तो यह रोग हो जाता

है, यह रोग आधिक्य में होने से और अधिक विषा  
का भार आने से होता है। यदि विषा का भार  
भोजन करने से पहले ही या भोजन खाकर सीधे ही  
आरम्भ कर दिया जाय, यों कि जबकि भोजन के  
पश्चात् में लम्बी-चार्डिष की वह विषा में वर्ष होने ला  
ती है उरुम भोजन हीन ही पक सकता। आधिक्य में  
ही ही ही चार्डिष। साधारण और मधु वीर्यतापक के  
बचते हैं। मधु को यदि मधु के हो तो उसका



है। सोटे के २५ या ३० मिनिट बाद लघु टोका उपलब्ध  
 जाता चाहिए। शरीर के समग्र मांसपेशी तन्त्र के २५-३०  
 लिटा करे। रात्रि को भोजन के समग्र दुपार  
 पदार्थ न खाते चाहिए। (उत्तेजक काम को मत लगा  
 करे)। तब उपायी के काले से काला न हो-  
 नी अथवा ५३२ ही थोड़ी होगी जे शीघ्र हर जगह  
 कृष्ण रोग बालों के दिने बाधन बढ़े, तब-  
 बंधन का यह अभिप्राय नहीं कि उन्हें बाधन बना  
 नी न चाहिए। तबका यह अभी है कि तब उका (के  
 बाधन न हो) मिलते अदक को। यह यह स्थिति  
 शरीर का आ पजने पर अक का चले। शरीर थोड़ा  
 सा भुक्त हो चके ला; इस प्रकार चलने से बाधा  
 हो जाती है, शरीर युक्त रहता है, अलस्य के तब  
 से अर-बोड़े कृष्ण काम आँसु का ककार है  
 चजन का यह ही प्रकार सवले उत्तर ही *Andalus*  
*of Jackson 3 and 4 Harmonious*  
*development* का निबाना। पानु टाए यहाँ



वेद ने कहे ही ने यह समता का भाव है "सद्गुणं सर्वदक्षिणित्यादि" अतः भी आज यह ही मूल्य है कि "Harmonious development" भाषावत्ता में समता को रखना चाहिये।

कई लोग सोच सकते हैं कि जिस आदमी का श्व काज बेरा सुहीक होता है अथवा मोटा ताजा है, अथवा जो भाट बहुत उदा सकता है अथवा जो बड़ा बलवान् है वह अक्षमारी है यह बात नहीं। नीचे २ स्तक से कुछ उच्च संगठित हुए समी काले ही समते हैं परन्तु सबसे हथक आज इन्डिया का भी अर्थ सम्पन्न नहीं है जो भी पूर्ण अक्षमारी नहीं है। वगैरहक एक को समते हुए भी बड़े २ पहलवार बड़े जीवन होते हैं। एक छोटे से आदमी को कर जाते हैं। शत को घर में १० कदम दूर तक भी जाने में सारे घर के उनके जग निकलते हैं। ये दशा अक्षमारी भी नहीं ही समती

२. Important क्षेत्र ही जाता है।

३. वागल ही जाता है। कुछ पागलों में है -

sexual disease का बीधा बाल के बच्चे हैं, ऐसे बच्चे  
माताओं से

१०. किरासता, उधारी, सूखे बसण्ड, गले की कुरूप  
हो जाती है।

११. आत्मघात करने लगते हैं।

१२. आत्मघात विना विधे ली मरुपय रूप में  
जाते हैं। बच्चे बालक के भी विधे में ही प्रारंभ

अपवास <sup>पद</sup> जाता है। मैंने एक अमेरिकन आर्य  
बाल। उसने लिखा था कि १३-१४ वर्ष के दो लड़कों

में सिगरेट पीने में सुकावलो हुआ सिगरेट पीने के प्रारंभ  
शक्ति का क्षण होने लगा और १-४ वीं सिगरेट पीता २

१३ वर्ष का लड़का मर गया। स्मार्तक चाहे कि  
सकार्य किस प्रकार जाय शक्ति का क्षण नाश हुआ

है। बीमारी से तो बहुत ही जाय शक्ति का क्षण  
विनाशती है।

ये परिणाम मैंने बच्चों के लिये बताया है।  
मैं तो चाहता हूँ कि यहां के उत्तम चाही जाय विधा

को भीख भए बाएँ उन्हे दुइयो के आदर्श को स्थापित  
को, और प्रत्यक्ष का जीवन को। वहाँ भी प्रत्यक्ष  
रखता है सकता है। किसी ने लिखा है, परन्तु प्रत्यक्ष  
से अच्छे हैं। क्यों कि परन्तु सनातनोद्यमि के लिखे  
ही मिलते हैं, अन्यथा नहीं।

वाक्यावस्था में यह भी कहेंगे कि वही पर  
में भी रह सकेंगे। मुझे पता है कि 30 वर्ष की  
आयु के बाद भी जिम लोगों ने संभव से देना  
जाएगा कि वे कि 40 वर्ष में ही सदा के उद्यम  
कारी प्रारम्भ करने लगे हैं। अथवा सब गिरी  
अवस्थाओं का भ्रम का नये किसे से जीवन रक्त  
को।

आगे बताया जायगा कि उद्यम का कर्तव्य से  
आगे है अथवा किन कारणों के विषय ही का उद्यम  
पद का नाम होता है (और उनसे बचने के साधन  
हैं। लोग अतन्त्र के कारणों गन्दे भवित्त्व करते हैं।  
आतन्त्र ही रहता है ही समझता है। जोसेले गन्दगी

को जोड़ें और उन्हें भी ही समझती हैं।

जिस काम के ऐसे नमोना पाएंगे हैं उस काम  
को अभी न माना जायें। इससे पहले ज्ञान का लक्ष्य  
जार्जगॉरे सर्वश्रेष्ठ है। ज्ञान ही श्रेष्ठ है और फिर भी  
समय विभाग बना लेना चाहिए। किसी जीवन के लक्ष्य  
को सामने रख कर उसके शोधनों को प्रति के विषय  
अपने सोच दिख कर दें। इस प्रकार श्रेष्ठ का  
शिक्षण का कोई समय ही न मिलेगा। ध्यान  
उत्पत्ति ही उत्पत्ति का ही अर्थ है। स्वामी भक्तवत्सलजी  
लिखते हैं कि ईश्वर के सौ सुतों का वर्णन  
काला चाहिए। इससे प्रसन्न हैं जो इस पाठन से  
उत्पत्ति पर ही लिखा है कि ५ वर्ष का लड़का लड़की  
भी के आवास में और ५ वर्ष लड़की लड़की के आवास  
में ही ही जानें पावें। मानें कि यह ही है। कि  
गामी, अति ही श्रेष्ठ यथावे प्रदे। वास्तव में श्रेष्ठ  
काल में ऐसे श्रेष्ठ में ही ही है। इतना ही ही  
परिवार होता था उसमें लड़के लड़की का लक्ष्य प्रदे लक्ष्य



# क्रीड़ा

ब्र० जगद्गुरु जी.

आज से मीक २८ साल पूर्व अर्द्धम स्वामी अर्द्धानन्द जी के हाथों से हॉकी ने गुरुकुल में प्रवेश किया था। शुरुआत में नये जोश तथा नयी बलु के कारण लोग इसकी तरफ खूब खिंचे। गुरुकुल के नये नये अधिकारी क्रीडाक्षेत्र का पद जोरदार रूप से स्थापन समझते थे। लड़कों के साथ खेल में एम्बिलित होना कोई छोटी बात न थी कि क्रेडिट अर्जने बराबर वालों में गिर जाय। कई प्रोफेसर विद्यालय के खेलों में प्रतिदिन भाग लेते थे।

थही कारण था जिनने एक गुरुकुल की खेल व्यवस्था तक पहुंचाये। गुरुकुल के अनेक विभाग और तर्गों तथा रसकी और खिंचे पड़ते थे। स्वयं अर्द्धम कुलपिता प्रहीय सागुर्वय में अख जोर दिलाते थे किन्तु कितनी सिस्तेमने बले क्रेडिट अर्जने स्नातक रहने बड़े एक भावत के तामीर दूनीमिष्ट गुरुकुल के लिये लोलापिप्त रहते लगे। मेरे भी शानदार विजय इसका ज्वलन उभाहरा हुआ। स्वयं सहायक मुख्याधिकाता और एक मान्य प्रोफेसर इस दल के साथ गये थे। उस समय खिलाड़ी होना गुनाह न था, खेल को शान्त न समझा गुणमाना जाता था। खेल की शक्यता तथा किस्म के ठेकर काम करने का सबसे अच्छा स्थान हॉकी का मैदान था।

अब ये हमें विश्वाची अर्जने भय एक अर्थात् का एक अग्रज बले थे जो इतिहासे अनेने प्रथम नय ओ समवतथा अलिमवार कुलभाता का सिर निजम से मैची कर विव्य। अहता गेरे से यत्रवाला तक - धूलों की माला लिये अर्द्धम की कुलवारी अर्द्धम अग्रजों में अर्द्धम

कुछपिता की खात अपने पुत्रों की इस क्रिय पर दुःखी-खेदगी की। वह समय-समय पर जो-साथ में मान भी चले गये। खेल-के-बदला ही बिना की उन्नति का साधन हो सका जाते लगाने। कुछपिता-के-जाते ही आधिकारिक-के-भरवें पलटे। खिलाड़ी टापर में उठता लिये शरारत-के-यत्न माने जाने लगे। प्रतिबन्धों की बाध ही माने लगे जो-कुल अभी भी कठोर विकसित भी न होने पाया था कि-काल-के-अकाल हाथों से भस्मल जाता गया। खेल-का-साधन तो प्रवृत्त आता-रहा-पण-मन्द-के-निवेदन-द्वारा-पर-निगम-निगम-झे-ते-लगे।

इसका परिणाम ही स्पष्ट था। खेल-का-वंचा-तो-रह-गया

पर-उसके-अन्त-जीवन-न-रहा। तब-से-हम-ही-हम-

आज भी उसी समय खेल-की-घटी-बजती-है। इसी-काल-नीली-निकरे-तथा-रंग-

विरोधी-हों-के-लिये-खिलाड़ी-मैदान-में-आ-छोते-हैं। पर-वह-अकार-को-

अभिमान-अन्त-के-नेहों-पर-नजर-नहीं-आता-हम-हम-की-अर्थ-ने-उनके-दिल-

मसल-उले-हैं-रही-छठी-कसर-इस-काल-की-ताने-बन्धी-प्रग-पर-देती-हैं।

भारों-तर्फ-से-हम-अपना-कुछ-वांछे-दौड़ती-है। नीचा-सिर-किये-धुम-का-

खेत-में-खेलकर-उन-विचार-ए-वक्ति-के-अर्थ-से-जीत-की-आप-रचना-

शरवती-है।

अ-अधिकारियों-के-लिये-कृपा-दृष्ट-का-पर-एक-अप-

मान-का-स्थान-है। अंत-को-उन्हें-कार-को-दोष-है। जिसे-विद्या-का-

एक-अंग-माना-गया-था-उसे-आज-लोग-उसे-अप-लोग-शरारती-तथा-विकसित-

का-अनु-समकते-हैं। आज-कोई-खेल-का-मैदान-नहीं-है। उद्यम-चपी-खुद-

खुद-लिया-लेकर-चलने-को-प्रेम-है-पर-उन्हें-नेता-चाहिये। जब-तक-कुछ-

समस्या-अधिकारी-इस-तर्फ-ध्यान-न-देगे-तब-तक-इस-की-उन्नति-असम्भव-है।

कुछ-के-आधुनिक-ई-के-जों-में-खेल-का-कोई-दल-अखिल-भारतीय-उन्नति-

जीतना-चाहे-तो-यह-चाहने-कले-की-शरवती-है। खेल-में-सहायता-देने-की-

आजकल

अधिका उद्योगों को अटकना आजकल उसका उद्देश्य बनाया गया है। जिस स्थान के मालिकों ने ६ साल के अन्दरत पश्चिम द्वारा तैयार किया उसे महाविद्यालय जि. सी. पी. का स्थान समझकर दीसर्जिलिया-मक तथा उच्चकी जगह उन्हे कोर्ट मैदान बनाने का न देना सम्भव जन्मा है।

कुलपिता के उद्देश्य नाम पर होने वाले सम्भव में यदि अद्य कल विजय होता है तो भी अधिकारी उसे पुरा समझते हैं। अद्य-निराण-के समय भी कुल के विद्यार्थियों को प्रोत्साहन देने के बदले विजय के लिये कोसना यदि कोई अटकना नहीं तो ओ-न्हा है। ऐसी भयंकर अवस्थाओं में भी जो भाई खेल चलारे है उनके सम्पर्क ही ओ-अलए-की स्मरण कती ही पती है। मण्ड अधिकारियों-की कभी निगारे हमे मौन रखती है। अधिकारियों के अक्षय के साथ २ आज हमारे भाइयों का भी हमें सहयोग नहीं। महाविद्यालय के २० छात्रों में से २२ छात्र दोनो-समय-को-सिर्फ-साथ-काल-१-घण्टे-के-लिये भी खेलने नहीं आते। प्रीतिमयी और-प्रतिभा-वर्षों-तक-स्वच्छ-कले-में-मित-के-पर-हमारे-कानों-मे-आवाज-ही-नहीं-पुंचती। मैं-अपने-भाइयों-को-कहना-चाहता-हूँ-कि-आज-इस-के-सहारे-से-होने-का-सम्भव-नहीं-रहा-जो-व्यक्ति-अपना-सम्भव-अपने-धरो-पर-खुद-खुद-भी-नहीं-हो-सकता-हूँ-उसका-नाम-संस्कार-से-मित-जाना-अवश्यक-है। अद्य-अपने-भाइयों-को-कहना-चाहते-हैं-कि-हमारा-कुल-विजयी-हो-और-यदि-आप-अपने-कुलपिता-के-निय-पर-चले-इन्फ्रिष्ट-की-सफलता-चाहते-हैं-तो-एक-मात्र-जिले-सब-कामों-में-लगा-जाने। अपने-अपने-ओ-हिसते-के-बल-से-प्रतिस्पर्धा-की-बांध-रोक-दीजिये। ओ-एक-बार-पुनः-विजय-पैज-मनी-कहा-जिये।

अन में प्रतिभा से नष्ट निवेदन कता हूँ कि-वे-समय-अपना-बल-भी-क-कले। पुराने-पापी-मौके-पर-अवश्य-काम-देने-हैं-सिद्ध-नये-विद्यार्थियों-का-मान-न-बद-कीजिये। अपने-बल-में-नये-ओ-के-विशेषतः-११-वीं-१२-वीं-के-विद्यार्थी-चाहते। पुराने-सुरति-तो-नये-की-खेल-मुभा-के-को-होते-हैं। नये-व्यक्ति-ओ-नया-जोश-असम्भव-को-सम्भव-कर-विद्यार्थी-हैं। पुराने-यदि-ब-बल ('B' team) में-खेले-तो-थोड़े-ही-दिनों-में-

आपका दल उन्नत तथा विजयी होगा। वर्तमान समय के युवाओं को जो पर विचार-क्रान्ति यद्यपि देनी स्वीर है कि भी अपनी कुछ बुद्धि के अनुसार इस अवधय पर भी प्रकाश उलाने की दृष्टता करेगा।

वर्तमान समय में गुफकुल में कोई ऐसा *goal-keeper*

नहीं जिस पर 'अ' दल के होने का विश्वास किया जा सके। निर्धारित *goal-keeper* को अगुयस्थिति सम्भवतया लम्बी नहीं है कि भी उन्हे अभ्यास की पर्याप्त आवश्यकता है। साथ ही किसी नये को जो गानों के हो-अभ्यास करने तो उन्नत होगा।

मुश्किल महोदय स्वयं *pull back* खेलते हैं

हमें उनकी खेल का भरोसा नहीं। बाइतरफ से आते खिलाड़ी को रोकने की

अभ्यास यदि न किया गया तो सामुद्रय में जोल अवश्य भाव है। आयके

दूसरे साथी भी बिना देरने सुमा देते हैं। उनकी खेल का भरोसा छोटे

हुने भी उनकी मह आहत स्वराज है। गोक मौके पर दूसरे चोरवा-

खाने की सम्भावना है। *half back line* में *right half* चालाकी

पकड़ना नहीं जानते इसकी धिरे लगाना जानते हैं। धीरे से सरकाकर-

साथी को देना आगे पीछे, बाधे बाधे देना। *Crossing-in* माना

ये *half back* के मुख्य कर्त्तव्य है। दम छोना तो आवश्यक है ही।

*left half* मूल नहीं लगा सकते। *right half* अत्यन्त जाया होती

मिठते हुने उन्हे भी है। जेद सदा एक ही तरफ फैकते हैं। यदि एक

साथी *right* हुआ हो तो देखकर दूसरे साथी को दे देनी चाहिये। मूल

सदा *Centre half* के इशारों वादेनी चाहिये। जेद चीन कर जाते हुने

विरोधी को अन्ततक *marking* में तग कला चाहिये। पीछा छोड़ना

गुना होगा। *Centre half* की खेल उन्नत तथा अगुकरणीय है।

कुछ कुम्भिवश *Centre forward* इतना उन्नत नहीं अन्यथा जोल काना

नहीं उन्नत होजाये। *forward line* में *left extreme* तो न के बराबर

*right* के खिलाड़ी यदि जोले में जकर मूल माला जान जाते तो हमारे



भाग्य प्राप्त होते । यदि वहिष्कार किया जाय तो सब सुख प्राप्त हो सकता है ।  
 सुखिया को सुख प्राप्त होने की सुखी बुद्धि होनी चाहिये । Refuses  
 भी उग्र होना चाहिये वस्तुतः प्रबन्ध नीक नहीं है । सुखिया द्वारा  
 भी गति अदल बदल दल में सबको बिना हिचकिचाहट के मान्य लेनी क-  
 हिये । जबतक हमारा दल सुखिया का मान बाना नहीं बीखेगा तब तक  
 विजयी नहीं होसकता । खिलाड़ियों के शैली के अनुसार अनिश्चय दूर  
 जावे पर यह गुरुत्व जुलजाने पर जैद-भादेना, हल्ला मचा देना शोभा  
 नहीं देता । खेल शांत तथा बिना-बोझ-के होनी चाहिये । दल की  
 उन्नति में अपनी उन्नति समझने वाले ही उग्र खिलाड़ी होसकते हैं ।  
 अपने यश के लिये मौकों पर औरों को जैद न देना दल के साथ  
 ही नहीं अपितु कुल के साथ चोरना करना है । सब forwards  
 यदि caser को छोड़कर passing ले खेले तो सब बोल दूरे होसकते  
 हैं । जैसे उक्त लेख की गलतियों को छोड़ते हुवे जो कुछ भी २३  
 उसे गढ़ा करें ।

हंसै यथा क्षीरत्रिपालु मध्याम् ।

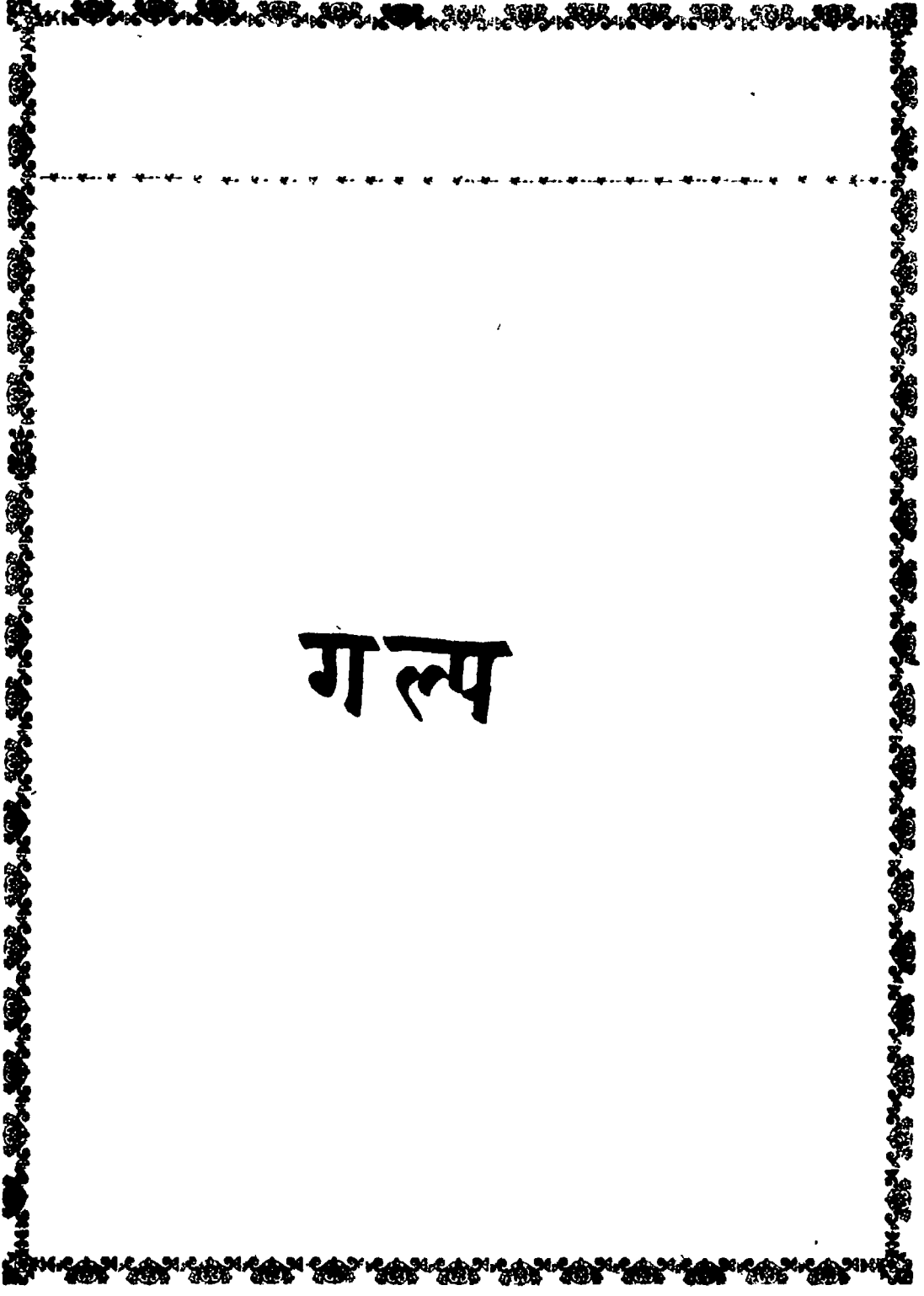
इति शम् ।

कविता गल्प प्रतियोगिता सम्मेलन का परिणाम

\*

गल्प

- ब० सोमदत्त जी चतुर्दश प्रथम को  
परितोषक ६)
- ब० विनायकराव जा त्रयोदश द्वितीय को  
परितोषक ४)

A decorative border with a repeating floral pattern surrounds the page. A horizontal dashed line is positioned near the top of the page.

गल्प



# वे दिन.

(१)

डॉ. विश्वनाथ जी. अ.

मैं मनुष्य समाज में रहने का शुरु से आदी नहीं हूँ, न जाने मुझे मनुष्य समाज से स्वाभाविक ही क्यों घृणा है। इस लिये मैं प्रायः स्कान्त में ही अपने दिन व्यतीत करता हूँ। मुझे स्कान्त में ही आनन्द प्रतीत होता है और इली में ही मेरा सुख है।

हां! वह समय मुझे गीब याद है। जहाँ के दिन थे, रूतन को भी जमा देने वाली ठण्ड पड रही थी कि कुसुम दौड़ी हुई आई और मेरी गोद में गिर पड़ी और गेली आ। मुझे भी अपने साथ लुका ले।

मैंने भी कहा - जा हर समय तो मेरे से कडती फिरती है अब मेरे पास आई है। हाय! मैंने उस कोमल हृदय का कुसुम का उस दिन दिल

दुखाया था यह तुम्हें आज भी नहीं भूलता है। सदा सोचता हूँ आह! तब

उस के दिल पर क्या बीती होगी। विचारी ठिठुरती चुपचाप रमती थी। उस

के अरुणार्द्र अरे होठ हिल रहे थे मानों कुछ कहना चाहते हों।

(२)

कुसुम एक निर्धन परिवार की कन्यारत्न थी। मेरे घर के

पीछे ही कुसुम के माता, पिता का घर था। प्रथम वेदना से कुसुम की

माता मर गई। पिता चार महीने पूर्व ही मर चुके थे। विचारी का पोषण

करने वाला उस संसार में और कौन था।

मेरी माता प्रारम्भ से ही दमालु स्वभाव की थी। उस

कन्यारत्न का पोषण भी मेरी माता द्वारा ही होने लगा। जब कभी मेरी माता

के मन में ये विचार आते कि उस अभागिनी के माता पिता कोई नहीं हैं तो मेरी माता उस नन्ही सी बालिका को दाती से लगा कर उस के भाग्य पर सिसक सिसक कर रोने लगती।

मैं भी दोरा था और वह भी दोरी थी। हम दोनों में आई नरिम

का प्रेम था क्योंकि बालप्रकाल से ही एक साथ चले थे और एक साथ रहेले थे। माता, पिता के मन में यह भाव कभी उत्पन्न नहीं हुआ कि यह अनाथ हैं

और इसे प्रलिय तथा फटे नस्त्र पहिनावे और मुझे अच्छे नस्त्र पहिनावे। हम

दोनों से समानता का व्यवहार किया जाता था और यही बात थी कि हम

दोनों के स्वभाव में अन्तर न था। धीरे २ हम दोनों बढ़ने लगे पर इन

दो हृदयों का अन्तर पास पास ही रहा और न बढ़ने ही पाया जानी

विधाता ने जन्म से ही इस हृदयमूत्र को ऐसा ही बनाया था। जब मैं

उस के रिक्ले तुम सेहरे को देखता था तो उस सब के लिये अपने दिल

की सारी व्याथा भूल जाता था।

(2)

धीरे 2 में मरसे जाने लगा पर सम्म कहता हूँ कि महां

मेरा दिल न लगता था। मास्टर साहब कई बार पाठ दोहरा जाने पर

मुझे पता न लगता था कि पाठ पढाया भी गया है कि नहीं। मेरा मन ही

कहीं अन्वय निश्चय कर रहा होता था। हां। वहीं उस भोली मुसुम

के साथ।

मरसे में मैं ठा हुआ सोचता था कि मुसुम अब मुसुमो

के साथ खेल रही होगी। चलो मैं भी दूही ले कर खेलने चलूँ।

मैं उठ कर बुढ़ी मांगला पर मुझे ज़रूर लगती - जा, चुपचाप अपने स्थान

पर बैठ। दिल तो ऐसा करता था कि इस मास्टर को अभी - ।

पर दिल मसौस कर रह जाना पड़ता था। अब सोचता हूँ कि इस निबन्ध में

मास्टर साहब निर्दोष थे उन्हें मेरी बुढ़ी मांगने का कारण ही पता न होता था।

बुढ़ी होने पर दौड़ना हुमा बंद जाना और रास्ते भर सोचना

रहता कि जाते ही मक़रसे का काम समाप्त कर निश्चिन्त हो कर खेचूंगा।

पर वहां पहुंच कर सब बच्चों के बीच में प्रधान बनी हुई कुसुम को खेलते

देखता तो उस का सौम्य मुस्क देखते ही रास्ते, के मे सारे गम्भीर भाव

हवा हो जाते और मैं भी उसी क्रीड़ा में सम्मिलित हो जाता। मैं पहिले

ही कह चुका हूँ कि वह स्वभाव से ही बड़ी नाजुक थी। उस कारण छोड़ा



सा भी प्रहार उस के दिल पर गहरी चोट करता और बोड़ी सी भी कठोर बात कह देने पर वह रोती हुई आती और सिसकिया भर कर कहती "आ! कुछे कुछ न कहा करो। मैं जैसी हूँ वैसी हूँ।"

दिन मे जब मैं उसे कुछ कह देता तो वह घर के सब बाने में सुरब छिपाये शैली रहती जब तक कि मैं उसे मनाने न आता। सैकड़ों खुशामदे बरबाली और अन्त में उठ कर अरुणाई भरे अपने मढ़े मढ़े राधो से मेरे कपोलो पर सैकड़ो चपते जड़ देती और कहती "आ! क्या वह तुम ने डोक किया था ?

मेरा सिर लज्जा से नीचे कुछ जाल। तब इस से आगे मैं निरुत्तर हो जाता। वह हंसती और पूछती कि अब करोगे ?

सात वर्ष व्यतीत हो गये। मैं रूलाहानाद मैट्रिक परीक्षा दे कर घर वापिस आया। पत्रों के सेहकों अनजान बच्चे मेरे चारों ओर घिपट गये मानो उन को मेरे अति की खबर पहिले ही मिल गई थी। मेरे चारों ओर बच्चे ही बच्चे हो गये। प्रथम मेरा स्वभाव बच्चों से प्यार करने का बहुत होता था तथापि मेरे मन को शान्ति नहीं थी। मेरी आंखें किसी और की ही तलाश में थीं। हां। उसी भोली भली, उसी गुड़िया खेलेने वाली कुसुम की तलाश में।

चारों ओर दृष्टि डालता था किन्तु कोई ऐसा चेहरा तब तक न आता था जिसे मैं कुसुम कह सकूँ। आरिन्द होता भी वहां से जब कुसुम ही वहां न थी। बड़ी देर बाद किलकारिमां मारता, उड़लता कूदता हुआ मेरा भाई देन आया। उस ने न जाने किल का आंखल अपने पुरम में पकड़ रक्खा था। इस से मैंने अनुमान लगाया कि वह मेरे ही परिवार की है। मैंने उस पर

दृष्टि ग़ली और उस ने मुझ पर । मैं मुस्कुरा दिया । उस की आंरमें लज्जा से नीचे झुक गई । मेरी आंरनों के कोनों से अश्रुओं के दो बूंद गिर गये ।

अह ! यह वही कुसुम थी जिस की तालाश में मेरी आंरमें

निचरण करती थक गई थी किन्तु उस में अब पहिले की ही चञ्चलता

नहीं रही थी । चञ्चलता का स्थान लज्जा ने लिया था । वह अब गुस्सियों

से खेसने वाली कुसुम न रही थी । अब उस का बिनाह हो चुका था और

उस का एक बच्चा भी था जिस का नाम "शशि" रक्का गया था ।

जब तक मेरी बुद्धियां रही तब तक मुझे कभी हिम्मत

न पड़ी कि कुसुम से अब एक बार बातचीत भी कर लूं । न जाने अब कौन

सा परिवर्तन उस में आगया था जिस से मुझे भी बातचीत करने में लज्जा

अनुभव होती थी ।

सच कहता हूँ रोज मेरा दिल करता कि, आज यहां से

घटने जाऊँ और आज ही जाऊँ। पर पिता का मोह मुझे कीड़ता न था। क्योंकि

कुसुम की वे शैशव झीउगमे मेरी स्मृति मे वैसी ही थी और मुझे पूरी सम्भावना

है कि उस के दिल मे भी वैसी ही थी। फिर भी हम दोनों मे से किसी ने भी

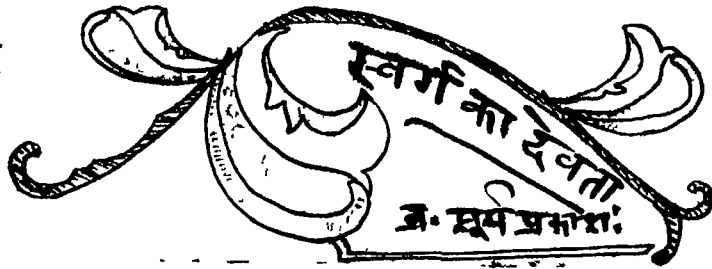
उन शैशव झीउगमे के बुलाने का साहस न किया। इस मे सिर्फ लज्जा का ही

ब्यनधान था। फिर ने सारे दिन उसी मुसुमर 'शशि' को रिमलाते, पिलाते

ब्यतीत होते थे। उसी पर मेरा सारा प्रेम केन्द्रित था। मुझे भी उसी पर

सम्बोध था क्योंकि नन्हा भी माता की ही प्रतिकृति होती है और वह

नन्हा बालकन मे ही हृदय का धनी था।



मैं उस 'स्वर्ग' के देवता' के लिये क्या लिखूँ ? लेने 2  
लिखूँ, का हंसते 2 लिखूँ, नुसखरा कर लिखूँ या बिबाद-मुक्त इन्द्र  
लेकर नुस लिखूँ ? उसके युग लिखूँ का अन्तयुग । वह तो 'त्रीणा' का ।  
उपर ले भी त्रीणा और उपर से भी त्रीणा । जहाँ से चलो, वही  
से 'त्रिणा' की अलख । कोई क्षेत्र ले लो सब से आगे मेरा 'कुलपिता' ।

X X X X

मैंने उसे देख कर भी नहीं देखा । सब तो मैं 'न' के गण  
ही का जब त्रिणा का । जब मैं नुस बड़ा हुआ तो वह 'सर्वव्यापक'  
हो गया । मेरे लिये उसे 'नकुलेनम अमरवाहीद' के लिये - लिखना उस  
की निम्न करण ही होगा । लिखना हो तो जीवन द्वारा लिखो । वे. युक्त  
रस से दिली ने वृधा - पण्डित जी ! आप 'छात्री दयानन्द' का जीवन  
गति में नहीं लिखते ?

उपर का नदि अभी सचारी होने में देर है । मेरा 'जीवन' वह नहीं  
है । अपने गला नुस हो गया ।

X X X X

दयानन्द का का ? सत्य की प्रफि । बंधा का ? कर्तव्य का स्थिर

सागर का गंगीर । जिधर बुकल, विश्व उधर ही । जाहुन्ध म्हा

हमा गन्धी ने संसार को अपने चरणों में न-बाहले दुष्ट भी

बुझा लिया और प्रथम स्वयं 'उलटने' चरणों में लोट पोट

हो गया। वही उलटनी महत्ता थी, महत्ता थी, शौर्य का ।

x x x x

वह विधवा का । धर्म, राजनीति दोनों उलटने थी । कभी

धर्म ऊपर ले राजनीति नीचे और कभी राजनीति ऊपर ले धर्म

नीचे । हृदय में धर्म और राजनीति का झट्टा उड़ था । वे दोनों

ही । पर हृदय फिर भी शान्त, अथाह - युगपरिणा ले पूर्ण ।

x x x x

बैठे महान लोकिये, पश्चिम की बाढ़ का ?

गंगा भी 'सें' से बैठके दिखला दिया कि यों ।

मैंकोले बहला का, बस मेरी बात मान कर भारत नर्म में

जुदा ओगल भाषा का वाधमम कर दो । भारत में ही वहु अ-

प्रेम पैदा होने लग जावेगे । बादा भारत नर्म ५० वर्षों से इतना हो

आयेगा । उसे वह मादूम न का गदक यहाँ पर अश्लोक की ललान

बसती है । जिसने अपने राजत्व काल के ही के सुध ही वर्षों में आधा

संसार भर का भुगामी बना दिया। अहुतन्ध ने शोर नहीं मचाया ।

हिमालय की उपलब्धता में, आगीदधी के दिनादे, निर्मल मान के

नीचे 'बस' प्रथम कर दिया। उसका तृप्तिमान रूप सुलभ है ।

मैंकोठे का निरगत नूक गया, बार खली गया, प्रहार तिरछा  
 था। गंभीरता में संवत्सरा आ-दिधी। आहुतनन्द तुमके से काम  
 था गया। मैंकोठे खड़ा लाकला रह गया। उसके मुख सप्त-पटल  
 मूयम की उन्हे, क्षणभर में-बढक करते ही. अनन ने बिलीन हो  
 गई। आज उरुदुल 'भारतीयता का नमूना' और आधुनिक भारत  
 का नाम लीक है + उसकी अमर अभिर सृति है- सिद्ध है।

X X X X  
 वह आगे बढ़ता ही गया। नहीं नहीं रुका। बहुत रोना, पर  
 वह बढ़ता ही गया। 'कानिं बदी' पर उले बीये हटाने के उपाय लगा  
 के दो कदम और आगे बढ़ा गई।

X X X X  
 वह रोना था, पर क्रूर नहीं-दया का अकार। वह सदा  
 सागर का - पर त्रिदशम मूने माना नहीं - उसका उद्देश्य का, देश  
 जाति, धर्म, समाज और प्रत्येक व्यक्ति की सेवा करना। अनुभव  
 मात्र में अनुभवल देवना। प्रेम का केंद्र था - वह उसके प्रेम  
 में संसार ओह-प्रेत का।

X X X X  
 देश-भक्ति, जालीबला, धार्मिक-जन सब कुछ उस में था। क्या  
 नहीं था? दुष नहीं। कोलीभरा समुद्र का। जो जाते ले ले। सबके  
 लिये दुःख। विरह की विवृति का। उषा का बना था। अनुभव-  
 लक्ष की जीसी जालीबला नहीं। पदा-सिद्धा नहीं पर विद्वान्-समाजदा।

इंद्र का बगैर है और इस का योग्य दृश्य था। पक्षपात वंशव्य  
 संकीर्णता से रहित विद्यालय। क्या करें? वह सुधारक का, प्रचारक  
 का, वरिष्ठ का, मौलवी का। मिर्ज़ा, मस्जिद और मस्जिद तीनों उठने  
 लिये न थे वे। वृत्तवृष्ट की पवित्र साम्राज्य में बेंगला, कोकिलो  
 ने <sup>उरु</sup> ~~एक~~ माला, भागीरथी होने बजाली और पवन उसकी मुर-बन्धो  
 और बेंगली - वह जब भगवान् रस बर 'अहं ब्रह्मास्मि' - भगवान्  
 'स्मान्मल' के दिवात्मक रूप दे रहा होला।

X X X X

उसकी मौल थी, जिसने इसे विद्या दिया - तथा सत्त्व-जन्म-सिद्ध  
 दिया। 'जिसने' ब-बाबा 'उली' ने जारा। गंधी करते हैं मुझे रस मौल  
 से ईर्ष्या हैं।

X X X X

उसने एक हाथ में जब अपने प्राण रखे तो आच से  
 आच सफलता - बली कदुमरी से उसदे हाथ पर आ गयी। एक एक  
 इच्छेनी में प्राण हो तो दूसरी से सफलता आच से आ जाती है।

X X X X

असू में 'बीने में और लालों में न नी लाल' को नेरी  
 यह कदुमारी समर्थि हो।







“ क्यों गई तुम इतने उदास क्यों हो, तुम्हारा चेहरा बताता है कि तुम बड़ी तकलीफ में हो। ली मे १५) है, तुम ईसाई हो जाओ तुम्हें हम बचड़ा खाना बगैरह देंगे इस प्रकार के मीठे तथा लुगाने वाले वचन एक फादरी एक मंगी से कह रहा था। बात इस प्रकार हुई—

दुर्भिक्ष का काल था। जहां तहां अन्न २ तथा पानी २ की पुबगर सुनाई दे रही थी। मला इस से बचना ईसाई मिशनरियों को और कौनसा सुअवसर प्राप्त होगा। सर्वत्र इस पुबगर के लोग अपने धर्म की संस्था-वृद्धि कर रहे थे। मिलन पुर गांव में जाकर उपरोक्त शब्द एक फादरी ने मंगी से कहे। दुर्भिक्ष में १५) तुम्हारे को भी लुगाने वाले होते हैं। उस गांव में बड़ी उच्चवर्ण के हिन्दु लोग ईसाई को गप्पे थे। दो मंगी ने घर के, उन में से एक घर के प्रमुष्णों के

१५) के लोग से ईसाई धर्म ग्रहण कर लिया था। दूसरे घर में एक बूढ़ा तथा एक २ वर्ष की लज्जा नाम की लड़की तथा १३ वर्ष का हरि नाम का एक लड़का रहता था। उन्होंने एक २ उत्तर दिया कि जब तक तब में उाण हैं तब तक हम अपने धर्म को नहीं छोड़ेंगे।

वर्ष अन्तु समाप्त हुई। सारी अन्तु में एक बड़ा बूढ़ा पानी न बरसा। शरद भी सूखी २ व्यतीत हुई। ग्रीष्म के दिन आये, नदी नाले सूख गये। मिलनपुर के दो कुंवाँ में पानी रह गया, एक से उच्च वर्ण की जातियाँ पानी पीती थीं और दूसरा कुंवाँ पशुओं की पानी पीने के लिये था। उन नरपिशाचों ने अद्भुतों के लिये पानी का रास्ता भी बन्द कर दिया। दूर पर एक सरोवर था वही से 'हरि' पानी भर लाता और अपने बूढ़े को पिलाता। एक दिन वह सामने वाला एक घर पर पानी लेकर न आया। घर में पानी नहीं रहा, बूढ़े ने पानी २ चिल्लाना शुरू किया। विचारी लड़की भी ब्याह काली, पर वह भी पितृ-भक्त। लोग ले वह गाँव के कुंवे से पानी लेने चली। ज्यों ही वह कुंवे पर चढ़ी एक

जबान सोटा लेकर वहाँ आया २ ऊपर और उसे धमकाया।  
 पर वह गीड़ गिड़ा कर बोली, मैं नाथ तुम्हें थोड़ा पानी लेने  
 दूँ। मेरा नाथ व्यास है। तुम्हें जीव दया का पुण्य लगेगा।  
 तुम्हें --- आगे कहती थी कि वह जबान उस के आशीर्वाद  
 से झुक होकर उस पर लुरी तरह पिल पड़ा। वह २ वर्ष बी  
 लड़ती वहाँ तक सहती, मर खाने २ बेहोश होकर गिर  
 पड़ी। उधर वह व्यास बड़ा पानी २ पुकार कर रहा था।  
 उस ने परमात्मा से आशीर्वाद की कि - हे देव! परम-पिता  
 परमात्मा तू तो दान बन्धु है, कृपालु है, दान-रक्षक है  
 तो फिर व्यास आज मेरे से विशेषण व्यर्थ है। हे कृपा-  
 सिन्धु! हमें बचाओ। हे हिन्दुओं! व्यास तुम्हारा वह अल्प  
 चर नाथ पुत्र है, व्यास पशु भी हम से बच गये जो उन  
 को पानी पीने देते हो और हमें व्यास ही मारते हो।  
 हे देव! अरे हरि! पानी व्यास --- बस फिर आगे उह के  
 शक नहीं सुनाई दिये। वह आगगा हिन्दु-धर्म को  
 अपनाने वाला हिन्दुओं के पर-पात के कारण आज  
 पृथ्वी पर न रहा।

रात हो जाने पर इतरे वहां आया, उस केनारे को भी किसी से हू जाने के कारण खूब मार पड़ी भी जिस से वह वही बेहोश हो गया था। इधर लज्जा भी जब होश में आई तब जैसे जैसे चर गई। दोनों पितर की दशा देखकर सबका हो गये। उषम तो शूबक-पास की पीडा और मार की पीडा से दोनों बूझा हो गये थे, ऊपर से पितर की मृत्यु ने जले पर जलक का काम किया। दोनों हा थिरा! हा हिन्दुको यह का बेहोश हो गये। फिर उस सारे परिवार के दूसरे दिन का शूर्प न देखना और नीतों वाले हिन्दु-धर्म का शाहाद हो गये

समय का वेग बड़ा उबल है। इस बात को ५-१५ साल हो गये, जमाना बदल गया। सब जगह हरिभाबली दामाई मिलनपुर भी इसी के समय २ बदला। गांव में दो तीन बार समाजियों के हो गये। उसी समय की बात है कि एक पादरी वहां पर आया, लोगों ने उस का सत्कार किया, घर में बैठाया, पुराने लोग उसे पहिचान भी गये कि यह वही पादरी है जो पहिले मंगी था। पर वह अब किसी बन चुका था। अब उन्हें उस में कोई दोष न देखकर था, यद्यपि वह अब मोक्षन खाला

महीनों में शायद ही स्थान चला था। जब वह ब्रह्म गान्ध  
 से चला गया तब एक उर्ध्व गार्ध ने सब को बुला कर समा  
 की ओर उपदेश दिया कि भाइयों! अब आत्म संक हिन्दु-धर्म  
 की भूल चुके हो। आज जो वादरी आता था वह लड़ेले भोग  
 था। आपने उस का खतबरा दिया पर अपने धर्म बालों से  
 आप सहजप्रति नहीं रखते। हमारे ही अत्याचारों के कारण  
 एक मंगी-कुटुम्ब हिन्दु-धर्म पर शहीद हो गया। आपने  
 उसकी कदर तक न की और एक विधर्मी को घर में बै  
 ळाया इत्यादि २। लोगों ने उपदेश का रहस्य समझा। उन  
 के मन में यह उपदेश अस्तर गया। वे लोग अंच नीच के  
 भाव को भूल गये, सब आर्ध हो गये। और जो बाहर से मो  
 लवी या वादरी आता, उसे भी शम्भार्य में हरा कर आर्ध  
 बना लिया। सारे गांव में खेच हो गया। सब भय र हो  
 कर रहने लगे। सब हिन्दु-धर्म के सच्चे रक्षक बन गये।  
 सब लोग अपने गांव की उन्नति में लग गये। सच है कि  
 'संघे शक्तिः कलौ युगे'।



## प्रणय

वन्द्यमयी

प्रणय! मैं तुम्हारा क्या कर्ण कहीं सच  
 मुच तुम अपरिमेय हो, तुम्हारा वैभव अनन्त है। गगन  
 चुम्बी राज-शासद में, उस्तुहित पद्म-पुंज के परण से  
 आनन्दित आराम में, शक्तिवती रागिनी के स्निग्ध सौ-  
 न्दर्य रंजिता रंग-भूमे में, कविता दिशोरी के मधुर  
 पद लगलित से शंखेक साहित्य सदन में, चंचला बहि-  
 चपल चितवन में, मन्दारकिनी के विमल कक्ष स्थल  
 में, प्रतिविम्बित कमनीय कलाधर की सरस इक्ष-  
 चार में तुम अपनी विरति से विभूषित होकर सौ-  
 न्दर्य की दिव्य ज्योति मध्य में, अनन्त आनन्द का पुन-  
 तक होकर अपनी आनन्दमयी शर्ते का सागर करि-  
 यद दे रहे हो।

प्रणय! जब मैं तुम्हारे मार्ग को सहज

सुख, सबल संसार सौख्य सौख्य और सौन्दर्य से  
 युसमृद्ध समझ कर उस पर अग्रसर होने के लिये  
 प्रस्तुत होता हूँ तो रह जाता हूँ। वास्तव में प्रेम-  
 पथ जितना सुगम है उतना ही दुर्गम भी है। वह  
 जितना सुखमय और सरल प्रतीत होता है उतना ही  
 दुष्कर और कठिन भी है। वह जितना विस्तृत और  
 आनन्दमय अग्रसर होता है उतना ही संकीर्ण और  
 कण्ठकावर्ष भी है। ~~सुख~~

प्रणय। यह प्रेम-पथ श्रेष्ठतम और सुसु-  
 मारतम होते, हुवे भी लोह-शंखलाओं से कठोर और  
 सुदृढ़ है। संसार प्रणय-भाव को प्रणयों के प्रती सहज  
 प्रयत्न दया तथा न मालूम किन २ मंगल कामनाओं  
 का कारण मानता है। फिर दूसरस्य प्रेमी जन के लिये  
 किसी व्यक्ति में अनिष्ट शंकाओं को क्यों उत्पन्न कर  
 देते हैं ?

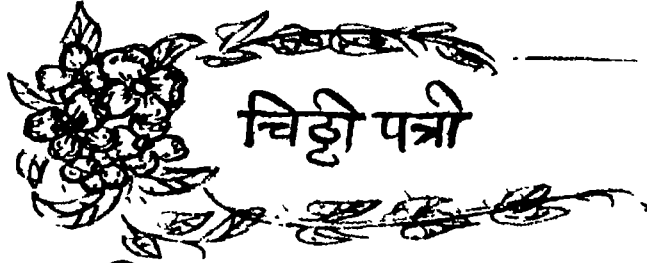
प्रणय! तुम वास्तव में ही अग्रसर हो, अथवा  
 हो। महात्मा शण्डिली मन्दाकिनी में, बलदेव बुजितान



कालिन्दी में, कांचनमयी कैलाश कन्दरा में, काग्य  
 परिपूर्णा चक्र राग में, सुरगीत सुर वादन में, नक्षत्र  
 खनिता कामिनी कामिनी में, सुधासयी शरच्चाम्बुका  
 में, तुम सर्वत्र समान भाव से विचरण करते हो।  
 संसार तुम्हीं से अपूर्व-त्याग की, समस्त गुण शास-  
 गाहकता की, अद्वितीय दया की दीक्षा लेता हूँ  
 और अध्येय श्रद्धा तपसा गाँधी की मानुष्य भावता को  
 भरा करता हूँ। तुम संसार के लिये स्वर्गसोपान  
 भृङ्गला की प्रथम सोपान हो।

प्रणम! जोहें संसार तुम्हें समस्तसृष्टि  
 का मूल और आराध्य मान कर तुम्हारी पूजा करे, तुम्हें  
 संतुष्ट करने का प्रयास करे पर मेरे लिये तुम फिर भी  
 अगम्य हो, अदभुत और रहस्यमय हो।

शुद्धनन्द सप्तमः



## चिट्ठी पत्रों

आर्थिक प्रतिनिधि सभा पञ्जाब,

गुरुदत्त भवन लाहौर ।

पत्र सं. ८६१७ ति. २२-८-<sup>१०८ दशमन्द</sup><sub>१९२५ मित्र</sub>

श्रीमान् पं० चम्पति जी

प्रधान गुरुकुल प्रबन्ध समिति  
गुरुकुल काङ्ग्री

श्री स्वर्गीय भद्रानन्द जी के बलिदान की स्मृति में

भद्रानन्द सप्ताह मनाने के सम्बन्ध में आप से बात-चीत की

थी, कि आप इसका प्रोग्राम सब गुरुकुलों तथा आर्थिकसमाजों में

मनाने के लिये तैयार कर दें, आपने वह तैयार कर लिया है और

इसपर कार्यवाही कर रहे हैं तो बृषया सूचना दें, अन्यथा

आर्थिकसमाजों में इस सप्ताह को मनाने के लिये मैं उचित

कार्यवाही नहीं करूँ। भद्रानन्द बलिदान दिनस ४ पौंस तदनुसार २३ दि

सम्बर शुक्रवार को होगा, समय कम रह गया है अतः शीघ्र ही उत्तर

द देने की कृपा करें।

श्री गुरु मन्त्री जी

अर्च प्रतिनिधि सभा लहौर

श्री गन्गसते !

आप के पत्र संख्या २६-४६ सं. २२  $\frac{2}{2}$  के उत्तर में निवेदन है कि अंदाजन्द सहाइ का प्रोग्राम तैयार करावे यहाँ से सीधा निजवा दिया जावेगा और नही प्रोग्राम सब गुरुकुलों तथा आर्य समाजों में भी भेज दिया जावेगा । आप भेजने का कन्च न बरी

हैं। तथापि उनके आदर्शों तथा प्रातियों का वह श्रेष्ठ चित्र-जै  
 आज भी भारतीय आधुनिक शिक्षा विदों में नवीन स्मृति  
 का संचार कर रहा है और आगे भी सदा करता रहेगा,  
 इस उद्बुल में ही दृष्टि गोचर होता है। शिक्षा के कार्य में  
 लगा हुआ भारत बलिदान हुये हुये श्री स्वामीजी के प्रति  
 गहरी है और उनके बलिदान के दिन उनकी स्मृति में अ  
 पनी प्रडाञ्जलि अर्पित करना केवल अपनी कृतज्ञता  
 का प्रकाशन करना है। देश तथा विदेश के अर्थसमा  
 न हो- इस बलिदान दिवस, ही उस योगम के अनुकार  
 मनावेंगे ही जो शीघ्र ही प्रकाशित होने वाला है किन्तु  
 देश की सभी शिक्षा संस्थाओं का कर्तव्य है न के अगत  
 शिक्षा चरति, संस्कृति तथा सम्प्रदाय का विचार न  
 करती हुई उस महान् शिक्षा विद के प्रति अपने सम्मान  
 के भाव को प्रकाशित करें। जिसने हों उद्बुल  
 जैसी संस्था प्रदान की जो आज सभी राष्ट्रिय कनि  
 चालों में मात्री हुई प्रमुख संस्था है।

१०२ वी प्रधान जी ( का. प्र. १४ स ) को श्री. आचार्य जी के साथ  
भोजन करा। २ दिनांक का।

श्री प्रधान जी !

सादर नमस्ते.

सेना में सन्निवय निवेदन है कि हम "प्रधान"   
 नसिदानोत्सव के उपलक्ष्य में सात दिन का ही अवकाश   
 चाहते हैं। सभा ने इस महत्वपूर्ण त्थोहार के लिये केवल   
 एक दिन का ही अवकाश स्वीकृत दिया हुआ है जो कि   
 केवल कार्यालय (office) के लिये ही स्वीकार किया गया   
 प्रतीत होता है और ऐसा प्रतीत होता है कि सभा ने इस   
 विषय को नहीं विचार कि बुलशुग स्वर्गीय बुलपिता   
 की स्मृति को किस प्रकार मनाया करते हैं पसन्द करेगे   
 हम आपसे निवेदन करना चाहते हैं कि यही त्थोहार   
 है जिस पर हमारे बहुत से रचनाकार होते हैं। वे सब   
 एक दिन के परिमित समय में होने सर्वथा असम्भव हैं   
 विद्यालय में हवी, नुरती, लम्बीदौड़ तथा अन्य   
 बहुत सी खेलों के सामुख्य, निजय दशमी के अनुसार   
 ही हो जाया करते हैं। परन्तु महाविद्यालय में यह त्थोहार   
 सप्ताहावकाश के दिनों में ही आ जाता है, इसलिये नये

भर में इसा कोई सुअनसर हमें प्राप्त नहीं होता जिस पर  
 इस प्रकार के सामुदायों द्वारा प्रह्लाचारियों को शारीरिक व्यायाम  
 तथा अन्य शिक्षा सम्बन्धी विषयों में रुचि की बहा-  
 ने के लिये प्रोत्साहित किया जा सके। इस प्रकार के सामुदायों  
~~एक प्रह्लाचारियों के बिना महाविद्यालय का वर्ष भर का~~  
 जीवन जीस्त और प्राणहीन ही रहता है, कुलपिता स्वामी  
 प्रह्लाचन्द अपने कुलपुत्रों की शारीरिक, मानसिक तथा  
 आध्यात्मिक और हर तरह की उत्थिति चाहते थे और इसने  
 लिये कुलपुत्रों को हमेशा उत्साहित किया करते थे  
 हम चाहते हैं कि उनके स्वर्णि सप्ताह से ही हम नवजी-  
 वन का संदेश प्राप्त किया करें। आशा है कि समा-  
 हमारे निवेदन पर गम्भीरता से विचार करेगी।

(2)

स्वामी प्रह्लाचन्द जी की मृत्यु के बाद पहले वर्ष  
 श्री आचार्य जी ने एक सप्ताह का अवकाश दिया था, दूसरे  
 वर्ष समा ने यह पक्ष धर दिया कि प्रह्लाचन्द बलिदानोत्सव  
 के उपलक्ष्य में एक ही दिन का अवकाश होगा। परन्तु

उत्तुल में दिया सब रूप से प्रतिवर्ष लगभग रु. सहाह का  
अवकाश छोड़ी जाया करता था। आचार्य जी सभा की आशा  
के अनुसार रु. ही दिन का अवकाश दिया करते थे,

(१९४० के फरवरी अनुसार) चणु हम, उस साल में आने कल

हुट्टिकाँ उस समय न लेकर, इसी अवसर पर ही ले लिया न

ते थे, जिससे हमारे किसी भी कार्य में बाधा न पड़े और

हम इस प्रदानद सहाह को भलीप्रकार उसाह पूर्वक भोग सके

परन्तु अब भी सुरमाधिष्ठाता जी की आशा के अनुसार प्र

वेद चौहर का अवकाश उसी अनुसार पर ही लिया जा

सकता है किसी अन्य अनुसार बर नहीं। इसलिये हमारे

सामने यह निम्न समस्या हो गई है कि हम किस प्रकार प्र

त्य कुलपिता की स्थिति को सफल बनायें। आशा है

कि सभा एक सहाह का अवकाश स्वीकृत करके इस सज

स्था को सुलझा देगी।

(३).

सब आर्थसमाजों और स्वामी प्रदानद जी ने नाम

पर संस्थापित सभामें स्वामीजी की वाचन स्थिति में में





निराकर एक सप्ताह का कार्यक्रम निर्धारित करती हैं। विशेषतः  
 युक्तुल तो स्वामीजी के प्रयत्नों का स्वमान फल है और  
 युक्तुल ही ~~अपने~~ आरणों का प्रतिरूप कहा जा सकता है।  
 स्वामीजी भी स्मृति को असाह र्बन मानते हैं, अमरि  
 संस्थाओं से केवल सभा द्वारा सप्ताह एक सप्ताह के अन-  
 काश के स्वीकृत न होने के कारण पीछे रह जाय यह  
 हमारे से नहीं सह जाता और इससे हमारे हृदयों में  
 बहुत डेस पहुँचती है। इसलिये हम सभा से प्रार्थना करते  
 हैं कि जिसप्रकार अन्य संस्थाओं में स्वामीजी की प्रणय-  
 ति को सत ही निरतर मनाती है उसीप्रकार हमें भी  
 मनाते ही आज्ञा प्रदात करें।

इससे स्पष्ट सूचित होता है कि सभा यह आनन्द  
 सपत्ती है कि युक्तुलों में प्रदानन्द सप्ताह मनाया जाए  
 हम सभा से प्रार्थना करते हैं कि सभा अपने निश्चय के  
 अनुसार हमें प्रदानन्द बलिदानोत्सव के उपलक्ष्य में एक  
 सप्ताह का आनन्द प्रदान करे जिससे हम प्रदानन्द सप्ताह  
 के सच्चे अर्थों में प्रदानन्द सप्ताह के रूप में मना सकें।

(४)

ब्रह्मानन्द नलिरानोत्सव के उपलक्ष में एक सप्ताह के अवकाश के लिये यह हमारा प्रथम प्रमाण नहीं है। हम प्रतिवर्ष आचार्यजी से इसके लिये प्रार्थना करते रहे हैं। गतवर्ष आचार्य जी ने इस विषय पर विचार करने के लिये व्याख्याओं की एक समिति भी चुनवाई थी। उसमें व्याख्याओं का बहुमत एक सप्ताह के अवकाश के पक्ष में ही था। इस वर्ष आचार्य जी ने हमें अपनी भांग सभा में उपस्थित करने की आज्ञा प्रदान की है। हम आशा करते हैं कि सभा हमारी प्रार्थना को स्वीकार करेगी, जिससे हम अपने मुलविता की पावन स्मृति को सफलता पूर्वक मना सकें।

(५)

कई लोग कहते हैं कि आर्यसमाज के संस्थापक श्री स्वामी रामानन्द जी के निर्वाण के अवसर पर एक दिन का ही अवकाश होता है तो स्वामी ब्रह्मानन्दनलिरानोत्सव पर भी एक दिन का ही अवकाश लेना चाहिये इससे अधिक नहीं। इससे उत्तर में सेना में निवेदन है कि सब आर्य समाजों ऋषिदत्त के निर्वाण के अवसर पर स्वदित के कार्यक्रम का आयोजन

करती है परन्तु स्वामी जी की स्मृति में भद्रानन्द सप्ताह ही मनाती है। और इसने अतिरिक्त उसकुल के संस्थापक के तौर पर जितना हमारा अपने कुलधित स्वामी भद्रानन्द से प्रति सम्बन्ध है उतना प्रतिष्ठ सम्बन्ध अन्य किसी के साथ नहीं है। और स्वामी भद्रानन्द जी की स्मृति आज भी वैसी ही बनी हुई है जैसी आम्बी रत्न के स्वर्ण नार बनी हुई थी। आज भी हमें यह विराणल नाम 'स्मृति' हमें वैसी ही आश्रित प्रतीत होती है जैसी पहले। इसलिये हमारे लिये इस अवसर के महत्त्व को अनुमान करते हुए आप अवश्य स्व सप्ताह का अवकाश प्रदान करेंगे।

(६).

हमने भद्रानन्द बलिदानोत्सव के अवसर पर स्व सप्ताह का अवकाश आपसे चाहा है परन्तु हमने यह अवसर इस विचार से नहीं बनाया कि हमारे सप्ताह का क्या कर्म हुआ हुआ करता है। जिसके वेम और उत्साह पूर्वक मनाने के लिये स्व सप्ताह का अवकाश चाहते हैं।

(७) इतिवर्ष भद्रानन्द सप्ताह के दिनों में अखिल भारतवर्षीय

प्रधानमन्त्री की इनिशिएटिव का आयोजन किया जाता है जिसमें कि  
ला सहरपुर, देहरादून और अन्य स्थानों की टीमों शामिल होती हैं।  
जिसमें विजयी दल को (प्रधानमन्त्री मल विजयोपहार, 30 और  
Winners तथा Runners को पारितोषिक में पदक दिये जाते हैं।

3. कबड्डी, लम्बी दौड़, तेज दौड़, रंगत आदि देसी खेलों के  
विद्यार्थियों में साप्ताहिक होते हैं और पारितोषिक भी दिये जाते  
हैं।

4. इतने दिनों सब कविता गद्य प्रतियोगिता सम्पन्न भी होता  
है सब अच्छी गद्य और कविता करने वाले पहले दो तीनों को पारितोषिक, <sup>मिता</sup> दिये जाते हैं।

5. एक अखण्ड बहुरूपी होता है जिसमें चारों नेटों का पाठ  
होता है और जिसकी पूर्णहृति श्री भाचार्य जी प्रधानमन्त्री मन्त्रिमण्डल  
कर करते हैं।

6. हमने निरन्तर विद्याप्रेमि अखण्डों के सम्बन्ध में कार्य कर रहे हैं।

7. प्रधानमन्त्री मन्त्रिमण्डल के दिन को प्रारम्भ में जल्द निकलना है। स्वामी  
जी के जीवन के अत्यन्त पहले पर विद्यार्थियों तथा व्याख्यातों के व्याख्यात होते  
हैं और इसी दिन रात्रि की सीपावलि भी मनाई जाती है।

8. सप्ताह भर गत-बाल नृत्यप्रकार का गीत भी होगा है।

इस प्रकार अखण्ड कार्यक्रम के कारण इस क्षेत्र का हमारे विद्यार्थियों  
के प्रति अधिक महत्त्व है यह आप अच्छी तरह समझ ही गए होंगे  
तथा हम आशा करते हैं कि हमारी प्रयत्नों को अस्वीकार न करें, निरन्तर

मान्त्रिमण्डल के अनुभव.

## कुल मंत्री

ब. वीरभद्र जी

कुलमंत्री जी के अनुरोध को टालना उचित न समझ कर मैं अपने गत वर्ष के कुछ अनुभव लिखने के लिये उद्यत हुआ हूँ। मैंने कभी स्वयं में न सोचा था कि कभी मुझे इस प्रकार के उत्तरदायित्वपूर्ण कार्य को संभालना पड़ेगा। कुलमंत्री मैं जो गुण होने चाहिये उन का मुझ में सर्वथा अभाव है पर अनुभव करते हुए भी मैंने अपने कुछ सहयोगियों की प्रेरणा से इस मुश्किल कार्यभार को अपने कंधों पर लेने का साहस लिया। मैं अपने काल में कुलमंत्री के कर्तव्य को अच्छी तरह जानना सका हूँ या नहीं इस पर मैं कुछ नहीं लिखना चाहता। सार्वजनिक जीवन और विशेषतः तथा इस उत्तरदायित्वपूर्ण पद पर सार्वजनिक जीवन व्यतीत करना मेरे स्वभाव के सर्वथा विपरीत था परन्तु फिर भी आप ने मुझे आपकी सेवा करने का अवसर दिया इस के लिये मैं आपका धन्यवाद करता हूँ। इस पत्र में मैं गतवर्ष जो विशेष रचनात्मक कार्य चाहिये उन का वर्णन करना नहीं चाहता।

अपि तु अपने गतवर्ष के अनुभव के आधार पर कुछ Suggestions देना चाहता हूं जिन से शायद वर्तमान कुलसंजी जी और आगे आने वाले कुलसंजी कुछ लाभ उठ सकें।

१- सतीहर दिन की धुईयां —: सब से पहले मैं सतीहर दिन की धुईयों के बारे में कुछ कहना चाहता हूं। साधारणतया महाविद्यालय के विद्यार्थी समझते हैं कि सतीहर दिन की धुईयां बरवाता कुलसंजी के राय में होती है परन्तु अनुसुल के नियम के अनुसार ये पांच दिन की धुईयां आचार्य जी के राय में होती हैं और ये धुईयां केवल सतीहर दिनों के लिए ही नहीं होती अपि तु राजनेतेक नेताओं के मृत्यु दिवस की धुईयां इनसे ५ दिनों में से होती हैं वहाँ कि अनुसुल की नियमावली में राजनेतेक द्वारा ही महत्वपूर्ण दिनों की कोई धुईयां स्वीकृत नहीं है। अनुसुल की परंपराओं के अनुसार वर्ष में ५ दिन की धुईयां कुलसंजी के ही राय में होती हैं। इस वर्ष आचार्य जी ने कहा कि तीन दिनों की धुईयां कुलसंजी करवा सकता है और अवशिष्ट दो दिनों की जब मैं आवश्यक समझूंगा करूंगा। परन्तु मेरी सम्मति सतीहर दिन की बरवाता जाने वाली पांचों धुईयां



आचार्य जी के ही राय में लेनी चाहिये क्योंकि बहुत बार  
 विधार्थी दुष्टियां चाहते हैं परन्तु आचार्य जी स्वी देना चाहते  
 उस समय कुलमंत्री बुविधा में चय जाता है और उस अवस्था  
 में कुलमंत्री को Position बहुत खराब हो जाती है। मैं वर्तमान  
 कुलमंत्री जी से काँग्रेस विवे प्रतोट्टर रिज की दुष्टी कराने का भार  
 अपने ऊपर न लिये करूँगे इस से वे बहुत सी बहिस्तुओं को  
 बच जायेंगे।

२- उच्छेदा-: मेरा यह अनुभव है कि कुलमंत्री को समय  
 आदि सार्वजनिक व्यक्तियों के प्रबन्ध के लिये विधार्थियों की ओर  
 से सहायता न मिलने का तो शिवायत अभी नहीं होती परन्तु  
 कुलमंत्री को विधार्थियों की ओर से यही शिवायत होती है कि  
 विधार्थी साधारणतया उन सार्वजनिक व्यक्तियों में कोई Interest  
 नहीं लेते, इन के प्रति उच्छेदा के भाव को दर्शाते हैं।

३- कुलसभा- कुलसभाओं के बारे में मेरी यह धारणा है कि जितना हो  
 सके उतना ही कम कुलसभा का आयु लेना चाहिये अर्थात् उपविभागा,  
 से कोई कार्य करवाना हो तो उस के लिये कुलसभा में उस विषय में  
 प्रस्ताव स्वीकार करवा कर अधिवार्थियों पर दबाव डालना उचित नहीं।

अर्थात् तु कुछ विचारधर्मों को साफ ले कर अधिकारियों से उस विषय में परामर्श करा लेना चाहिये। इस के दो कारण हैं - प्रथम यह कि कुलसभा में जो प्रस्ताव स्वीकृत हो जाता है उस को अधिकारियों से स्वीकार करवाना आवश्यक हो जाता है। अधिकारियों से और उस प्रस्ताव में अगर कोई समझौता (Compromise) हो सकता हो तो उस का अधिकार कुलमंत्री के हाथ में नहीं रहता, क्योंकि अब वह विषय उस के हाथ में न रह कर कुलसभा के हाथ में चला गया है। जब तक उस समझौते पर कुलसभा की स्वीकृति न हो तब तक वह कुछ नहीं कर सकता। दूसरा कारण यह है कि कुलसभा में किसी भी विषय पर गंभीरता से विचार नहीं होता। समासत यह नहीं विचारते कि असुव्य प्रस्ताव के स्वीकार या अस्वीकार हो जाने पर हमारा उस के प्रति क्या कर्तव्य हो जाता है। इसी मन्त्रालय या पार्टीबन्दी के बशीर्षक हो कर किसी प्रस्ताव के स्वीकार या अस्वीकार हो जाते हैं। इस लिए मेरा आकांक्षी कुलमंत्रियों से निवेदन है कि जहां तक हो सके कुलसभाओं को A word करें।

७ कुलमंत्री - : कुलमंत्रियों से मैं यह बताना चाहता हूं कि वे केवल विचारधर्मों के प्रतिनिधि नहीं होते अर्थात् तु अधिकारियों और

विद्यार्थियों को सिगाने वाली बड़ी भी होते हैं। इस लिये उन्हें केवल विद्यार्थियों की बातों को अधिकाधिक से मतदान का ही प्रयत्न न करना चाहिये परन्तु इस के साथ ही साथ उन्हें अधिकाधिक की उचित बात भी विद्यार्थियों से मतवानी चाहिये। साधारणतया यह समझा जाता है कि कुलसंजी विद्यार्थियों की ओर से अधिकाधिक के साथ लड़ने वाला ही होता है। जैसी सम्पत्ति में कुलसंजी के बारे में यह विचार असुद्ध है और इस कारण यह है कि कभी किसी कुलसंजी ने अधिकाधिक की बात विद्यार्थियों से मतदान का प्रयत्न ही नहीं किया और अगर कोई ऐसा करता भी है तो उसे लोगों के तानों का शिकार होता पड़ता है और वह सब असफल कुलसंजी समझा जाता है।

५- भण्डार - : आचार्य जी ने मुझ से कहा था कि तुम स्वशासन कायम करने का प्रयत्न करो। मैंने कहा कि भण्डार और ऊँगा का प्रबन्ध हमारे ही हाथ में होता है, इन दोनों क्षेत्रों में हमें आप ने स्वशासन ही दिया हुआ है, परन्तु मैं अनुभव करता हूँ कि हम इन दोनों क्षेत्रों के स्वशासन में भी सफल सिद्ध नहीं हुए। भण्डारी जी के आदेशों का कोई मज नही करता। अपना भाई समझ कर हमें उस की सहायता करनी चाहिये परन्तु बहुत से भाई उस को नोकर समझ कर गोटते हैं

जो बहुत ही अनुचित है। जो ब्रती भयारी जी की सहायता पर विद्यार्थियों की सेवा करते हैं उन के बारे में कहा जाता है कि वे सब की भावना खाते हैं लिये ही नहीं उठते हैं। जब मैं विद्यापीठ में आया था उस समय भयारकों द्वारा और आजकल की भयार की द्वारा मैं बहुत अन्याय हूँ। पर सब दसरी बुरियाँ और धर्मों का परिणाम है। मैं सब भयारों से जोरदार शब्दों में कहना चाहता हूँ कि इस और जरा ध्यान दें और अपने कर्तव्य की समझें।

उक्ति— : अन्त में मैं क्रीडा के बारे में भी कुछ कह देना चाहता हूँ। मैं चाहता हूँ कि हमारी क्रीडा में किसी न/किसी अधि-कारी के अनुरोध आना चाहिए। मैं यह बोलना इस लिये नहीं चाहता उस के आने से विद्यार्थियों में उत्साह का प्रसार हो या नहीं। वे प्रति शौक पेश हो, अधि तु अधिकारी के आने से क्रीडा में नई विद्यार्थी वंसी प्रजाति में औचित्य और सामान्य शिष्टाचार का अतिबुझाव नर जाते हैं, अब न कर सकते हैं।

मेरे ये विचार बहुत से भाइयों को बुरे लगेगे और बहुत से भाई बहूँगे कि जहाँ तहाँ हमारी स्वतन्त्रता में बाधा उल्लंघन चाहता है। परन्तु मैं क्या कहूँ, मेरे से भी ही विचार हैं।

में इस जीवन में अधिक स्वतन्त्रता को शामिल समझता हूँ  
मेरे ये विचार मेरी कुछ सब अनुभवों के परिणाम हैं। आप  
इन को उपयोगी समझ कर कार्यक्रम में लायेंगे तो अच्छा,  
नहीं तो आप की इच्छा।

5/14/1977



## क्रीडा मंत्री

ब्र. देवकीने जी.

१९३३ के क्रीडा विभाग के मंत्री कणुल का

चुनाव २० दिसम्बर को हुआ। जिसमें ब्र. देवकीने त्रयोदश मन्त्री

और ब्र. युक्रदेव १२ उपमन्त्री चुने गये।

फरवरी के बाद क्रीडा मन्त्रीने विशेष

कार्य नहीं होते व्योम दि. काकिदि फीफा पास आजाते से नियमपूर्वक खेल

खेल नहीं होती तथापि इस साल सर्दियों के सत्र में काफी खेल हुई। फीफा

के खेल नहीं। पूर्व से खेल बढ़ रही श्रेय नहीं। के नियमपूर्वक खेल

होती रही। इस सत्र अन्तः प्राणीय तैली सामुख्य तथा अन्तः महाविद्यालय

बॉल बाल नेसासुरख्य हुआ। और अन्तः फीफा बॉली बाल सामुख्य हुआ

जिसमें चतुर्दश खिलाड़ी रहा।

उत्सव के अवसर पर ३५ साल छोटे ब्रह्मच-

रियों की देशी खेलों का भी प्रदर्शन कराया गया। उत्सव के पश्चात्

पुनः खेल प्रारम्भ हुई, पञ्च मन्त्री की आपसता के कारण देर तक खेल

न हो सकी। इसी समय मसूरी टूर्नामेण्ट के निवट आजाते के कारण

कि 'अ' तथा 'ब' दल के खिलाड़ियों ने खेलना प्रारम्भ किया। अब कुछ  
 ऐसा स्वभाव सा पड गया है कि टूर्नामेंट से कुछ र्दिन पहले थोडा अभ्यास  
 कर गुरुकुल दल खेलने चला जाता है यद्यपि इस स्वभाव को हारने का  
 पूर्ण प्रयत्न किया गया परन्तु कि भी कुछ अंशों में यह उम्मीतक विद्यमान  
 है। इसी के परिणामस्वरूप मसूरी की टार हुई। यद्यपि इसके अतिरिक्त  
 मसूरी में हारने के अन्य कारण भी विद्यमान थे। आगामी जनवरी मसूरी  
 में Mr. M. Government होने जा रहा है। यदि मनी की डा-  
 मनी जी इसमें अपने दल को भेजना चाहे मसूरी उनको यह सलाह  
 है कि अभी से इसका निर्णय करा ले कि दल के क्या जागाये या नहीं।  
 निश्चय होजाते प् खिलाड़ी अपने आदायित्व को स्वयं में रखते  
 हुए अवश्य खेलेंगे। इसके विपरीत होता यह है कि अन्तिम समय  
 तक न सुखिया को ओं नाही क्रीडा मनी की यह पता होता है कि  
 दल के जागा है या नहीं।

मसूरी टूर्नामेंट से पहले गुरुकुल में सर्वदल  
 आयो था जिसे गुरुकुल ने प्रणाल किया। इसके अतिरिक्त देहली से  
 हानी तथा पादकन्दुक ने दल आये जिनमें गुरुकुल दल का खेल  
 उत्तम समझा गया।

मसूरी की टार के पश्चात् पुनः नये जोश से खेल  
 का प्रारम्भ हुआ परन्तु इस वर्ष परिणामों के बीच न होने से खेल



उत्तम प्रकार से न होतकी। इन्हीं दिनों दीर्घावकाश का प्रारम्भ हो गया।

सन्तानावकाश की समाप्ति पर उज्जैन के होने वाले  
दयानन्द विभाजन शताब्दी महोत्सव में होने वाली खेलों में भी  
गुरुकुल ने भाग लिया। गुरुकुल भी हाकी का खेल बहुत पसंद किया  
गया। यद्यपि गुरुकुल दल 8.11.V College से फाईल हुआ परन्तु  
खेल गुरुकुल दल की ही उत्तम थी। वहाँ पर बालीवाल में भी  
गुरुकुल ने भाग लिया जितने गुरुकुल दल फाईल हुआ। वहाँ की  
खेल देख कर वहाँ अभ्यस्त किया गया था परन्तु पुरानी प्रवृत्ति ने  
अनुसार शीघ्र ही उत्तम उत्तम हो गया। इसी समय सरारनपुर में  
Side a Side Hockey Tournament में भाग लेने के लिये गुरुकुल  
दल गया।

इसी समय आँवला भारतीय फुटबॉल टूर्नामेंट समाप्त  
आ गया। इस वर्ष गुरुकुल के दिश्यान्द बहुत खराब थे, वर्तमान  
दिश्यान्द बहुत परिष्कृत के पश्चात् किला तथा तय्यारी का समय  
बहुत थोड़ा था। इसी थोड़े समय में टूर्नामेंट के लिये दल को भी  
तय्यार करना तथा दिश्यान्द का भी। ड्राइफेल बनने की कोई भी  
उम्मेद न थी परन्तु कई गणपति के उत्साह तथा अन्य कार्यो के  
सहयोग से नियत समय में ड्राइफेल बन कर तय्यार हो गया।  
इस समय खेल भी नियत पूर्वक होती रही। आशा है इस टूर्नामेंट  
में भी गतवर्षों की भाँति गुरुकुल दल ही विजयी रहेगा।

एकने इस वर्ष खेल उतना बनाते का अयती ओर से पूर्ण प्रयत्न किया खुदने  
एक वहां तक सफल हो सके हैं इसका निर्णय आय स्वयं कर सकते हैं।  
परन्तु एक जो चाहते थे वह व्योम न कर सके १ उन कारणों पर भी  
भी कुछ विचार करना आवश्यक है।

गुरुकुल के इस मृत प्राय वातावरण में किसी भी  
श्रेण में उन्नति होसकेगा मुश्किल ही नहीं आधुनिक अस्मान है। किसी  
भी सगा या उत्सव के आगले के अंगुलियों पर गिने जा सकते हैं।  
यही हालत खेल की है। यथाप खेल की हालत उतनी शोचनीय नहीं  
जितनी अन्य विभागों की है। यही कारण है कि हमें जितनी आय सब  
के सहयोग की भी आशा थी - जिसके बिना हम राबद्ध भी आगे नहीं  
कर सकते थे - उतना सहयोग प्राप्त नहीं हुआ। प्रत्येक कार्य के लिये कर 2  
बार कुलाने पर भी कुछ कृष्टि उपस्थिति ही इच्छि गोचर होती थी। क्या  
हम आशा करें कि आय आगे जित्त सुयोग्य व्यक्ति को इस पर विचारके  
उसके साथ पूर्ण सहयोग देगे।

इसके अतिरिक्त खेल में उन्नति न होसकेगे का कारण  
व्यवस्था का न होना है। बाहर अगर आय किसी दल को दले तो ने  
मुखिया के पसीने के स्थान पर अपने खून को बहाने को उचल रहते हैं।  
इसका उद्धार सर जाह मिल सकेता है परन्तु हमारे यहां मुखिया  
को कुछ नहीं समझा जाता वह रुब गेद समझाने वाला नंबर है।  
बहर दूनामेंट के जाने पर वह तंग आदि लाने के लिये है। यदि

एक मुस्लिम की खेल सम्बन्धी सब आशाओं को गान कर खेला करे तो हमारी खेल में बहुत उन्नति हो सकती है तथा हमें भी व्यवस्था (Discipline) में रहना भी आजायगा।

इसके साथ ही एक क्रीडापत्नी या मुस्लिम के कहते हैं कि नियत समय या क्रीडाकाल में उपस्थित नहीं होते ऐसे समय तो दो करता हमारा स्वयंसिद्ध अधिकार है। यदि हम नियत समय या क्रीडाकाल में स्वयं उपस्थित हो जाय करे तो हमारी उन्नति हो सकती है। हमें इस बात की प्रतीक्षा नहीं करनी चाहिये कि क्रीडापत्नी या मुस्लिम जब तक बुलाने नहीं आयेगे तब तक हमारे कें ही बैठे रहेंगे।

अन्त में मैं दो तीन शब्द और भी बड़े जो कुछ ही लिख देना चाहता हूँ। जब मैं इस पद या अर्थात् क्रीडाशास्त्र को लेकर आया था। दिल में बड़ा उत्साह था तथा कुछ नहीं चीज कर डालने की जी चाहता था। इसके लिये कई बार परिफर भी किया, पर परिफर करते पर संभव व्यर्थ गया। अब कुल मुर्दा हो रहा। किसी भी A.C. में भी को कराना पहलू नहीं करता। मेरी इच्छा थी कि इस साल खिला खिला कर एक अच्छी 'Team' तय्यार करूँगा। इसके लिये खिलाड़ियों से खेलने के लिये प्रतिज्ञा भी कराई गई थी पर कुल के इस मुस्लिम के 2-3 दिन के ही यह प्रतिज्ञा पता नहीं कहाँ का करेगा। ओ कोई न कोई बंध जीत कर लाने की इच्छा थी दिल की दिल में रह गई। मैंने अब तो उसे जब तक पितरो ने क्या नो खाते रहेंगे।

## वाचार्थिनी मंत्री

ब्र. शिव कुमार जी

मरुकुल महाविद्यालय की सभाओं का मन्त्रीय

उपमन्त्री होता कोई व्यक्ति बन गयी। कोई भी व्यक्ति जो कि सभाओं

के संचालन में अधिक दिल-चस्पी से भाग लेता है वह बिना किसी

सामुह्य <sup>की</sup> किसी सभा का मन्त्री बना दिया जाता है। मन्त्री का चुनाव होता

है <sup>नहीं</sup> उम्मीदवार केवल एक ही होता है। चुनाव हो जाने के बाद सदस्यों को

मन्त्री की सहायता करना या न करना उनकी अपनी इच्छा या

निर्णय होता है। दिल में आगे तो सहायता कर दी गयी तो मन्त्री

को ही लक्ष्य के लक्ष्य की तरह सारी सभा का कार्यकारण अपने ऊपर उठाना

पड़ता है। मन्त्री का पहला कार्य यह होता है कि वह सभा में छात्र

का सब स्थापना अधिवेशन करवा दे, मन्त्री आज चुन लेते वह

अपने कर्तव्य को पूरा कर देता है। छोटी कठिनता है, लेकिन सभा के

लिए सब तरह प्रत्येक कठिने में चढ़ा जाता है, लेकिन सभा के

केवल उन्हीं गिने सदस्य ही चुन पाते हैं। स्थापना अधिवेशन

के अतिरिक्त मन्त्री को कुछ विशेष अधिवेशन भी करना पड़े हैं, उन

अधिवेशनों का निर्णय सभाओं की कार्यकारिणी, जो कि सदस्यों

द्वारा निर्दिष्ट होती है - वे इससे होते हैं। अगर कोई मन्त्री अध-

बेशक तो तब तो सदस्य भाग लेते हैं, वह भी उत्साह से नहीं,  
 और यदि किसी पुराने अधिवेशन को दुहराया जाय तो उसकी ओर  
 अनवधान शोचनीय टोकाती है, सिद्धायत यह होती है कि "यह अधि-  
 बेशन को भिन्न चुका है"। और अगले अधिवेशन करने वालों से  
 यह जाय कि 'तो फिर बात सा अधिवेशन दिया जाय'। इस पर  
 कुछ सदस्य तो तबार्थ निकले बताना शुरू कर देते हैं और कुछ  
 चुप्पी साध लेते हैं। वह फिर भी चीन्हा टिप्पणी करते हीरते  
 हैं। पाले अगले वार्ड लगाने वाला मंत्री होता वह इन बार्थ से हलका  
 नहीं होता, वह तो अपना वर्तमान किये जाता है, चाहे उसकी  
 कोई सहायता करे या न करे।

समा विषयक रक्षाधिति के अर्थ काण्ड है।

सबसे पहला कारण यह है कि गुफुलुल इन्डप्रस्य के अर्थ और अर्थ  
 के विचारधर्मों के समा आदिनी को कोई विशेष रुचि नहीं होती  
 और तारी अधिकांशियों की को से कोई फेदा किया जाता है।  
 इस समय शायद वहां पर कोई समा हो, लेकिन हमें याद है कि  
 हमारे समय तो वहां पर समा विषयक जेयुमंडल का लक्ष्य आतक  
 था। दूसरा कारण हमारी समिति में यह है कि महाविद्यालय के  
 समा भवन का कोई विशेष प्रबन्ध नहीं है और सबसे मुख्य कारण  
 यह है कि महाविद्यालय की सब से बड़ी शक्ति इस बात के दितना भाग

लेती हैं। हमारी सफलता में महाविद्यालय की १४वीं फेलोशिप महा-  
विद्यालय की प्रत्येक Actively में बड़ा जवाबदाar भला होता  
है। दूसरी फेलोशिपों तो उसी का अनुसरण करती हैं। अगर वह  
समाज को बड़े उत्साह से आग लेती है तो उनको देखो देखो  
दूसरी फेलोशिपों में उत्साह का संचार होता है। अगर १४वीं  
फेलोशिप इस विषय में गंभीर न हो तो दूसरी फेलोशिपों से प्रभावित  
की आशा बरतना हमारी सफलता में व्यर्थ है। हमारा तो विश्वास  
है कि यह विश्वास अनुभव के आधार पर है कि १४वीं फेलोशिप  
सारे महाविद्यालय के नायकगुण को सुधारा और विकसित करती है।  
चलते यह भी ठीक है नहीं कि इतने बड़े महाविद्यालय के कुम्हारों  
दोनों देखो। वस्तुतः महाविद्यालय के हर एक विद्यार्थी को समा-  
ज को देने के लिए अपना कुम्हार बनाना चाहिये। इसके बिना  
महाविद्यालय का कोई भी काम चलना असंभव नहीं है।

## राष्ट्रपतिमिथि सभा ( व. वेदवती II )

इस वर्ष की शुक्रबुधवार राष्ट्रपतिमिथि सभा मेरी लिये वास्तव में एक अग्रतर्पण और आश्चर्यजनक घटना थी। जब मैं पण्डा बजने के बाद सभागमन में पहुंचा तो ऐसा प्रतीत होता था कि राष्ट्रपतिमिथि सभा इस वर्ष के लिये स्थगित कर दी गई है। कुछ देर बाद दूर से समापति जी आते देखे पड़े। सभागमन के पास आ कर ने भी मैं वही देखे रहा। वक्त से वक्त २० मिनट तक उन्हें भी बाहर रखे, रखते पड़ा कि कोरम के लायक तो सदस्य आ जायें। समापति जी का बयान था कि "गें आया तो देखा कि राष्ट्रपतिमिथि सभा एकदम <sup>ना</sup>तिरल है।" वास्तव में इस बार राष्ट्रपतिमिथि सभा ऐसी ही थी। प्रारंभ से ले कर अन्त तक एक ही किस्सा है। निपटते सत्र तो चालीसमें ही न रुकती थी और बरा आ संबला है कि इस सत्र भी बह न हो सकती। शाहीलम परिषद के मंत्रीजी को चिन्ता थी कि जहाँ जैरा नरुषी सीता ही न चला जाये अतः उन्हों ने राय केर पदक कर प्रधान मंत्री और बिरोधी दल के नेता तम्मार दिये। उन के फिर से तो बला दल गई अब प्रधान मंत्री और बिरोधी दल के नेता का आकलन थी। जैसे जैसे बिरोधी पेश कर दिया गया। बिरोधी दल के नेता ने बड़े उद्यम से अपना मत भी जुरा लिया। पर "Man proffered but God disposed"

'अपने कम कमु और है विपता के कमु और'। मुकमुल के विपता  
 को हमारे महाविद्यालय के विद्यार्थी ही करते। उठ की लक्षित  
 नहीं लगी जो प्रधानमंत्री और विरोधी दल के बिना हमारे पर  
 पानी फिर गया। दोष दिशा का है - करना कठिन है। हमारी  
 प्रवृत्ति ही कुछ ऐसी हो गई है कि हम पहले से अचानक तो  
 बार 2 चाहते हैं पर लगत से करना लक्ष्य नहीं चाहते।  
 पार्लियामेंट को शिक्षा का रुक जंग है। उस के लिये रोहित लक्ष्य  
 बादायम महाविद्यालय बन्द रहता है। सदस्यों के लिये विपता  
 लक्ष्य और कार्यालय सभी जगह अवकाश रहता है। पर हम इस  
 सब का क्या महत्व समझते हैं - उस का ज्वलंत प्रमाण इस  
 वर्ष की पार्लियामेंट है। प्रारंभ में ही स्व. सदस्यों ने विपुलिपक्षियों  
 उठाने में सहस्र दिशामा। फिर दो रुक भाषणों को जनता ने  
 ध्यान से सुना। चौथे भाषण तक पर टाल रो गया। वि. सदस्यों  
 को जगत करनी पड़ी और कुछ देर बाद सभा को बखोस्त करती  
 पड़। क्यों ? क्यों कि सभ्य बीरम से भी कम रह गये थे। हम  
 तो  $\frac{1}{2}$  बीरम और बह भी पड़ा नहीं होता। Holy day mood  
 की भी रूढ़ हो गई। अन्त में समाप्ति जी को बातचीत करने



इस बर्ष के लिये पार्लियमेंट बन्द करनी पड़ी ताकि आगे के लिए  
बिधायकों को का ध्यान इस ओर जाये। जायेगा या नहीं सो ईश्वर  
जाने। इस मामले को यं लो अनेक कारण हैं। १. इन्फ्लुएंजा का पुन  
एर एक अच्छा Activity की जग में लग ही रहा था। पर फिर  
भी सबसे बड़ा कारण हमारे वायुमण्डल की साधारण उदासीनता  
है जइला है। इस किसी भी बात के संकीर्णता से नहीं ली।  
अगर है इस अब भी चेतने और अपनी इस बुद्धि को इस्तेमाल

## संस्कृत साहित्यी ( व. न. ल. देव जी )

जब कुलमंडी जी ने मेरे से संस्कृत लिखाईनी सभा के प्रथम मंडी के उद्दिष्ट से व अग्रत अग्रमों के लिखने को कहा उस समय मेरे सामने विगत राज का सारा दृश्य सब र भर के सामने आते लग , मेरे दिल में बड़ा दर्प हो रहा था कि वे उग्रमों किन्हीं ने अब तक मेरे दिल में स्थान जमाया हुआ था, अब दूसरों के सामने भी प्रकट करने का अवसर मिला है । अतः संस्कृत साहित्यी की पंक्तियाँ

इस सभा की धार आते व तोंत धृष्टिकोण सब ही प्रथम मेरे सम्मुख आते हैं । इन में मेरे सभा के बीच पर जगदा विचारणीय विधा क्यों कि इन बिना कोष के भी यदि कोई सभा निम्न तीन बातों पर पूरा ध्यान देती है तो उसका व्याप बिना कोष के भी चला सकता है सोचा मेरा कुछ निश्वास है ।

१ - साधारणाधिवेशन —: प्रति सद्यः तिथयः स्विकं सद्यः साधारणाधिवेशन उद्देश्येन चाहिये । यदि प्रथम में नैबल तीन ही सभासद उपस्थित हैं तब भी सभा के अधिवेशन को स्थगित नहीं कर देना चाहिये । विधाधिक्ये की भी चाहिये कि वे अपने आप को सभा का एक मुख्य अंग समझ कर उस की वधा

शक्ति सहायता बढ़ें। एक बार उनके इसी सभा के एक प्रतिष्ठित सदस्य मैं ने पूछने पर बताया कि 'हम क्या सुनायें?' इसके समय तो केवल १५ या २० विद्यार्थी ही उपस्थित होते थे। पर आजकल तो ६० विद्यार्थियों से अधिक १०० भी उपस्थित हो जाते हैं। तो यह अधिवेशन सफल समझा जाता है। अतः विद्यार्थियों का तो यही वर्तमान है कि वे इस सभा के तन और मन से सहयोग दें।

२- निरीषाधिवेशन- जन्मोत्सव पर किसी मनोरंजन समय विभाग (Programme) का रखना आवश्यक है, नहीं तो थोड़ी देर के ही हउताल प्रारंभ हो जाती है। प्रतिभा सम्मेलन, नविदरबार, शास्त्रार्थ आदि भी बर्ष के एक बार ही जाने चाहिये। यदि उत्सव कास के चतुर्थ सप्ताह में उत्सवकाओं का एक Test दिया जाता है तो बहुत उत्तम रहेगा।

देवगोष्ठी - इस सभा की ओर से एक मुख्य पत्रिका भी प्रति मास निकाला जाती है जिस का नाम देवगोष्ठी है। पहले की पत्रिकाओं के देखने से पता चलता है कि विद्यार्थी इस में बहुत Interest रखते थे। विद्यार्थियों के पत्रिकाओं

पर लैब लथो 'उत्प्लस श्लोक उरु मे कामे जाते हें'। बिस्तु  
अज बल ले बैबल के ही उस्ताव नकिबा मे दिमे जाते हें जो  
बि परीक्षाए उपाध. पाप जी बो देने पडते हें। कई बार तो उन  
को भी बैबल उतार देने मे विघर्षी आलस्य करत हें। कथितान  
का ले कहता ही क्या ! यदि विघर्षिके के परिश्रम को  
जबदेस्ती से बिभी बोले मे पीस दिज जाये तब जा कर श्लोक  
की दो तीन बंदे दर्शन देती हें। विघर्षिके को श्लोकों का  
ओर भी काफ़ी Interest रखना चाहिये। यदि सात-दिन  
मनो-बितीर न समय मिला सबकता हें तो शीर समय उपर  
लगाने से भी बोई इफि नहीं होती।

आशा हें मेरे भंडे इन विचारों पर पर्याप्त ध्यान देंगे।

## आयुर्वेद पारम् ( व. शुभम् ॥ )

दो हक साल से जहां पर कि अल्प सभायें उत्पत्ति की और पग बढ़ रही हैं वहां पर आयुर्वेद परिषत् भी अपने र्वरूप को लाने में भरसक प्रयत्न कर रही हैं।

गतवर्ष के अनुभवों को मैं बड़ा हितवुं उस को तो सब सदस्य भली प्रकार जानते हैं पर उन के होते हुए भी दो हक बातें, जिन की तरफ आयुर्वेद परिषत् को अग्रसर होना अत्यन्त आवश्यक है, लिखना हूँ।

सांसाजिक जगत् में प्रवेश करने के लिये पर अधिक है कि उत्प्रेय नैय को बुद्ध न बुद्ध लिखना और बोलना आता है। छोटे से विषय को ले कर अच्छा भाषण दे सम्मला है, रोगी की बुराईयों तथा अच्छाईयों को बतला सुकला है। इस लिये पर आवश्यक है कि ब्रह्मचारी पाठितक या त्रासिक अधि नेशनों में किसी रोग को ले कर भाषण दें। इस से जहां पर विद्याचर्चि, रोगी वहां पर उत्तम भाषण देना भी जा जायगा।

हक साल से आयुर्वेद महाविद्यालय के कोरे भी आचार्य न होने से ब्रह्मचारियों को आयुर्वेद संबन्धी बातचीत करते हैं

घाटा रहता है इस लिये नवीन मंत्री जी को आचार्य जी से  
प्रार्थना करनी चाहिये कि नटविनी योग्य वेद्य को  
(Doctor को नहीं) इस पद के लिये नियुक्त करें।

पत्रिका निकलवाने का शौक उल्मेच आयुर्वेदपरिषद्  
के सदस्य को होता है परन्तु लेख मांगते पद नहीं का जवाब या  
समयाभाव आदि को खुन मंत्री के दृष्टि से अटकल कोट  
पुंछती है इस लिये उल्मेच सदस्य को चाहिये कि मंत्री के  
कार्य में पूर्ण सहयोग देते अपना बर्तव्य समझे।

१९३३ में लिखवाये गये प्रस्तावों के परीक्षण पढ़ने के  
प्रोफेसर रहने गये थे। परन्तु एक साल हो गया अब तक की  
परिणाम न निकला। इस का स्पष्ट अधिप्राय यह है कि  
पढ़ने के प्रोफेसर ब्रह्मचारियों को उत्साह रहने करते हैं।  
उन का जो घर पटला बर्तव्य होना चाहिये उसे वे ब्रह्मचारि  
की उत्पत्ति में अपनी भी उत्पत्ति समझें। इस लिये बेसी समझ में  
प्रस्तावों के निर्णयक नवीन स्नातक या आयुर्वेद महाविद्यालय के  
उत्साही स्नातक ही रहने जाया करें जिस को शीघ्रातिशय  
परिणाम निकला जाया करे।

कालज यूजीयन ( व. ओम प्रकाश )

'Necessity is the mother of invention.'

आवश्यकता आविष्कारों की जननी है। यह एक जगद्विख्यात  
कहावत है। लोक व्यवहार में आवश्यकतानुसार अनेकों आविष्-  
कार हुए हैं और आवश्यकता के न रहने पर- ही वह न बना जायते-  
क्यों कर सकते हैं कि आवश्यकता के अनुभव न किये जायें पर-  
न्तु स्वयं ही बरालकार के पास हो जाते हैं।

यही अवस्था हमारी College Union Club की है।

आज से १२, २० साल पहले अंग्रेजी भाषण में तैयुष्य की  
आवश्यकता का अनुभव लिया गया। परिणामस्वरूप इस Club  
की उत्पत्ति हुई। जिस का बुझाफ जरूरी आता है उस की जवानी  
भी जरूरी आती है। सभा दिने ३० नई रात चौथुनी उत्पत्ति से उत्पत्ति  
यद्य पर अग्रसर हुई। जरूरी ही बौबन मद ले पर भूमते हानी।  
अल्प सहूलियों का बौबन इस के प्राप्तते दीया पर गया।

दीया बुझने के लिये ही सब का अतुल उच्चार से प्रदीप्त हो  
है। इस सभा का कई साल तक सुध पला न चल। College में  
जब प्रवेश किया तो मुका करता था कि College Union Club  
भी कोई Club है। उस का सन् मंगी भी होता है। सब सार के

असल में इस के बेल के नेमिस्तिव अधिवेशन देवे जिन  
पुराने मंत्रियों ने अस्तीया दिअ ओर नमों का चुमान उआ।

लीसरा नेमिस्तिव अधिवेशन उआ। ब्र: वेदयुत जी मंत्री ओ  
त्र मधुलेन जी उपमन्त्री चुने गये। चन्वन्तरि तुल्य मन्त्री जी ने  
मन्त्रीगत वृषी सुंघाई। सभा में बुद्ध २ चेतन्य आथ। मन्त्री जी को  
सतत परिश्रम से अब इस के साधारण अधिवेशन होने लगे।

बुद्ध संख्या में सधस्य हिस्सा लेने लगे। यष्टु था १९६६ का उपमन्त्री  
साहा का दूसरा सत्र आथ। सभा में धीमे २ कोचे लेने आरंभ

दिगे। आरिबरकर त्रिपुरा ने धार दबाया। समय बीतते देर नहीं  
लगती। १९६६ ई बीत गया ओर १९६७ का आरंभ उआ।

का नेमिस्तिव अधिवेशन उआ। इस में मैं मन्त्री चुना गया ओर

ब्र: हरिबृषण जी द्वादश उपमन्त्री। उपमन्त्री जी को सत्र भर सेवा  
ने आह्वान्त रखा। इस सत्रसारा बीच में ही बंधों पर रहा।

शुद्ध २ में बड़ा उत्साह क। आरंभ में आरंभ समय। सोचा था  
पत्रिका प्रकाशित नमंरंग। पत्रिका के साथ २ धत का विचार

आथ। यह युग तो धत का आहें। Union के पास वृषी-वृषी  
भी न थी। सोचा मंग, पर राय पसारने की हिम्मत नहीं; धरि



बार दिला बड़ा मित्र । दिला जो तसरली दी, कोड़े अपने दिने  
कोड़े ही मांगता है । आगे बढ़ा, जीम लउरवा गई । जे पीछे पड़ने  
लगे । आशिर १ आशिर होता बक ? सब भी पेशा चन्दा न हुआ ।

साधारणाधिवेशन हर सप्ताह होते रहे । उपलब्ध करने पर भी  
सदस्यों की संख्या बिक्रीय न बढ़ी । कोड़े १२, १३ सदस्य  
आने लगे । कुछ समय बाद English में भाषण बराने को  
सोचा । उपाध्यो को पास उतरे बर गया पर सत्र के अनंत  
तक हम भी भाषण न हुआ । बेबल सब, सो भी अजमेर के  
सब जोड़ेसर का का । संस्कृत के ग्राम की सुत, सोचा, सब ग्राम  
इंगलिस का भी बराधजाये । यहां पर भी असफलता देवी बोधी  
फिर जंचा रहा । कुछ लउ. को बे तय्यार होने पर भी उपयुक्त ग्राम  
बाध न हो सका । इस प्रकार निरीकाधिवेशनो का विचार भी  
तब १९६२ हो गया । इस समय साधारणाधिवेशन की भी बक भिष्टी  
चलीत न हुई । सिबाध सब सदस्य तथा मंगी को कोड़े भी सगा के  
मधीचित स्थान पर न पहुंचा ।

इत सब बातों की देख कर अने विचार दिना मि  
इस सब का क्या कारण है ? इस का प्रेरे दिना ने मरुत्तर दिया कि

आविष्कार तभी तक उपलब्धी होता है जब तक उस की आवश्यकता का अनुमान निका जाय जिस के लिये वह उत्पन्न होता है। कोई भी इंग्लिश में बहूला तथा योग्यता की आवश्यकता अनुमान नहीं करता, इस लिये सतर्क आविष्कार निष्पन्न है। यह सूक्ष्म विचार क्षेत्र अपने शेष मन्त्रित्व काल में किसी भी प्रकार का अधिवेशन नहीं करता।

अपधि लेख को पढ़ने से ही स्पष्ट हो जाता है कि इस को किस प्रकार उन्नत किया जा सकता है, फिर भी इस को एक दो शब्दों में बताने पर अपने लेख को समाप्त कर देना चाहता हूँ।

संक्षेप में कहें तो यह जा सकता है कि यदि हम इसे पुनर्जीवित करना चाहते हैं तो सर्वप्रथम यह आवश्यक है कि हम इस बात को अनुमान करें कि अंग्रेजी में योग्यता की अत्यन्त आवश्यकता साधने के लिए अनुभव करने के यदि इस समाज का सञ्चालन भी करें तो भी विशेष कष्ट न होगा यदि हम अंग्रेजी के भाषण न सुनें। इस प्रकार इसे जीवित जागृत करने के लिये इसकी हम उपायों के अंग्रेजी में भाषण सुनें तथा समय २ पर प्रामा और उद्देश्य आदि करते हैं।

अपने विषय में

### सात दिन की श्रवण

जिस प्रकार पुल पर आई जलधारा अपनी पुरानी शक्ति का संचय कर आगे बहती है, उसी प्रकार मनुष्यशक्ति को पुनर्जन्म देने के लिये त्योहार मनाये जाते हैं। ठीक यही महसूस में भृङ्गानन्द-सप्ताह का समझता हूँ। और वह जिस भी शान से मनाया जाय, छोड़ा है। अगर इस की महत्ता में किसी को संदेह हो, तो वह इसी पत्रिका में दिये गये भृङ्गानन्द सप्ताहको कैसे मनाया जावे आदि विस्तृत विवरण, आर्षप्रतिनिधि सभा के मन्त्री द्वारा प्रकाशित से जान सकता है। उस प्रोग्राम की तैयारी भी किस परिश्रम से की गई है, यह भी पाठक प्रतिनिधि सभा के मन्त्री तथा गुरुवाधिष्ठाता श्री-चमूपति जी की बातचीत से जान सकते हैं। सर्वमान्य विषयों में युक्तिवाद की आवश्यकता नहीं होती क्योंकि वे सब को स्पष्ट होते हैं। अतः मैं भी एक दो बातें और कह कर आगे चलता हूँ। भूतपूर्व श्री कुलमन्त्रियों द्वारा निरन्तर 6 वर्षों तक दिये गए प्रयत्न भी कम प्रामाणिक न होंगे जो कि श्री आचार्य जी की

हस्तकर्म से सेवा में हर प्रकार से प्राथना निवेदन आदि करते रहे।

आगर यह विषय कम महत्व का होता तो श्री आचार्यजी मुझे यह कदापि न कहते कि तुम भी कहीं अन्य कुलमन्त्रियोंकी तरह उन श्रद्धामन्द सप्ताह की दुष्टियों के लिए श्रद्धामन्द सप्ताह के गुजर जाने पर लापरवाही न करना। यह बात जिस दिन हुई थी उसी दिन ही नहीं बल्कि उसी क्षण मेरे दिल को लग गई और वहीं उस बात को मैंने अपनी गाँठ में बांध लिया कि और उस विषय में इतना जागरूक हो गया जितना कि शिष्य को गुरु के आदेश पर जागरूक या चेतम्य होना चाहिये। उसी प्रसंग में यह भी स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि श्री आचार्य जी उस समय 6 दुष्टियों के पक्ष में न थे।

मैंने उस विषय को सोचा और फिर सोचा। कितना मनन किया यह मैं ही जानता हूँ। 2 दिन तक तो 6 दिन की दुष्टियाँ नहीं होनी चाहिये उसी पर एकान्त में विचार करता रहा पर अन्त में मेरे हृदय और मस्तिष्क ने ऐलान कर दिया कि 6 दिन से एक दिन की भी कम छुट्टी होना श्री श्रद्धामन्द जी की आत्मपूजा के तथा गुरुकुल ही नहीं सारे आर्यसमाज की शान के विरुद्ध है। मेरे ये विचार अब भी

पत्थर की चट्टान से भी कहीं अधिक दृढ़ हैं।

जिस प्रकार इस विषय में मैं विचार कर रहा था, उसी प्रकार अन्य भाई भी विचार और मनन कर रहे होंगे। जिस सब का परिणाम कुलसभा कही जा सकती है। कुलसभा का विषय हो जाने पर भी मैंने अपनी ओर से सिर से एडी तक जोर लगाया कि बिस्वी प्रकार 6 दिन की दुष्टियों का प्रस्ताव स्वीकृत होना चाहिये। अनेक भाइयों की इस प्रकार का सिद्धान्त है कि कुलमन्त्री को तटस्थ रहना चाहिये पर मैं यह समझता हूँ कि कुलमन्त्री को सत्य और अहिंसा पर बृद्ध रहना चाहिये, उस के लिये पदत्यागना तो बहुत ही मामूली चीज़ है। सत्य और अहिंसा जान दे कर कभी मोल ले ले तो सस्ते हैं और अपनी आवाज़ को दबाना असत्य बोलना तथा हिंसा करना है। इसी सिद्धान्त के कारण मैं तटस्थ न रह सका और न भविष्य में भी रहना पसन्द करता हूँ। अगर कई भाइयों के इस प्रकार के विचार हैं कि उस के (कुलमन्त्री के) प्रभाव में आ कर उस के बलते को भारी कर दिया जाता है तो उस भारी बोझ को उठाने की जिम्मेवारी भी उसी के कंधों पर आती है। इसी मिलसिले में एक बात और स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि कुलसभा से स्वीकृत प्रस्ताव पर अमल करना उस सभा के

प्रत्येक सदस्य का, और उस से भी अधिक मेरा, कर्तव्य है; चाहे वह किसी की इच्छा के अनुकूल हो या प्रतिकूल।

मैं चाहता तो इस वर्ष भी इस सप्ताह की दुष्टियों के विषय को टाल सकता था क्योंकि ५ दिन का अवकाश तो उस समय भी हिसाब लगाने से स्पष्ट मिलता ही रहा था पर मेरे जगाने वाले ने ऐसा स्वार्थसाधने के लिए शक दिया था और यहाँ तक कहा था कि इस प्रकार के विचार आत्मिक पतन के होते हैं, उत्थान के नहीं। कम, उसी सत्यता के आधार पर मैंने इस विषय को कुल सभा के हाथ सौंप दिया और अपने को आत्मिक पतन से बचा भगवान् को धन्यवाद दिया।

अन्त में यही बात और जो अधिक आवश्यक है, लिख कर अपने विचारों को समाप्त करता हूँ। कई, इस प्रकार के भी विचार रखते हैं कि कार्य धीरे २ करना चाहिये क्योंकि किसी ने कहा भी है— 'कारज धीरे होता है, काहे होत अधीर।'।

मैं उपर्युक्त सृष्टि की अपेक्षा: मानता हूँ और स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि जिस प्रकार से कार्य हुआ है, उस से और धीमे न हो सकता था क्योंकि 'शुभस्य शीघ्रम्।' की सृष्टि को भी मैं आँवों से ओझल नहीं करना चाहता था तथा इस सुअवसर को भी मैं हाथ से न खोना चाहता था। इसी कारण और अधिक धीरे २ न कर सका।

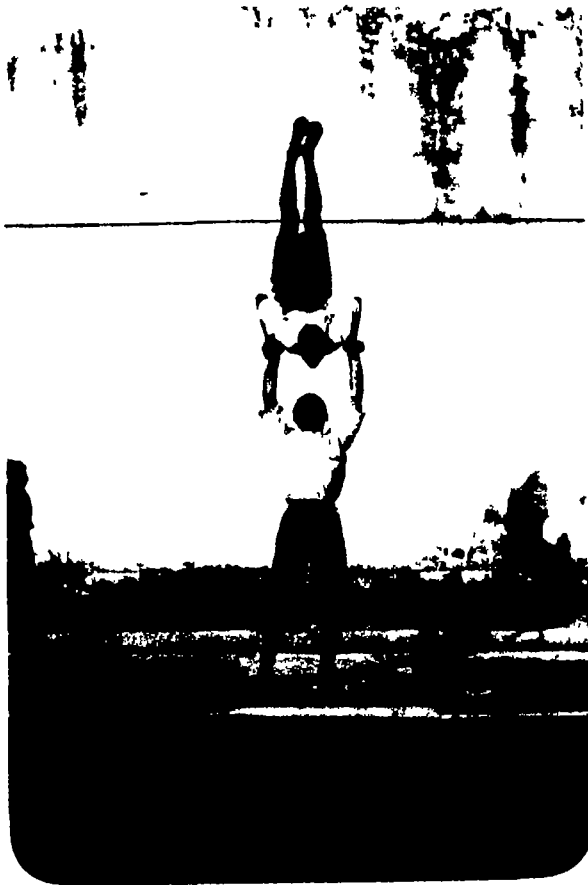




सम्पादकिय!

### हड़ताल की नौबत.

यह तिरकते बड़ी प्रसन्नता है कि कुलसभा के प्रस्ताव के अनुसार हमें हड़ताल बनाने तथा बनाने की नौबत नहीं आई। कई भाइयों का यह विचार है कि प्रस्ताव के अनुसार अभी हड़ताल होनी चाहिए पर हम उन्हें स्पष्ट कर देना चाहते हैं, जब कि हमारी पूरी मांगों को (जो कि हमने पेटा की चीं) हमें दे दिया गया तो फिर उस की क्या आवश्यकता रहती है? दूसरे कुलसभा ने कुलमन्त्री को यह अधिकार दे दिया था कि यदि वह अन्तरसभा द्वारा 6 दिन के अवकाश के अस्वीकृत हो जाने पर उस हड़ताल के प्रस्ताव को श्री आचार्य जी की सेवा में भेज दे, अन्यथा नहीं। ऐसी स्थिति में हमें हड़ताल करना या बनाना उचित प्रतीत नहीं होता क्योंकि सभा ने तो 6 दिन की छुट्टी को अस्वीकार किया ही नहीं। अगर वह 6 दिन के अवकाश को अस्वीकृत करती तो अवश्य ही हड़ताल की नौबत आ जाती। परन्तु हमारे सौभाग्य से तथा भगवान् की कृपा से ऐसी स्थिति नहीं आई, इस के लिये हम श्री आचार्य जी का हृदय से धन्यवाद करते हैं।



### कीड़ा पर

श्री डीउमन्नी जी ले प्राय १५ 33 की खेल की रिपोर्ट को पढ़ कर एक बार दबावन स्टेशन पर स्टेशन छोड़ी हुई उरु गाड़ी सी कलम सहसा किसी आकस्मिक घटना के समान रुक सी जाती है। कास्तब में घटना भी असाधारण बहुरी मन पर हक देस सी लगाने वाली है। और उस बात को लिखने का मन भी नहीं करता पर कर्तव्य से च्युत होने के भय से कुनीन सी गोली सा उसे शीघ्रता से निगल डाल लेते हैं — "बह है हारों का वर्ष"।

पाठक इतने से ही समझ गये होंगे जहां 2 भी इस वर्ष हाकी दल गधा वहां बहा ही मुंझी खानी चड़ी। जेरठ, मसूरी तथा अजमेर भी कौन कहे यहां लोहमाल पैसला महानुष्म ही होगया — यह दुःख और मानभ्य की पराकाष्ठा है।

श्री डीउमन्नी जी के लेख विश्लेषण करने से हमें निम्न कारण मुख्य 2 ज्ञात हो गये हैं। —

१. नातावरण का घृत प्राप होना --- इसी संस्था में जहाँ (जुसन्वर्षेण --- घृत्यमुपादनतः) की बुद्धी पिलाई जाती हो वहाँ घृत प्राप होने से बढ कर कार्य अधिक छोटे लिये अनवृत्ति भी बात हो पी नहीं सकती।

२. मुक्ति का मान --- जिसे समाज में मुक्ति का मान कता नहीं सीखा वह समाज शिक्षित है ऐसा कहना सत्य ही नहीं कहना है। छोटे लिये कितनी लज्जा भी बात है कि मुक्ति को अनेक भाई गेन्द्र संभालने वाला नौकर तथा दूनो पेट के भौके पर टांगा लिये जाने का लाहर बंश समझते हैं। अब तो इन चेतना चाहिये सो न्युत लिये।

३. निषिद्धित तौर पर खेलना न होना --- यह बात भी कम ध्यान देने की नहीं। सुनते हैं नौ पौली यत्र प्रदिन यत्र सारा लोप्यत इति वेगथा फिर जहाँ हम आध प्यवटा देर करे तो वहाँ निगप प्राप कता क स्वयं को चिन्तित भी नहीं रहता।

४. लक्ष्य का उभाव --- शिकारी के रतने बड़े जाते

को जब कबूतरों के संघशक्ति मिलकर उड़ानकती है तो मनुष्य सघ्न क्या नहीं कर सकता। यह विचारण विषय भी नहीं होता।

इन छोटे से कटु शब्दों को सुदृष्टि नृणमि तरह कुलभाइयों को अवश्य ही ले लेना चाहिये नहीं तो स्त्रिय की मारी के बटु जाने का अधिकमप ह्य श्री श्रीमन्नीजी भी प्रशांसा दिये बिना नहीं रहसकते न्यो कि उन्हें ने ह्य मुर्दा में जान धुंकरे का जी जान से पुपल विपाई। जय देवो वश वे मर नाम पेश कर देते थे। उसरिन कुशतीके दंगल में उन्हें उतरे 2 नचाने में पुपल करने पर भी नरोकसके। अतः शान्तीध कबुड़ी में लो ने आधी समाप्त होने पर भी जांचिया कस अपेथे। हम जानते हैं ने किसी आशासे अपेथे पर उनही मारी पुटवाल में सुर्गु युमोकर हम ने धिडुकर दिये। अगले भावी श्री श्रीमन्नीजी लेसे कटु अनुभव न होने दें। ऐसा हमारा कर्तव्य है पर साथमें यह भी निवेदन कहे

चाहते हैं' लाभार्ज्य को संघठित करने के लिये जिस  
 प्रकार कि नारा से लगना चढ़ाई उसी प्रकार हमें भी  
 विजयी होने के लिये अब से लगना चढ़ना  
 अनपेक्षा नहीं।

मैदान बनाते हुए जो नुरवार उन्हें  
 आकाश नट खन्का थमान का ही तो परिणाम थी

श्री ५५ प्रो. गी. गंध शर्मा पर

राष्ट्र प्रतिक्रिया सभा के शरत्कालीन अधिवेशन के बारे में प्रधान मन्त्री जी की रिपोर्ट का प्रत्यक्ष प्रतिक्रिया लुके है। प्रधान मन्त्री जी को इस बात का बहुत अधिक दुःख है कि इस वर्ष अधिवेशन सफलता पूर्वक नहीं सम्पन्न जा सका। उनका विचार है इसका कारण विद्यार्थियों का इन विद्यार्थियों के प्रति अत्यधिक उद्वेगभाव है। हमारी सभ्यता में प्रधान मन्त्री जी का प्रत्यक्ष कारण विवेकानन्द बहुत उन्हे एक ही है। मरबर्ष उन्हे उससे पहले भी इस अधिवेशन के लिए विद्यार्थी सब तयारियां कर रहे थे और अधिवेशनों के दिनों में सब की सलाह का विचार मार्गदर्शन ही रहती थी। जब कभी सुनना पड़े पर किसी दल का लोचन एक प्रकाशित होता है विद्यार्थियों का



जम कर जमा हो जाया करता था। सन्तरी  
 मण्डल और बिरोधी दल के नेता को उद्धार से  
 अपने २ दलों के संपर्कित करने में प्रयत्नशील  
 होते थे। दोनों दलों की ओर से अपनी २ नीति  
 को स्पष्ट करने के लिए कुछ मत परिवर्तन भी  
 प्रकाशित हुआ करता था और अभिव्यक्ति के  
 भी सब पट जाते थे किसी प्रकार से हमारा  
 दल विजयी हो और उस के लिए सब अपने २  
 दल की ओर से अभिन्न से अभिन्न भावना  
 स्थापित करते थे। राज्य प्रतिनिधि सभा के पहले  
 दिन का दृश्य तो दर्शनीय ही होगा था <sup>जब</sup> मन्त्रिमंडल  
 के सभासद् एक एक खड़े हो कर 'सीकर' शब्द का  
 उच्चारण कर भाषण करने की आशा प्रकट करने  
 की अभिलाषा प्रकट करते थे। परन्तु इस बार सब  
 सब का एक ही अभिमान था, इसका कारण विपक्ष  
 विपक्षों का उपेक्षाभाव नहीं होगा क्या है? इसी  
 सम्प्रति में उस उपेक्षाभाव का सारा दोष सभा

लोगों के सिर नहीं मगुनी जायिए क्योंकि सभासदों  
 में राष्ट्रप्रतिनिधि सभा के प्रति Interest  
 और उत्साह को पैदा करना बहुत बड़ा प्रयत्न  
 मन्त्री और विरोधी दल के नेता के हाथ में होता  
 है। यद्यपि पत्रिकाओं प्रकाशित करवाना प्रयत्न  
 मन्त्री और विरोधी दल के नेता का काम ही होता  
 है। इस बात किसी पत्र पत्रिका के प्रकाशित न  
 होने का ही परिणाम था कि बहुत से सभासदों को  
 इतना तक न मालूम था कि विरोधी दल इस कित  
 का किस दृष्टि से विरोध कर रहा है। इस बात भी  
 कई कुछ सभासदों ने कितने के पक्ष और विपक्ष  
 में भाषण देते-देते उधारी की सी, बरन्तु अधि-  
 कोशा सभासद् इस के प्रति उत्पत्ती ही रहे। इस  
 दृष्टि प्रयत्न मन्त्री जी को पड़े अधिवेशन उप-  
 स्थिति की मूर्खता को देख कर बहुत दुःख हुआ  
 और मोरम पूर्ण न होने के कारण अधिवेशन  
 स्थगित हो जाने पर प्रयत्न मन्त्री जी ने उपर-  
 कित भी होता हिदा। प्रयत्न मन्त्री जी यदि जायें

हो अंगरेजों का अखिबेरा तो संभरी जा। हमारी सम्पत्ति में उन्होंने अन्धकार ही बिछा कि बिरह होय सिखा। क्योंकि जब समाजसेवा में इस ने लिए उत्साह ही नहीं है तो इस को अखिबेरा खींचते का क्या लाभ ?

### समाजों पर

1. समाजें प्रत्येक शिक्षा संस्था का भावबोध को अंग होली हैं और उनका उस में एक महत्वपूर्ण स्थान होता है। समाजों के बच्चे पर के कार्य को देखते से साह हो जाता है कि उस शिक्षणालय के विद्यार्थियों में कितना जीवन है। हमने इस उद्देश्य में एककुल महाविद्यालय की सब समाजों के मन्त्रियों द्वारा प्रेषित अपनी 2 समाजों की रिपोर्ट प्रकाशित करवाये हैं। इन सब में मन्त्रियों का एक ही लेना है। हमें बहुरोना फिर पढ़ा नहीं लेना है। हम केवल सब भाइयों से प्रार्थना करता जाइते हैं कि आप के द्वारा निर्वाहित मन्त्रियों की आय के बारे में पर सम्मति है। सब मन्त्री अपने मन्त्रित्व काहके प्रारम्भ

में नवीन उत्साह से कार्य करते हैं और जा रहे हैं कि किसी प्रकार हम मुश्किल के शान्त और मूल-प्राप्त जीवन से स्फूर्ति का सन्सार करें परन्तु उपाय की उदासीनता और उपेक्षा उन के उत्साह को भी मरु बना देती है। बिलारे निराशा हो जाते हैं। मन्त्रियों ने जो कुछ लिखा है वह केवल लिखने के लिए ही नहीं लिखा परन्तु यह उन के हृदयों के उद्गार हैं तथा उन के कर्तु-कृत्य अन्तर्भवों के परिणाम हैं। हमारे इस संग्रह का यह प्रयोजन है कि उपाय अपनी अवस्था को समझें। धोरे में न रहें। छोटे गौरव में अपनी वास्तविक अवस्था को न भूलें जायें। कारण है कि उपाय में मन्त्रियों की प्रायेणवलों की उल्लेख्यताओं और महाविद्यालय के मूल-प्राप्त बालावस्था में नव-जीवन सन्सार करने का प्रयत्न करेंगे।

### बृहद् यज्ञ .

इस बार भद्रानन्द-सप्ताह पर बृहद् यज्ञ का न करने का कारण केवल यही नहीं कि वर्ष होनी है कि कहीं वर्षा हो गई तो वह गरीब किसानों की खेतियों को अकालबुद्धि के कारण नष्ट कर देगी, जिस से पश्चिम पुण्यमय यज्ञ अज्ञान के कारण हिंसात्मक सिद्ध हो जायगा, अतः उसे असमय बुलाना अनुचित जान कर ऐसा नहीं किया गया ॥

### Group-making.

केवल यही एक खेच है, जिसने हमारे कुल की शान को अजमेर में बचाया ही नहीं, अपितु बढ़ाया है। हम व्यापार शिक्षक श्री नारायण जी को धन्यवाद दिये बिना नहीं रह सकते, जिन्होंने पूरी लगन के साथ यह शिक्षा दी।

### तकली-दल .

इस छोटे से संगठित दल की सकलता हम हृदय से चाहते हैं। भगवान् की कृपा से तथा ब्रह्मचारियों के परिश्रम से यह दल उन्नति के ही प्राप्त होगा, ऐसी आशा करनी चाहिये।

### भद्रानन्द पुस्तक.

श्री स्वामी भद्रानन्द जी का व्यक्तित्व कितना महान् था यह लिखने की आवश्यकता नहीं। उन्होंने अपने जीवनकाल में सामाजिक, धार्मिक और राजनैतिक आदि सभी क्षेत्रों में कार्य किया। कोई भी ऐसा समाजहितकारी कार्य न था, जिस में उन्होंने हिंसा न बढ़ाया हो, और अपने अलौकिक गुणों के कारण उस के अगुभा न बन गये हों। परन्तु दुःख का विषय है कि ऐसे महान् व्यक्तित्व वाले कर्मठ

सागी और वीर पुरुष के प्रामाणिक और रोचक जीवन-चरित्र का अब तक हिन्दी-जगत में सर्वथा अभाव था। एगरे सौभाग्य से पं० सत्यदेव जी बिद्यालंकार ने हिन्दी-जगत की इस कमी को पूरा किया है। पं० जी की लेखन शैली के बारे में तो कुछ कहने का हम अधिकार ही नहीं रखते। पं० जी ने किसबोम्बे से इस ग्रन्थ को लिखा है, मरु कात पाठक पुस्तक पढ़कर ही हृदयङ्गम कर सकते हैं। अपने इस ग्रन्थ द्वारा पण्डित जी ने हमारे कुलपिता और आचार्य की स्मृति को अमर बना देने का प्रयत्न किया है, उस के लिये हम उनका हृदय से धन्यवाद करते हैं।

### ऋतु -

आजकल ऋतु बहुत सुराबनी है। प्रातःकालीन शीतल समीर स्वास्थ्य को बढ़ाने वाली तथा प्रसन्नता को देने वाली होती है। महाविद्यालय के ब्रह्मचारी पूर्व वर्ष की तरह नहर की पट्टी पर प्रातः धूमते नज़र आते हैं। ग्रीष्म का अब नामोनिशान ही मिट गया है और शीतकाल अपने यौवन की पूर्ण बला पर चढ़ता सा नज़र आता है।

### स्वास्थ्य -

मलेरिया जो कि इस वर्ष ज़ोरों से फैला था और जिसने कइयों को घर दक्का था तथा प्रायः सभी को डीला कर दिया था, अब नज़र नहीं आता। चिकित्सालय भी अब खाली ही है; कुछ माशुली बीमार हैं। पुरानी बीमारी से झूटते हुए भाई सुभासचन्द्र जी को हम हृदय से बधाई देते हैं। भाई मधुसूदन जी को भी, पेट की बीमारी के आक्रमण के दूर हो जाने पर हम हृदय से बधाई देते हैं।

छोटे ब्रह्मचारियों में से ४-५ को मम्मस की बीमारी है, जो कि चिन्ता जनक नहीं है।

## श्रीदानन्द हॉकी सान्मुख्य (१-६-३३)

श्रेष्ठ कुलपिता की जन्म स्मृति में जिस "श्रीदानन्द हॉकी सान्मुख्य"

का आयोजन किया गया वह प्रतिदिन उन्नति पथ पर चलता जा रहा है। हर

वर्ष सान्मुख्य में कुछ न कुछ नवीनता होती ही जाती है। पुरानी मुठियों को हटाने

की कोशिश भी उद्योगी तथा विवेकी करते हैं। बाहर से ~~कई~~ दल (Team)

जुलाने की कोशिश की जाती है। इस वर्ष अन्य दलों की विशेष अधिक

तथा अच्छी रीति बाहर से आई है। बाहर से आने वाली सभी रीति अच्छी

रखनी है। हमारे गुरुकुल की 'A' Team जिसे खिलाड़ियों से सहायपुर, मोर

आदिकों के दल आ जाते हैं वे भी इस वर्ष अधिक सरव्या में उपस्थित थे। अर्थात्

इस वर्ष का दैनिकीय रीति का सुवि से बहुत पर्याप्त सफल रहा है।

इस वर्ष को सान्मुख्य का प्रथम दिन था। इस दिन

रीति के अनुसार केवल एक ही मैच का आयोजन था। गुरुकुल 'A' तथा

'B' मैच हुआ। जनता भी बहुत बेटी थी। मैच जनता के

निये विद्युत् बनेर-जक न था। 'B' को गुरुकुल दल ने प्रगेल में

हटा दिया। इसके बाद 30 नवम्बर को दो मैचों का आयोजन किया गया।

प्रथम मैच उभरे R.S. Club Saharanpur तथा P.M. Club Jalandhar

में हुआ हुआ। ये दोनों Teams लगभग तुल्यबल की ही थीं। P.M. Club

के गुरुकुल की 'C' Team ही थी। मैच काफी मनोरंजन का। P.M. Club

के खिलाड़ियों का हाथ उस दिन सख्त जगा। R.S. Club उनके आक्रमण को

न सहाय्य सकी। इसके फल में आखिर खेल समाप्त होने के तब P.M. Club

ने प्रगेल चला दिया। शर्कों तथा प्रतिद्वंद्वी खिलाड़ियों ने समझा कि यह नतीजा

में गुरुकुल की 'A' Team है और 'C' चला दिया है। R.S. Club ने विचारों

की दिने 9 नवम्बर आयु की। अभी खेले ही टंग ले न खेल पाई थी।



साथकाल उन्हें पुन वापस कर गये।

इसके बाद द्वितीय मैच Jureldul 'B' तथा Edward Singh

School से 6-94 पर प्रारम्भ हुआ। गुरुकुल दल को इस टीम से जीतने की आशा न थी क्योंकि इसमें 3.5 खिलाड़ी Marshburn के थे जिन्होंने गुरुकुल की 'A' Team पर काबू जमाया था। Edward Singh School की भी विचारणीय गति से विकसित न थे। आते ही प्रदर्शन है कि क्यों ब्रह्मचारी जी? 'A' Team पर 'B' Team से अधिक जड़ी तो नहीं है जिसे कि हमने मैच में उजाले में पीरा था। हमने सोचा कि उन्हें अपनी खेल का बहुत आनंद है खेल से ~~न~~ ही नवायेंगे कि यह कसबों है कि string है। खेल प्रारम्भ हुआ। जनता भी बहुत आनंद हुआ थी। Edward Singh School गुरुकुल दल B को जो मलबा का दे लसकता था ब्रह्मचारी भी हार हुआ। शुरू में तो Edward Singh School ने बड़ा जोर मारा परन्तु कुछ ही समय में 'B' Team के सभी खिलाड़ी बहुत अड़िया खेल रहे थे। परन्तु अभी भी ब्रह्मचारी होने से कुछ पहिले उन पर एक गोल बर मारा कि 'B' दल के खिलाड़ी चाराये गयो। इसे malpractice के बाद एक बड़ा गोल उतार दिया। गोल उतारते ही इतनी पार्टी चारा गयी गुरुकुल दल के बड़े रतना बराया कि उन्हें सदा बरतना रहने लगा कि कहीं अब ~~अ~~ गोल बर भी न जाये। Edward के खिलाड़ी भी जो जान से खेलने लगे परन्तु नहीं तो 'B' दल आगे बढ़े ही न देगे थी। अन्तिम जनता भी प्रभावित उदेल उदेल बर- राणा का है रही थी। बेसी खेल समाप्त के द्वाजिन पहिले गुरुकुल दल ने Baver के पास एक free ball आया। बरतना का बोल दो भी रहा था। इस गोल में 3 goals ~~च~~ दो- ऐसा बोया हुआ कि सीटी बज रही है बर- मैच के रचना रका योग्या दि इतने में दूसरी दल के ~~ब~~ मैच टीम वा सीटी बरालाये में उदेल दी। Referees ने गोल भी फीट बजा दी। इस ~~अ~~ प्रसंग में यह गोल 'B' दल के उताहारी गये- उन्हें कि उदेल दुर्बल अपने दुर्बल को कोहने लगी। यह मैच बहुत मनोरंजन रहा- इसके मुवाबिले वा मैच फिनाल के ~~अ~~ इतना जोर दे न हुआ।

इसके बाद 1948-49 के उर्वर पुष्प...

संघा ज्वालामुखी मंदिरवाला से उर्वर हुआ। ज्वालामुखी मंदिरवाला से उर्वर हुआ। ज्वालामुखी मंदिरवाला से उर्वर हुआ।

इसके बाद शीत में पुष्प... 'म' से शुरू। 'म' दल को आरंभ की प्रेरणा इस क्लब को बढ़ी तब इस लीग। शुरू में तो 'म' Team की शान से खेली तब कीड़े आने शुरू।

इसके बाद शीत में पुष्प... 'म' दल को आरंभ की प्रेरणा इस क्लब को बढ़ी तब इस लीग। शुरू में तो 'म' Team की शान से खेली तब कीड़े आने शुरू।

माहले ही थी। उसके बाद 'B' team का गठन हुआ। इस के बाद इलाहाबाद और V.M. लीग में भी चलाया।

उसके बाद आसुवा के R.H. Medical College शुरु हुआ।

Sahanpur Estate J.C. में सबसे पहला हुआ R.H. Medical College का खेल जलाना और खेल का उपाय होना पानी जा सकती है। सहापुर की टीम भी उतनी अच्छी न थी जितनी कि पिछले साल थी। उनका 2-3 अच्छे खिलाड़ी नहीं बाकि अब हूँ के। खेल का भी अच्छा हुआ। सहापुर के R.H. Medical College को पहले रखा। दूसरा मैच Edward High School में हुआ। वे दोनों teams अच्छी खेलने वाली थीं। दोनों teams ने फल तक four game खेली। R.H. Club के खिलाड़ी न के अलावा दूसरी टीम का खेल का आंचका कम थी। पले Edward High School के forwards तथा पिछले वाले खिलाड़ी अच्छे थे। उनके Centre halfback अधिक की खेल बहुत ही आराम से खेली। उनके गार्डने के खिलाड़ी सारे दूसरे में से बेहतर था। बहुत ही अच्छा खेलता था। इसकी खेल का कारण अब तक बना था। Edward High School की सभी खेल को अपने control में था हुआ। R.H. Club बहुत बड़ा माली थी। सब वर्ष जाती थी। उनके forwards को खेल का आशा न रही थी। वे बीच में काफी कम खेल रहे थे। इसे half time के बाद Edwards ने R.H. Club पर 5 गोलें अंशित।

उसके बाद semi-final युक्त इनो फुटबल 'A' तथा

Sahanpur का मैच शुरू हुआ। उसके बाद खेल का भी बहुत अच्छा हुआ। शुरू के प्रसिद्धों में ही उरुदुल ने सहापुर का गोलें अंशित किया। उसके बाद खेल खूब जोश में हुआ। उरुदुल पल भी आराम से खेलने वाला खेलता आराम है। इसे half time में दूसरा गोल भी मिला गया। दोनों को इस खेल से बहुत खुशी हुई। फाइनल के बाद खेल समाप्त की सीटी बज गई और खेल समाप्त हुआ।

दूसरा मैच Edward High School तथा Youngs के

हुआ। Youngs ने Edward High School की खेल खेली थी। इस खेल में

...ने अपने खिलाड़ी बदल लिये। मैच प्रारंभ हुआ। *Woolwich* बहुत ही जोश से खेल रहे थे। उन्हें लड़ हट्टे करके जगन के जिनके चक्के के सामने *Edward High School* की कच्ची आड़ु वाली टीम को बरतवानी थी। पहले फिर भी सफाई-सी खेल के आगे फूट पड़वाने की कुछ काम नहीं देते। *Edward School* सामने तब सफाई ले लेलता रहा। *Woolwich* की *Woolwich* वालों की तर्फ की रहती थी। बाकी दो में *Edward* *High in* ने भी सफाई ले रख जेल कर दिया। *Woolwich* दोनो (3 मिनट) *Half Time* के बाद फिर खेल शुरू हुआ। खेल इसी मंच में समतुलित रही। दोनों तर्फ जेल दोनो भी आशंकाये होती थी। दोनों पार्टियों के खिलाड़ी जान लगावा खेल रहे थे। अन्तिम समय में *Woolwich* के खिलाड़ी आगे बढ़ आये। बेसी जोर का *Push* हुआ कि *Eduarions* के *Back* उसे न समाल लगे। मैच प्रकृती दुर्घ बलिलको में खिलाने की। यह खेल समाप्त के अन्तिम मिनट का अन्तिम *second* था। जेल होते ही खेल समाप्त की सीटी भी बज गयी। यदि इस अन्तिम *second* को *Edward* को लगे समाल लेते तो वे भी जिन निजिन के कर *final* में पहुँच जाते। पहले उनके दुर्भाग्य के जिसले कि अन्तिम क्षण में वे *draw* में योग्या आगे दिन *final* को स्थापित वाले फिर उन का मैच रचना गया। इस दिन भी खेल में बहुत जोश रहा। *Edward* की खेल बहुत ही सफाई की तथा *Combiner* की। लोगों ने उनकी खेल बहुत पसन्द की। *Woolwich* के खानों में न सफाई की न जावायसी। ने ~~वे~~ अपने खानों में तथा नेउ पर खेल रहे थे। उस दिन किसी पर भी कोई जेल न हुआ और फिर मैच *draw* योग्या। *Woolwich* की गत बोल फिर मैच रचना गया। ~~मैच~~ मैच 2-10 पर प्रारंभ हुआ। इस गत बोल के समय में भी *Woolwich* की दूरियों की भीड़ आगरे की। *Woolwich* ने अपने खिलाड़ी फिर पहले। *Woolwich* से सब अंग्रेज खिलाड़ी संग्रामा गया था। खेल दूरे जोर में हुआ। *Woolwich* की जोर तो सभी *Edward* की जोर। *Woolwich* के मंचों कोता रहा। आखिर 9 बजता समय भी समाप्त योग्या फीरे। इस के बाद मैच की तह फिर *Half Time* रचना गया। 11-12 मिनट दिने मंचों इस समय में दोनों पार्टियों के ख फूल उड़े थे।

पल्लु विजय वी लालसा ने तब कुछ मुला इतिया खेल लिए जगया पुनः  
 देखते 2 Edwards ने सब गोल चला दिया। उदिते अकतामे हुने करके  
 अचल के। काले काले तथा शकावरी वी आवाजने आवाज गूँज  
 उठा। पुनः उदिते मुयावला कले पुनः के दिला ठेके पर गगा।  
 इतरे मर्फ में सब गोल अगे चठ गगा। सब दित वी विजय  
 अब तीन दिनों के चलाभमान विजय के आदिते Edwards का वी राय  
 बयडा। मैन समाप्त हु योग्या। पुनः को सावधानी की गई। रात्र जीत  
 तो प्रकृति का निपट दे। के दे मुयाविले में कोई न कोई तो छरे गयी  
 अतः दु ल कित लात ड।

अब उदिसाल को फिर प्रतिष्ठित Final के साथ

साथ सब समस्त Edwards तथा गुरुकुल 'II' के भागों का भी  
 Final था। इतिहास के प्रतिष्ठित अभागत तथा खेल की शैलीन अंतता  
 अत्यधिक मात्रा में उपलब्ध थी। चर्चों, ओ ले ग्राउंड में युवा था।  
 गुरुकुल 'II' वी खेल देखने को कौन उत्सुक न होगा। उबने में  
 बजा। भाग वी बड़ी क्षमने उपलब्ध हो चुकी थी। खिलाड़ियों के दिनों  
 में तब बिलबि-नेने लगे। गुरुकुल के लभने कुलभात वी शान का तवाल  
 अपरिचित है। उस अत्र शरीर श्रमाता के आश्रय के साथ विद्व कले  
 का समाल दे ओ Edwards के लभने अपनी मान प्रकृति का। के ल  
 समाप्त होते ही Referees ने सीटी बजाई। सब गानगेदी आकाश में से रोने  
 पाएँगे का आवाज हुआ। खेल अन्त हुआ। Edwards ने चाना बोला  
 पल्लु कर्न गगा। इतने वर गुरुकुल ने चाना बोला। वही दे तब जैद  
 उथा मडराती रही। इतिहासियों के चेहरा मुम हो गये। ने रता श  
 के चेहरा कबरी बनेल प्रल ती गये वी अब गुरुकुल ने गोल अचल  
 मारे वा सब बाहर गये। इती वर मर्फ दिने नीता ओ खेल फिर  
 प्रवित्त अग हुआ। गुरुकुल 'II' वी खेल गयी जमी हुई वी दि Edwards  
 को आगे बढने का फिर बिलकुल मौका न मिला। गुरुकुल का दोब खिलाड़ी  
 प्रत्या-कोसल गेता हिरा-धेरा था। Edwards आग नोका प्रल  
 चली वी। उपरिख खेल समाप्त वा मौका आने लगा। Edwards वी  
 भाग परीक्षा आनिम-ह-क-में ही होती थी। अन्तिम मिनट उपलब्ध हुने  
 दि गुरुकुल ने सब गोल चला दिया। गोल की सीटी दे साथ साथ बेल भी  
 समाप्त हो गयी विजय लक्ष्मी ने पुलगता के नीर प्रती को ही अभागत पहिनाई।  
 (क विरोध जी हारा)

# निवेदन

आजकल के पुष्पाशनमें हमें सब तरफ से पूर्ण सहयोग मिलता रहो है। ऐसी अवस्थामें हमारी इच्छा थी कि हम "आजकल" को काफी सुव्यवस्थित रूपसे कुल के सामने पेश करें परन्तु इतने छोटे समयमें परीक्षा में अत्यधिक व्यग्र रहने तथा कुल सम्बन्धी कई उलझनों को सुलझाने में लगातार लगे रहने से हम इसको विशेष ध्यान नहीं दे पाये हैं। इसका हमें हार्दिक दुःख है। आशा है कुल भाई हमारी इस लाचारी को ध्यान में रखते हुए उसकी सुविधा पर विशेष ध्यान न देंगे।

## धन्यवाद

इस पत्रिका का प्रकाशन करते हुए हमें बहू खिरवते हुए अत्यन्त प्रसन्नता है कि जिसजिस भाई से अथवा उपाध्याय महोदय से हमने सहायता प्राप्त करने की इच्छा प्रकट की उन सब ने अपना भी काम समझ कर इसमें सहायता दी। भला वे सब हमारे धन्यवाद के पात्र हैं। फिर भी श्री लक्ष्मण जी, श्री वेदव्रत जी, तथा श्री सत्यभूषण जी विशेष धन्यवाद करते हैं जिन्होंने प्रवी लगन से सहायता दी।

005704

लिखते लिखते -

हम नवीन निर्वाचित श्रीमन्नीजी का हृदय से स्वागत करते हैं और आशा करते हैं कि वे अपने कार्य को उत्साह, साहस तथा धैर्यपूर्वक सम्भालेंगे।

आई जवादीश जी को इस पद पर देख कर उन्मुग्ध का श्रीमन्नीजी का स्मरण हो आता है।

स्व ६॥ ३

हम श्रुतपूर्व श्रीमन्नीजी श्री. देवकीर्ति जी को, उन के उत्साह लगन तथा श्रद्धानन्द-दण्ड-सान्मुख्य को सदलला शर्वक करवाने और श्रीशिक्षण बनवाने आदि प्रशंसनीय कार्यों के लिए हृदय से बधाई देते हैं।

